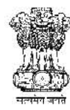


नोंदणी क्रं. एफ.१६०९४(मुंबई)





महाराष्ट्र शासन
मराठी भाषा विभाग
राज्य मराठी विकास संस्था
एल्फिन्स्टन तांत्रिक विद्यालय, ३, महापालिका मार्ग,
धोबीतलाव, मुंबई - ४००००१ दूरध्वनी : (०२२) २२६३१३२५ / २२६५३९६६
संकेतस्थळ https://rmvs.marathi.gov.in इ-पत्ता rmvs_mumbai@yahoo.com

निवेदन

महाराष्ट्र राज्याचे सांस्कृतिक धोरण २०१० अंतर्गत मराठी भाषेतील प्रतिमुद्राधिकाराची (कॉपीराइटची) मुदत संपलेले दुर्मिळ ग्रंथ महाजालावर उपलब्ध करून द्यावे असे म्हटले आहे. त्यानुसार मराठी भाषा विभागाच्या आदेशाप्रमाणे (शासननिर्णय क्र. रासांधो १०१२/ प्र. क./२०१२/भाषा-३ दि. २८ मार्च २०१३) राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे असे ग्रंथ आणि नियतकालिके महाजालावर उपलब्ध करून देण्याचा प्रकल्प राबवण्यात येत आहे. त्याच बरोबर प्रतिमुद्राधिकाराच्या कक्षेत येणारी काही साधनेही प्रतिमुद्राधिकारधारकांची उचित अनुमती प्राप्त झाल्यास संस्थेद्वारे संगणकीकृत करून अभ्यासकांसाठी उपलब्ध करून देण्यात येत असतात.

चित्रकार दीनानाथ दलाल ह्यांनी सन १९४७ ते १९७१ दरम्यान प्रसिद्ध केलेल्या दीपावली ह्या नियतकालिकाच्या अंकांचे संगणकीय स्वरूपात जतन करण्याबाबतचा प्रस्ताव चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे राज्य मराठी विकास संस्थेस प्राप्त झाला होता. सदर प्रस्तावानुसार दुर्मिळ मराठी ग्रंथांचे संगणकीकरण ह्या प्रकल्पांतर्गत दीपावली नियतकालिकांचे अंक संगणकीकरण करून ते सार्वजनिकरीत्या आणि विनामूल्य उपलब्ध करून देण्यासंदर्भात राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे सहमती दर्शविण्यात आली.

चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे सदर अंक संगणकीकरणासाठी उपलब्ध करून देण्यात आले. सदर संस्थेच्या सहकार्यामुळेच आपल्याला ही सामग्री संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध होत आहे.

या अंकांच्या पीडीएफ प्रती आपण विनामूल्य उतरवून घेऊ शकता. असे करताना खालील सूचना लक्षात घेऊन त्यांचे पालन करावे.

१. सदर ग्रंथांच्या पीडीएफ प्रती या वैयक्तिक वापरासाठी विनामूल्य उतरवून घेता येतील तसेच इतरांनाही विनामूल्य देता येतील. पण कोणत्याही कारणासाठी त्याचा व्यावसायिक वापर करता येणार नाही.
२. सदर ग्रंथांचे दुवे इतरांना देताना त्यासाठी कोणतीही रक्कम आकारता येणार नाही.
३. पीडीएफ प्रतींवर असलेली राज्य मराठी विकास संस्था, मुंबई व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांची मुद्रा आपणास काढता येणार नाही.
४. आपल्या अभ्यासासाठी, संशोधनासाठी या सामग्रीचा उपयोग करताना आपण योग्य तो श्रेयनिर्देश केला पाहिजे.

वरील अटींचा भंग झालेला आढळल्यास कायदेशीर कारवाई करण्यात येईल.

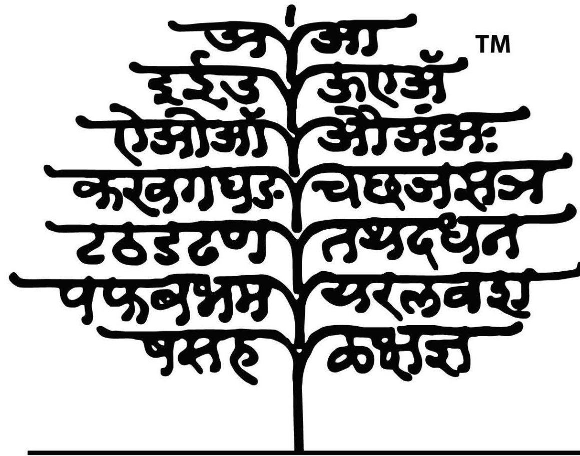
स्पष्टीकरण : सदर सामग्री ही केवळ ऐतिहासिक दस्तऐवज म्हणून उपलब्ध करण्यात आली असून या सामग्रीतून व्यक्त होणारी मते, विचारसरणी इ. त्या त्या लेखक, संपादक इ. कर्त्यांची आहे. त्यांपैकी कोणतेही मत, विचारसरणी इ. यांचा पुरस्कार महाराष्ट्र शासन, मराठी भाषा विभाग, राज्य मराठी विकास संस्था व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांपैकी कुणीही करत नसून त्या त्या मताचे वा विचारसरणीचे दायित्व उपरोक्त विभागांवर/ संस्थांवर असणार नाही.

सदर अंक केवळ अभ्यासकांच्या सोयीसाठी संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध करण्यात येत असून अंकांतील सामग्रीचे (लेखन, मांडणी, छायाचित्रे, रेखाचित्रे इ.) प्रतिमुद्राधिकार त्या त्या लेखकांकडे अथवा प्रकाशकांनी त्या त्या वेळी केलेल्या व्यवस्थेनुसार आहेत ह्याची नोंद घेण्यात यावी. त्या सामग्रीसंदर्भातील कोणतेही अधिकार वा दायित्वे राज्य मराठी विकास संस्था, मराठी भाषा विभाग किंवा महाराष्ट्र शासन ह्यांच्याकडे असणार नाहीत.

अनुक्रमणिका







मराठीचा विकास : महाराष्ट्राचा विकास

राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे
संगणकीकृत



राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे
संगणकीकृत



दीनानाथ दलाल मेमोरिअल ट्रस्ट

दीपावली

१९५९ : रु.

हिंदी वार्षिक

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





दुर्लभं भारते जन्म, मानुषं तत्र दुर्लभम् ।

हमारे ऋषियोंने गाया है कि भारतमें जन्म पाना दुर्लभ है और उसमें भी मनुष्य-जन्म तो और भी दुर्लभ है। अपने इस देशके प्रति कितनी पवित्र भावना उनके मनमें थी। बहुत पुण्य करनेपर ही भारतभूमि में जन्म होता है। इसका क्या अर्थ है? आप जो समझे हैं, उससे अधिक इसके मानी हैं। भारत-भूमिमें जन्म पाना दुर्लभ है और मनुष्य का जन्म पाना तो और भी दुर्लभ यानी इस भूमिमें कीड़ेमकोड़े का जन्म पाना भी दुर्लभ हैं। ऐसी यह पुण्यभूमि है कि यहाँ की धूलिमें जन्तु बनकर पैदा होना भी भाग्य है, क्योंकि सत्पुरुषोंके पाँव इस भूमिपर पड़े हैं।

ऐसा वाक्य मैंने दुनियाकी दूसरी किसी भी भाषामें नहीं पढ़ा। हर एक देशमें मातृ-भूमिके लिए प्रेम होता है। मातृभूमिके प्यारका ठेका हिंदुस्थानने ही नहीं लिया है। परन्तु इस भूमिमें जन्तुका जन्म भी पाना दुर्लभ है, ऐसा हमने और कहीं भी नही पढ़ा।

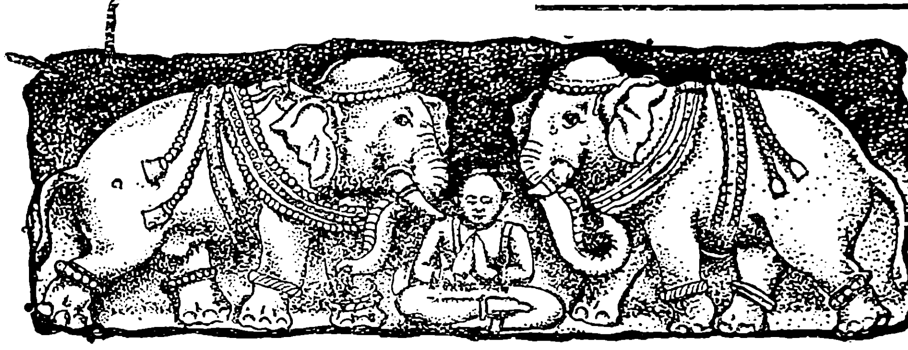


श्री विनोबाजी
(सन १९२३, धुलिया जेल में, जहाँ 'गीता-प्रवचन' का जन्म हुआ।)

भाइयो, ऐसी पुण्यभूमिमें जन्म पाया है तो वैसे ही पुण्यके काम किया करो। छोडो ये मालकियतकी बातें। हमारा घर, हमारा परिवार, हमारी संपत्ति, हमारी जमीन — ये सब चीजें हमारी नहीं हैं। ये सबकी सेवाके लिए हमारे पास आयी हैं। हम तो उन्हें सँभालनेवाले हैं, ट्रस्टी हैं–ऐसी भावना रखो। जहाँ माँगनेवाला पात्र आयेगा, वहाँ फौरन उसे दे देनेके लिए हमें तैयार होना चाहिए।

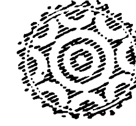
— विनोबा

अनुक्रमणिका





राष्ट्रीय हिंदी वार्षिक
वर्ष सातवाँ : १९५९



श्रेयनामावलि

संपादक : दीनानाथ दलाल
कार्य. संपादक : सुधाकर तोरणे







हृद्‌गत !

दीपावली राष्ट्रीय हिंदी वार्षिक के इस सातवें संकलन को प्रस्तुत करते समय हमें असीम आनन्द हो रहा है।

हमारे पाठकों की इच्छा के अनुसार दीपावली का सौंदर्य बढ़ाने का हम प्रतिवर्ष कोशिश तो अवश्य करते हैं लेकिन हमें इस प्रयत्न में सफलता मिली है या नहीं यह बता देने की जिम्मेदारी पाठकों की है।

गत वर्ष दीपावली की लेखमाला पढ़कर पाठक प्रसन्न हुए थे इसलिए इस वर्ष एक नयी लेखमाला प्रस्तुत की गयी है। हिंदी-उर्दू के कलम के कारीगरों ने इसे सजाया है।

और एक विशेषता है हमारा उपन्यास। हिंदी साहित्य सम्राट और हमारे मित्र कृशनचंदरजी ने हमारे लिए गत साल 'एक लड़की और हजार दीवाने' नामक एक उपन्यास लिखा था। उसका अगला और अंतिम भाग पढ़ने के लिए पाठक उत्सुक हुए थे। इसलिए 'कहाँ है मंजिल तेरी ?' यह उपन्यास हम सादर कर रहे हैं।

प्रति वर्ष के अनुसार ही भारत विख्यात ऑफसेट मुद्रक श्री शिवराज फाईन आर्ट अॅण्ड लिथो वर्क्स नागपूर के संचालक और हमारे मित्र श्रीमंत बाबुराव धनवटे तथा धनवटे बंधू इन्होंने ही इस वर्ष के चित्र सुन्दर पद्धति से छपवाये हैं। वैसेही मुद्रण की जिम्मेदारी इस वर्ष भी जय गुजरात प्रिंटिंग प्रेस के श्री. खळे और अन्य सेवक भाइयों पर थी। उन्होंने अपना कार्य बेहद लगन से किया है यह बात अंक देखतेही आप मानेंगे। हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

मे. टॉम अॅण्ड बे के श्री. गणेशराव ताम्बेजी का बहुमूल्य सहयोग प्रतिवर्ष हमें मिलता है, और वह शब्दों में आँकने के लिए हमारे पास शब्द नहीं है।

'दीपावली' की सहायता करते हुए विभिन्न भाषा-भाषी लेखकों ने हमारी सहायता की है, उनके हम कृतज्ञ हैं। श्री. कृशनचन्दरजी, भारत विख्यात 'नवनीत' के सम्पादक रतनलाल जोशीजी इनकी सहायता प्रतिवर्ष मिलती है और अगर हम कृतज्ञता व्यक्त करेंगे तो उन्हें ठीक न जँचेगा।

बॉम्बे प्रोसेस के संचालक साथी कामत और प्रभात प्रोसेस के संचालक साथी कदव इन्होंने ही अंक की शोभा बढ़ायी है।

सम्पादक कार्य में साथी वीरेन्द्र मोहन, नाना वाडेकर तथा कु. सुरेखा तोंगे इनकी सहायता भी बहुमोल है। हम इन के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं। यह दीपावली तथा नूतन वर्ष हमारे रसिकों, पाठकों, लेखकों, विज्ञापन दाताओं, विक्रेताओं तथा हितैषियों को सुखप्रद हो।

— सम्पादक

प्रकाशन स्थळ :
दलाल आर्ट स्टुडिओ
४०।४२ केनेडी ब्रिज
बम्बई ४

मुद्रण स्थळ :
जय गुजरात
प्रिंटिंग प्रेस,
गांवदेवी, बम्बई ७.

ऑफसेट प्रिंटिंग :
शिवराज फाईन
आर्ट लिथो वर्क्स,
नागपूर

रंगीन ब्लॉक :
बॉम्बे प्रोसेस स्टुडिओ
सादे ब्लॉक :
प्रभात प्रोसेस स्टुडिओ

चित्रसंकलन :

१९५५ का चित्रसंकलन	मूल्य रु. १-५० न. पै.
१९५८ का चित्रसंकलन	मूल्य रु. २-००
१९५९ का चित्रसंकलन	मूल्य रु. २-५० न. पै.
तिनों एक साथ	मूल्य रु. ५ मात्र
अधिक रजिस्ट्री डाक खर्च	रु. ०-७५ न. पै.

Printed by V. B. Khale at Jai Gujarat Printing Press, Gamdevi, Bombay-7, and Published by D. D. Dalal from Dalal Art Studio, 42, - Kennedy Bridge, Bombay - 4.



करुणा

य श पा ल

...हाँ, पर इन बातोंमें दया की गुंजाइश कहाँ है करुणा ? इसी व्यवस्था पर तो हमारा अस्तित्व है । शहद खाना है तो मक्खियों से छीनना ही पड़ेगा । आखिर भला उसमें दुख करने की क्या बात है...?

ताल्लुकेदार समाज के लोग जगनपुर ताल्लुका के राजा विष्णुप्रताप सिंह को कुछ अद्‌भुत आदमी समझते थे । कुछ लोग उन्हें 'साहब' कहकर पुकारते थे, कुछ 'खब्ती' समझते थे और कुछ 'बैरागी' । राजा साहब ने आरंभिक शिक्षा लखनऊ के 'कालविन' ताल्लुकेदार कालेज में पायी थी । अपने अध्यापक के उत्साहित करने से वह शिक्षा के लिये इंगलैण्ड चले गये थे । वहाँ के कैंब्रिज में एम. ए. तक पढ़ते रहे । ताल्लुकेदारों को ऐसी शिक्षा की भला क्या जरूरत थी !

राजा विष्णुप्रसाद की आयु चौदह वर्ष की थी तभी उनके पिता राजा नरेन्द्रप्रताप सिंह का स्वर्गवास हो गया था । सरकार ने ताल्लुके का प्रबन्ध 'कोर्ट ऑफ वार्डस' के सुपुर्द कर दिया था ! आयु इक्कीस वर्ष की हो जाने पर राजा विष्णुप्रताप अपने ताल्लुके का प्रबन्ध सम्भालने का अधिकार पा सकते थे परंतु उन्होंने परवाह नहीं की, बोले— "अच्छा-खासा प्रबन्ध चल तो रहा है ।" वे केम्ब्रिज में पढ़ते रहे और फिर दो वर्ष यूरोप बैठे रहे । उनकी माता रानी साहिबा को उनके विवाह की चिन्ता खाये जा रही थी । लोगों ने अफवाहें उड़ायीं कि राजा विष्णुप्रताप जरूर किसी मेम के चक्कर में फँस गये हैं, लेकिन राजा साहब विलायत से लौटकर लखनऊ की कोठी में रहने लगे, तो न कोई मेम आयी, न विशेष भोग-विलास का कोई दूसरा चिह्न दिखाई दिया । राजा साहब विलायत से लाये थे पुस्तकों के कुछ बक्से, चित्र बनाने का बहुत-सा सामान और दो कुत्ते ।

प्रकट में राजा साहब को रियासती काम से वैराग्य और रियासती ढंग से चिढ़ जान पड़ती थी लेकिन छटे-छमाही जब कभी हिसाब देखने बैठ जाते तो इस बारीकी से पड़ताल करते कि मैनेजर, पेशकार और अहलकार थर्रा जाते। छोटी से छोटी त्रुटि की ओर संकेत कर जवाब-तलब करते। उदारता भी थी परन्तु बेपरवाही नहीं; राजाओं का ढंग नहीं था कि या तो हाथी पर बैठा दें या हाथी के पांव तले डाल दें; डांट-डपट और गालीगलौज के बजाय उनका चुपचाप घूर कर देख लेना ही काफी था।

राजमाता का मन दहलता रहता--'यह नहीं करेगा, तो क्या होगा? उत्तराधिकारी के बिना रियासत का क्या होगा?'

राजा साहब की संगति भी ताल्लुकेदार लोगों से नहीं, दो-चार वकील-डाक्टरों या यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों से ही थी। लोग उन्हें अपनी आधुनिक और प्रगतिशील विचारों का समझते थे। युवक उन्हें अपनी सांस्कृतिक आयोजनों का प्रधान बनाने लगे। स्कूल-कालेजों के प्रबन्धक उन्हें अपने जलसों का सभापति बनाना चाहते थे। राजा साहब जानते थे कि लोग उन्हें ऐसा सम्मान देकर उनसे सहायता की आशा करते हैं। उन्होंने ऐसे कामों के लिए दस हजार वार्षिक नियत कर दिया था। जब यह रकम समाप्त हो जाती तो वे उत्सव-समारोह के प्रधान बनने के निमंत्रण स्वीकार न करते।

राजा साहब से 'महिला-कालेज' के वार्षिकोत्सव में पुरस्कार वितरण के लिए अनुरोध किया गया था। राजमाता लखनऊ आयी हुई थी। राजा साहब उन्हें भी साथ ले गये थे। उत्सव में कुछ लडकियों ने कविताएँ पढ़ीं, कुछ ने संगीत सुनाया, एक-दो नृत्य भी हुए और फिर राजा साहब ने पुरस्कार बाँटे। कई पुरस्कार थे और अनेक लडकियों ने, विशेषकर युवा लडकियों ने पुरस्कारों को कई ढंग से स्वीकार किया। उनकी पोशाकें भी आकर्षक थी। कोई लड़की पुरस्कार लेने के लिए आशंकित होकर सामने आयी, कोई लजा कर और किसी ने निर्भय आँखें मिला कर पुरस्कार लेकर धन्यवाद दे दिया।

पुरस्कार पानेवाली लडकियों में एक थी बी. ए. श्रेणी की संतोष बिलकुल सफेद ब्लांउज और सफेद धोती पहने, आंखें झुकाये परंतु झिझके उसने पुरस्कार में दिया जाने वाला पुस्तकों का बंडल विनयपूर्वक ले लिया और संकेत से धन्यवाद प्रदर्शन कर लौट गयी।

राजा साहब का संतोष से पहले कोई परिचय नही था परंतु उसके चेहरे पर नजर पड़ने से उन्हें कुछ याद आ गया। उत्सव समाप्त होने से पहले उनकी दृष्टि दो-एक बार उसकी ओर फिर भी गयी।

पुरस्कार वितरण के उत्सव के एक सप्ताह बाद राजमाता प्रातः-काल की पूजा समाप्त कर राजा साहब के कमरे में प्रसाद और आशीर्वाद देने आयी थी। राजमाता अपनी पूजा में नित्य भवानी से बहू का मुँह दिखाने का वरदान माँगती थी।

राजासाहब ने उन्हें जरा बैठ जाने के लिए कहा और बोले, "अम्माजी, उस दिन महिला-कालेज के जलसे में एक लड़की









दिनकर

मेरे भीतर का ईश्वर.

ताण्डव का त्योहार रचानेवाला !

मेरे भीतर का ईश्वर,
विकराल क्रोध है ऊसर, अनजोती जमीन
पर ताण्डव का त्योहार रचनेवाला !

मेरे भीतर का ईश्वर,
हैं मेरे मन के स्वर्ग लोक की नींव हिला
मेरे भीतर भूकम्प मचानेवाला ।

मेरे भीतर का ईश्वर,
है अग्नि खंड मैं उसके भीतर जलता हूँ ।

मेरे भीतर का ईश्वर,
है घन घमण्ड, अम्बर का उद्वेलित समुद्र,
मेघों को, जानें, हाँक कहाँ से लाता है ।

मेरे भीतर का ईश्वर,
है नामहीन, एकाकी, अभिशापित विहंग
हृदय व्योम में चिल्लाता, मँडराता है ।

मेरे भीतर का ईश्वर,
है जोर जोर से पटक रहा मेरे मस्तक का
पो पत्थर ।

मेरे भीतर का ईश्वर,
यह महाघोर चतुरंग प्रभंजन वेगवान
मेरे मन के निर्जन, अकूल, आश्रयविहीन
उत्तप्त प्रान्त में ज्वालाएँ भड़काता है ।

भीतर उर के मुद्रित कपाट.
बाहर–बाहर वह प्रलय केतु फहराता है ।

देखी थी । अगर उसके ब्याह की बातचीत कहीं न हो गयी हो तो तुम बात करकें देख सकती हो—। ''

राजमाता का कलेजा बल्लियों उछल पड़ा, " कौन–सी बेटा ? "

राजासाहब ने माँ को जरा शांत होकर बात सुन लेने के लिए कहा, " मगर जरूरी बात यह है कि, आप या लड़की के परिवार वाले ही लड़की से यह जरूर पूछ लें कि, वह किसी दूसरे से तो ब्याह करना नहीं चाहती । यदि उस लड़की का ब्याह दूसरी जगह तय नहीं हुआ है तो मैं उससे ब्याह करने के लिए तैयार हूँ । " और राजासाहब ने बता दिया, " उस लड़की का नाम संतोष है, बी. ए. में पढ़ती है । उसे सबसे अच्छा निबंध लिखने के लिए इनाम मिला था । इसमें जाति–पांति का बखेड़ा डालने की कोई जरूरत नहीं है । विवाह मैं सिविल–मैरेज के ढंग से करूँगा । "

राजा साहब ने ऐसी बातें छः सात वर्ष पहले की होती तो राजमाता की प्रत्येक बातपर आपत्ति होती, परन्तु इस समय तो उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो भवानी ने ही उनकी प्रार्थना पूरी की हो । राजमाता ने आँखें मूँदकर भवानी को स्मरण कर हाथ जोड़े और उसी समय मोटर में बैठकर लड़की का पता लेने के लिए कालेज की प्रिन्सिपल से मिलने चल दी ।

संतोष के मामा ' फेडरेशन बैंक 'के मैनेजर थे । राजमाता के प्रस्ताव पर संतोष की मामी के मन में केवल एक आपत्ति उठी, हाय, हमारी निर्मला संतोष से कई अच्छी है, छः महीने बड़ी भी है पर वह तो उस जलसे में गयी ही नहीं थी । निर्मला महिला कालेज की अपेक्षा अधिक अच्छे समझे जानेवाले और खर्चीले आई. टी. कालेज में पढ़ती थी । मामी को इस बात का संतोष भी हुआ कि भानजी की शादी की इतनी बड़ी जिम्मेदारी इस तरह बिना किसी खर्च के पूरी हो जायगी । इतने बड़े राजा साहब को दहेज का क्या लोभ होगा । शादी भी अदालती-ढंग से होगी तो बरात और दूसरे मेहमानों के झगड़े से भी बचे । बस एक पार्टी दे देंगे । राजमाता ने लड़की से उसकी इच्छा पूछ लेने की बेहूदा बात उठाई ही नहीं । भले घर की लड़कियां से क्या ऐसी बातें कहीं पूछी जाती हैं ?

संतोष के मामा मामी उसकी अनुमति की बात क्या पूछते ? मामीने इतना जरूर सुना दिया...पिछले जन्म में तूने जाने क्या





अनुक्रमणिका


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



अनुक्रमणिका

पुण्य किये थे। मातापिता बचपन में ही छोड़ गये फिर भी खूब पढ़ लिख लिया और अब राजघराने में जा रही है, राज करेगी, कहते हैं, तेरह गांव की रियासत है। दो लाख सालाना की आमदनी है। ननद, जेठानी, देवरानी का भी कोई झगड़ा नहीं है।

संतोष ने इस विषय में कभी कुछ सोचा ही नहीं था। अब यही सोचा कि इतने बड़े घर जाकर वह क्या करेगी, कैसे अपने आपको सम्भालेगी? राजा लोगों के यहाँ जाने कैसे ढंग और रिवाज़ होंगे? उसने सुना था कि राजा-रजवाड़ों के यहाँ बीसियों दासियाँ होती हैं, भयंकर पर्दा होता है, अनाचार और अत्याचार होता है। सोच कर शरीर में कंपकंपी आ गयी। परन्तु यह भी सुना कि यह राजा साहब बिलकुल नये ढंग के बहुत साधु आदमी हैं।

विवाह अदालती ढंग से हुआ। परन्तु बैंक के मैनेजर शिवप्रसाद श्रीवास्तव के बंगले पर ही। विवाह के समय या पार्टी के समय भी संतोष के वर राजा साहब ने उससे कोई बात कर लेने का यत्न नहीं किया। संतोष तो लज्जा और संकोच से सिर झुकाये थी ही।

ससुराल की कोठी पर पहुँचकर राजमाता ने संतोष को छाती से लगा, सिर चूम कर प्यार किया और आशीर्वाद देकर कहा—"बड़ी प्रतीक्षा करा कर तूने मुँह दिखाया मेरी बेटी।"

संतोष थक गयी थी। उसे दिये गये कमरे में कोच पर लेटी हुई थी।

"मैं आ सकता हूँ? कह कर राजा साहब भीतर आ गये।

संतोष सहम कर सिर झुकाये बैठ गयी। राजा साहब उनके समीप कोच पर ही बैठ गये और धीमे स्वर में बोले-"हम दोनों को पूरा जीवन एक साथ बिताना है इसलिए हम दोनों का आपस में परिचित हो जाना आवश्यक है।"

संतोष ने सिर झुकाये मौन स्वीकृति दी।

राजा साहब कहते गये—"विश्वास है, तुम्हारी राय तुम से पूछ ली गयी होगी और यह विवाह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नहीं किया ... क्यों?"

संतोष ने घबरा कर तुरन्त इन्कार में सिर हिलाया और मन में सोचा कि कितनी कठोर बात कर रहे हैं।

राजा साहब ने फिर कहा-"व्यर्थ का संकोच हम लोग कब तक करेंगे? हमें बातचीत तो करनी ही होगी। हमें एक दूसरे से परिचित हो जाना चाहिए न?"

संतोष ने सिर झुका कर हामी भर ली।

राजा साहब ने फिर कहा—"तुम मुझ से बिलकुल अपरिचित हो। परन्तु मैंने तुम्हें पुरस्कार-वितरण के जलसे में देखकर पहचान लिया था। तुम्हारी एक तस्वीर मेरे पास है।"

संतोष बिलकुल घबरा गयी—क्या कह रहे हैं? कैसी तस्वीर मैंने अकेले कब तस्वीर खिंचवायी? यह शुरू में ही क्या होने वाला है? कैसे आदमी हैं? वह सिहर उठी। क्या उत्तर देती?

राजा साहब का स्वर कुछ और कोमल हो गया—"वह तस्वीर देखोगी? – दिखाऊँ?"

संतोष ने भय का सामना करने के लिए धड़कते हुए हृदय को सम्भाल कर सिर झुकाकर स्वीकृति दी।

राजा साहब ने फिर अनुरोध किया—"मुँह से बोलो तो लाऊँ!"

"दिखाइये" पूरी शक्ति लगाकर केवल होंठों के शब्द से संतोष ने उत्तर दिया।

"अभी लाता हूँ" कह कर राजा साहब दूसरे कमरे में चले गये।

संतोष के मस्तिष्क में आँधी आ रही थी! सोच रही थी—क्या कभी कालेज से आते-जाते किसी ने छिप कर मेरी तस्वीर ले ली? लोग कैसे होते हैं? क्या होने वाला है?

राजा साहब एक एलबम लेकर लौटे। संतोष के मस्तिष्क और हृदय पर हथौड़े चल रहे थे। कोच पर बैठ कर राजा साहब ने एलबम खोला और संतोष के सामने कर दिया। एलबम के काले मटियाले कागज़ पर पोस्टकार्ड के आकार की तीन तस्वीरें एक साथ लगी हुई थीं। तीनों के नीचे क्रमशः लिखा था—"ममता" "करुणा" और "श्रद्धा"।

संतोष के मस्तिष्क में घुमड़ रहे बादलों की घटा छंट गयी और उसके चेहरे पर हलकी मुस्कान आ गयी। तीनों तस्वीरें प्रायः मिलती-जुलती थी। वह समझ गयी कि किसी बहुत बड़े विदेशी चित्रकार की बनायी तस्वीरों के फोटो थे। रूप बहुत ही सुकुमार और चेहरों पर ममता, करुणा और श्रद्धा के भाव भी उतने ही व्यक्त थे। चित्र बहुत प्यारे थे।

राजा साहब ने बीच की तस्वीर की ओर संकेत कर फिर पूछा "है न तुम्हारी तस्वीर?"







अनुक्रमणिका

संतोष ने इनकार में सिर हिला दिया पर अपनी इतनी सुन्दर तस्वीर और उस तस्वीर के प्रति राजा साहब का आदर देख मन गर्व से गद्‌गद् भी हो गया।

" नहीं, बिलकुल तुम्हारी तस्वीर है! " राजा साहबने आग्रह किया, " विश्वास नहीं होता हो तो आइने के सामने जाकर मिला लो।"

संतोष ने स्पष्ट इनकार में सिर हिलाया। अपनी तुलना इतने सुन्दर रूप से किये जाने से बहुत अच्छा तो लग रहा था।

राजा साहब ने कहा – " नहीं, तुम्हारी ही तस्वीर है, मैंने तुम्हें देखा तो तुरंत पहचान गया कि इसकी तस्वीर मेरे पास है। कैसा ही रूप और तुम्हारे हृदय के भाव भी तुम्हारे चेहरे पर कितने स्पष्ट थे। "

संतोष के मस्तिष्क में दूसरा चक्कर आ गया। उसकी आँखों के सामने राजा साहब का रूप बदल गया। कृतज्ञता में उसका सिर झुक गया। राजा साहब ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा– " ऐसे कब तक शरमाओगी ? ... क्या मुझसे बात करने को मन नहीं चाहता ? "

संतोष ने लज्जा से सिर झुका लिया।

राजा साहब ने कहा–" अच्छा एक बात का फैसला हो जाय। मैं तुम्हें ' करुणा ' पुकारूँगा। —ठीक है ? "

संतोष बोल ही नहीं पा रही थी। मुख से शब्द ही तो निकल सकते हैं; हृदय निकल बाहर तो नहीं आ सकता। वह चाह रही थी कि अपना हृदय निकाल कर इस देवता के चरणो में रख दे। वह सोफा से सरक कर फर्श पर आ गयी कि राजा साहब के चरणों में सिर रख कर अपने भाव प्रकट कर दे।

राजा साहब ने संतोष को बाहों में संभाल लिया – " यह ठीक नहीं करुणा। बोलो न, तुम मुझे क्या पुकारोगी ? "

संतोष का सिर राजा साहब के घुटनों पर टिक गया। बड़े यत्न से उसने होटों से कहा–" मेरे देवता। "

" देवता नहीं " राजा साहब ने समझाया, " हम दोनों जीवन-भर के मित्र, साथी और प्रेमी हैं। ... हैं न ? "

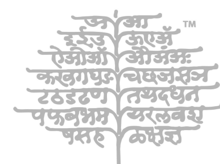
संतोष ने अपना माथा राजा साहब के घुटनों पर टिका दिया। वह उनके चरणों में समर्पण हो जाना चाहती थी पर वे उसे अपनी बाहों से रोके हुए थे। इस विवशता ने उसके सुख को कितना अपार कर दिया था। कुछ ही क्षण में इस अपरिचित व्यक्ति से वह कितना अगाध प्रेम करने लग गयी।

राजा साहब ने करुणा को फिर सोफे पर बैठा कर कहा–' करुणा क्या बताऊँ, कुत्ता बहुत रो रहा है। "

संतोष की एक छोटे कुत्ते के पीड़ा में " केऊँ केऊँ " करने का आर्त्त स्वर सुनाई दिया।

राजा साहब ने बताया — " पड़ोसी के एक बालक के बच्चे ने खेल – खेल में इसकी आँख में लकड़ी मार दी है। बहुत खून बहा।"

राजा साहब कुत्ते को गोद में लिये आये। कुत्ते की एक आँख और सिर पट्टी में लिपटा था। वह राजा साहब से लिपटा जा रहा था। राजा साहब उसे पुचकार रहे थे। राजा साहब की करुणा



देख कर संतोष का हृदय उमड़ आया। उसने आगे बढ़ कर कुत्ते को गोद में ले लेना चाहा।

राजा साहब ने कहा – "नहीं, अभी तुम्हें पहचानता नहीं है, नहीं मानेगा।"

राजा साहब बहुत देर तक कुत्ते को सहलाते रहे। मालिक के स्पर्श से कुत्ते को सांत्वना मिल रही थी परन्तु पीड़ा का जोर होने पर वह बार–बार रो उठता था। संतोष राजा साहब की इस अद्भुत करुणा को मुग्ध दृष्टि से देख रही थी।

कुत्ते को फिर व्याकुल होता देख कर राजा साहब उठे और उन्होंने डाक्टर को फोन कर राय ली – "क्या एस्प्रीन या कोई और दवाई उसका दर्द रोकने के लिए नहीं दी जा सकती?"

डाक्टर ने कोई दवाई बतायी थी। राजा साहब ने दवाई का नाम लिख कर चौकीदार को दिया – "जाओ, जहाँ से मिले, यह दवाई लाओ।"

चौकीदार को लाठी लेकर अंधेरे में जाते देख कर राजा साहब ने टोका —"नहीं, रात में ऐसे कहाँ जाओगे। ड्राइवर को कहो, गाड़ी में जाकर दवाई ले आये।"

संतोष देख रही थी, जाने क्या-क्या सोच रही थी और पल-पल में श्रद्धा के सागर में गहरी उतरती जा रही थी।

रात डेढ़ बजे के बाद कुत्ता सो गया तो राजा साहब को फुर्सत मिली। राजा साहेब ने संतोष के दोनों कंधों पर हाथ रख कर क्षमा-भी माँगी – "करुणा, मेरी बेवकूफी से परेशान तो नहीं हो गयीं तुम?"

आनन्द और संतोष से विभोर होकर संतोष ने सिर हिला कर उत्तर दिया – "नहीं"

* * *

राजमाता अपनी चांद जैसी बहू से बहुत संतुष्ट थीं। परन्तु इस बात का क्षोभ था कि अपने एकमात्र पुत्र के विवाह पर वे मन का कोई उत्साह पूरा नहीं कर सकी थीं। कब से ज़िद्द कर रही थीं कि लखनऊ में राजा साहब ने सब कुछ अपने साहबी तरीके से कर लिया परन्तु रियासत में वे प्रजा को क्या मुँह दिखायेंगी। वे रियासत में जाने पर कुछ न कुछ तो करेंगी ही। अहलकार, काम-कम्मी और नेग की उम्मीद करनेवाले लोगों के साथ अन्याय क्यों हो? रियासत की रानी को एक बार चार दिन के लिए तो अपने घर जाना ही चाहिए फिर चाहे लौटकर लखनऊ ही रहे। प्रजा क्या जानेगी कि उनकी रानी है कि नहीं?

राजा साहब को माँ के उपवास के डर से उनकी बात भी माननी पड़ी। होली पर रियासत में जाने की बात पक्की हो गयी थी। राजमाता मुंशी जी को लेकर संक्षिप्त से जलसे की तैयारी की बात करती रहती थीं।

संतोष को देहात का कुछ परिचय नहीं था। उतना ही परिचय था जितना पुस्तकों और उपन्यासों से हो सकता है। वह स्वच्छन्द वातावरण और प्रकृति की शोभा में जाने की बात सोच रही थी!



साक्षी

—रूपकथक

आज मैंने पिछली स्मृतियों को याद न करने का निश्चय किया है। पुरानी घटनाओं को दोहराने से क्या लाभ? मुझे उसमें कोई भी मजा नहीं आता।

तो पिछली स्मृतियाँ अब भूलनी होगी, – मुझे....मुझे लगा कि तुम उसे भूल गयी होगी। क्या उसके सिवा यह संसार इतना निर्विकार रूप से चलता?

स्त्रियाँ चतुर होती हैं। जीवन में उन पर चारों ओरसे इतना जुल्म होता है कि उसका सामना करने के लिए उन्हें चतुर बनना ही पड़ता है। क्या प्रेम चतुरता का ही एक भाग है?

प्रेम!.... तुमने कभी प्रेम किया हो तो तुम्हें पता चलेगा। मैं समझता हूँ कि तुम इसे समझोगी।

किन्तु तुम चतुर कभी भी नहीं थी। कुछ बातें तुम्हारी समझ में आ नहीं सकती थीं। उसी अवस्था में मैं भी तुम्हारी ओर बरबस आकर्षित नहीं होता था। केवल तृप्ति — और केवल करुणा। अनादिकाल से करुणा ही प्रेम का शत्रु है।

मेरी यह समझ में आया इसका तुम्हें पता नहीं चला।

तुम्हारे हृदय में दो अचूक शक्तियाँ हैं। एक सभी जगह कोलाहल मचाती है और दूसरी तुम से चाहे जैसे परिश्रम कराती है। इसलिए मैं तुम्हें अब तक दोषी नहीं ठहरा सका।

तुम्हारा सहवास, तुम्हारा विचार एक आँधी के समान है और मैं एक ठूंठ वृक्ष के समान हूँ।

मैं नहीं झुका, वह था मेरा प्रेम।

तुम पर मैंने एक रूपक रचा है। उसमें सुविधा के लिए मैंने अपने पास तुम्हारी ही भूमिका रखी है।

इससे एक बात हुई कि, मुझे इसमें कहीं भी मौका नहीं मिला।

"आरसी की तरह चमकने वाले पानी में मैं अपने को 'नर्सिस' के समान देखती हूँ। मेरे शरीर का प्रत्येक अवयव इतना मनोहर और कांतिमय है कि, उनका शरीररूप ही मैं भूल जाती हूँ। मेरे पास लावण्य का इतनी विपुल इतना संचय है कि मैं पूर्णतः संतुष्ट होती हूँ।"

ऐसी ही हो तुम ! मैं रात-दिन जलता हूँ। तुम्हें मालूम नहीं कि कब से मैंने तुम्हें अपनाया है। यही है मेरी और सारे संसार की पद्धति। तुम्हारी पद्धति संसार से अलग है।

क्या तुम ने कभी कुछ सीखा ही नहीं है? या तुम्हें उसकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई?

बीज अपने में समक्ष वृक्ष का विस्तार समाहित रखता है, इसीलिए उसे सम्पूर्ण कहा जाता है। तुम भी ऐसी हो।

चाहती हो सो तो ले लेती हो–लेकिन अपने को सानन्द अर्पण करना नहीं जानती। तुम्हारा शायद वह धर्म ही नहीं है। तुम्हारे दृष्टिकोण से तुम्हारे विकास का कोई अर्थ ही नहीं है। बस, सब कुछ तुम्हारा है और यही महत्व की बात है।

मेरी समझ में यह बात कब आयी?

मेरी समझ में यह बात कैसे आयी?

.... मैं जब तुम्हें टालने लगा तब?

किन्तु करुणा का अर्थ प्रेम नहीं, वैसे ही भक्ति का अर्थ भी प्रेम नहीं। प्रेम दाहक होता है। दूसरों के अधीन होता है।

इसके सिवा तुम में इतना क्या था जिससे कि मैं इतने दूरसे तुम्हारी याद कर सकूँ?

तुम्हें दूर जाने की इजाज़त मुझे नहीं देनी चाहिये थी। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारे पीछे मुझे आना चाहिये था। किसी भी हालत में तुम्हारे साथ रहना चाहिये था!

देखो! काल कैसा अचल होता है।

जो हो चुका वह अब ठीक नहीं जँचता। बार-बार लगता है कि जो होता है वह नहीं होना चाहिये था। मन ही मन विश्वास होता है कि जो होना चाहिये वह होगा ही नहीं। ***

किन्तु आज मुझे इस से अचानक छुटकारा मिला हुआ है।

मैं तुम्हारे पास आने के लिए निकल पड़ा हूँ।

मैं तुम्हारे बारे में अब विचार ही नहीं करता।

मैं अब अपना भी विचार नहीं करता।

देखो, निर्णय लेने में ही कितना समय लगता है।

★

यह भी ख्याल था, शायद वहाँ पर्दे के अदब-कायदे निबाहने होंगे रानी बनकर जाने कैसा व्यवहार करना होगा?

राजमाता कुछ दिन पहले ही रियासत में जा चुकी थीं। राजा साहब और संतोष के पहुँचने की तारीख निश्चित थी और उस दिन उनके स्वागत के लिए राजमहल के सामने रियासत के स्कूल के लड़कों और प्रजा के एकत्र होने की बात थी।

राजा साहब ने संतोष से बात की – "करुणा, इतने लोग भीड़-भड़का करके खुद परेशान होंगे और हमें भी परेशान करेंगे। इससे क्या फायदा होगा। हम दो दिन पहले ही चले जायें तो क्या हर्ज?"

संतोष राजा साहब की आडम्बरहीन सादगी पर और भी निछावर हो गयी। 'न' कहना तो वह जानती ही न थी।

राजा साहब और संतोष बहुत बड़ी 'शिवरलेट' गाड़ी में खूब तेजी से लखनऊ से बहत्तर मील दूर जगनपुर की ओर चले जा रहे थे। पक्की सड़क पर पचपन मील एक घंटे में चलने के बाद मोटर कच्ची सड़क पर चलने लगी। मोटर के पीछे धूल की ऐसी घटा उठ रही थी कि उसके बीच से कुछ दिखायी नहीं दे सकता था। गाड़ी के धीमे चलने पर भी ऐसे हिचकोले लगते थे कि शरीर उछल-उछल जाता।

सूर्यास्त का समय हो रहा था। ढाक फूल कर जंगल लाल हो रहे थे। कहीं-कहीं सरसों के फूले हुए खेत आ जाते थे। संतोष आँखें फैलाकर इन नयी चीजों को देख रही थी। सड़क के किनारे टेढ़ी-मेढ़ी कच्ची दिवारों और फूस के छप्परों से छाये गाँव दिखायी दे जाते थे। कहीं फूस और उपलों के स्तूप। गाँव के समीप से जाते समय गोबर की अथवा दूसरी दुर्गंध गाड़ी के बंद शीशों के भीतर भी आ जाती थी। मोटर को देखने के कौतूहल में नंगे बच्चे लड़के और लड़कियाँ, सूखे-सूखे, काले हाथ पाँव और फूले हुए पेट लिए रास्ते के दोनों ओर आ खड़े होते थे। संतोष को उस ओर देखते देखकर राजासाहब ने धीमे से कहा, "यह है हमारे गाँव की शोभा" और फिर कुछ सोचकर बोले, "और इन्हीं गाँवों की पैदावार पर शहरों की सब शोभा और टाट हैं—यह गाड़ी भी, जिसमें बैठे हम इनके पास से गुजरते हुए अपनी नाक दबा रहे हैं।"

संतोष लजा गयी। नाक पर रक्खा रुमाल हटा लिया। उसने श्रद्धा से फैली हुई आँखों से राजा साहब के चिन्तित चेहरे की ओर देखा और सोचा, कितने विचारवान हैं ये।

मोटर रियासत में राजमहल के सामने पहुँच गयी। अभी अंधेरा घना नहीं हो पाया था। मोटर को देखते ही खलबली मच गयी। राजा साहब उस हलचल की उपेक्षा कर के संतोष को साथ ले कर भीतर चले गये।

सुबह संतोष की नींद जल्दी ही खुल गयी। राजा साहब के कमरे महल की तीसरी मंजिल पर थे। नींद खुलते ही संतोष के कान में पहला शब्द पड़ा कोयल की कूक का। उसका मन यों भी प्रफुल्ल था। अपने घर, अपने राज में, अपनी प्रजा का आदर पाने के





अनुक्रमणिका

लिए आने की भावना मन में थी। उठते ही कोयल की कूक कान में पड़ने से उसके होठों पर मुस्कान आ गयी। बिना आहट किये वह पलंग से उठी और प्राकृतिक शोभा की झलक पाने के लिए खिड़की की ओर चली गयी।

संतोष को अचानक एक और शब्द सुनाई दिया – किसी के पीड़ा में चिल्लाने का आर्तनाद। एक सिहरन-सी अनुभव हुई। उसकी नजर महल के नीचे सिमिट आयी। बायीं ओर महल के साथ खिंचे छोटे अहाते की कार्रवाई ऊपर से दिखाई दे रही थी। पीड़ा में चिल्लाने यह आवाज वहीं से आ रही थी।

संतोष ने साँस रोक कर उस ओर फिर ध्यान से देखा कि कई आदमी विचित्र पीड़ित अवस्था में झुके हुए, अपनी टांगों के नीचे से बाँहें निकाल कर अपने झुके हुए सिर में से कानों को पकड़े मुर्गे बने हुए थे। आस–पास कमर में चपरासियों जैसे पेटिया बांधे कुछ लोग खड़े थे। जमीन पर गिर पड़े एक आदमी को एक चपरासी डंडे से मार रहा था और मार खाने वाला आदमी गला फाड़ कर दया के लिए चिल्ला रहा था।

संतोष काँप उठी। अधीर होकर पुकार उठी—"देखिये! देखिये!" वह राजा साहब के पलंग की ओर झपटी।

राजा साहब की नींद टूट चुकी थी। वे उठकर आँखें मल रहे थे। संतोष की पुकार सुनकर वे चौंके और उसकी ओर देखा। उसे खिड़की की ओर से आते देख और सुबह के सन्नाटे में नीचे से आर्त चिल्लाहट सुनकर उनका विस्मय का भाव जाता रहा। स्थिति समझ कर उन्होंने कहा —

"करुणा, उधर नीचे कचहरी की तरफ मत देखो। यह सब तो रियासतों में होता ही है।"

"वहाँ नीचे—" संतोष की साँस रुक रही थी। बोल नहीं पा रही थी।

"हाँ–हाँ, मैं समझता हूँ। शायद इस जल्से-वल्से की वसूल की बात होगी या लगान नहीं दे पाये होंगे। तुम उधर मत देखो। करुणा, यह तो होगा ही।" स्नेह से राजा साहब ने समझाया।

"पर आप तो दया—" संतोष ने हाँफते हुए कहना चाहा।

"हाँ, पर इन बातों में दया की गुंजाइश कहाँ है? इसी व्यवस्था पर तो हमारा अस्तित्व है। शहद खाना है तो मक्खियों से छीनना ही पड़ेगा। करुणा, दया कर सकने का साधन भी तो इसी से आता है—।"

संतोष सिर पकड़ कर फर्श पर बैठ गयी। — यह सब शायद उसके रियासत में आने की खुशी मनाने के लिए हो रहा है।

राजा साहब ने फिर स्नेहसे पुकारा—"करुणा।"

यह सम्बोधन सुनकर संतोष का मन चाहा कि अपना सिर फर्श पर पटक दे। ★







मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



शरत् चर्चा



इलाचंद्र जोशी

शरत् यद्यपि बहुत छोटी उम्र से ही लिखने लगे थे। फिर भी अपनी रचनाओं के प्रकाशन के विरोधी थे। पर नियतिका चक्र कुछ अजीब-सी उलटी-सीधी गति से चलता है…

आज के साहित्यिक नक्कारखाने में शरत्चंद्र का तो क्या किसी भी पिछले लेखक की कृतियों का समुचित मूल्यांकन संभव नहीं रह गया है। जब सभी साहित्यिक दल अपनी-अपनी डफली में अपना अपना राग बजाने में व्यस्त है, तब न तो कुछ निश्चित नये साहित्यिक मानों का निर्धारण हो सकता है और न पुराने मानों की विशेषताओं की ओर ही लोगों का ध्यान आकर्षित हो पाता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि हमारी नयी पीढ़ी केवल शरत्चंद्र के नाम से ही परिचित होकर रह गयी है। उनकी रचनाओं की चर्चा उसने सुनी है और कुछ नये आलोचकों ने उनकी दो एक कृतियों को उलट-पुलट कर देखा-परखा भी है। पर आज किसी में भी शरत् और उनके साहित्य के सम्बन्ध में विशेष उत्सुकता नहीं रह गयी है।

इसमें शरत् का दोष कितना है और युग का कितना इस पर बहस करना बेकार है। मैं केवल इतना बता देना चाहता हूँ कि हमारी पीढ़ी इस सम्बन्ध में बहुत भाग्यशाली रही है। हम लोगों को शरत् की रचनाओं ने जो सुख दिया, जिस अपूर्व जीवन-रस-धारा में डूबने-उतराने की मानसिक स्वच्छंदता प्रदान की वैसी जीवन में फिर कभी प्राप्त न हो सकी।

मुझे अच्छी तरह याद है, १८ वर्ष की उम्र में बंकिम और रवीन्द्र के कथालोक में विचार चुकने के बाद जब अकस्मात् शरत् साहित्य की दुनिया मेरे लिये उद्घाटित हुई तब कितने काले परदे मेरी आंखों के आगे से हट गये थे और सुख-दुख एवं पाप-पुण्य-मय जीवन के कितने नये स्तर कैसे कैसे रंग-बिरंगे रूपों में मेरी अन्तश्चेतना के आगे खुलते चले गये थे।

शरत् को पाने पर बंकिम और रवीन्द्र का काल्पनिक लोक न जाने पीछे कहां छूट गया और कठोर याथार्थ की पृष्ठभूमि में नये-नये रंग दिखानेवाली एक अजीब-सी रूमानी रंगीनी मन के अंधेरे कोने में छा गयी।

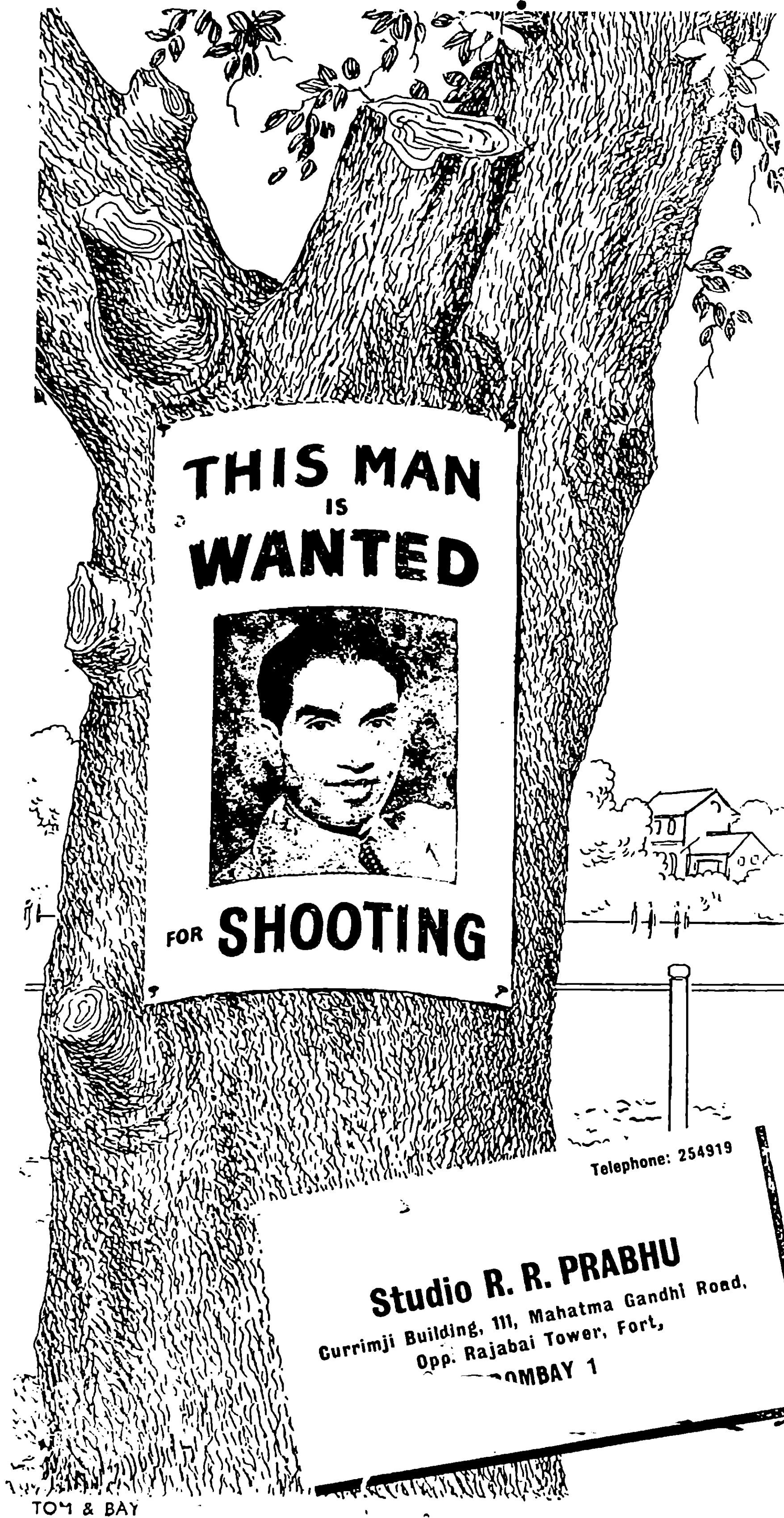
हम लोग शरत् के पीछे पागल हो गये थे। उठते-बैठते, सोते-जागते उनके पात्र विविध वेषों में विभिन्न रूपों में हमारे अंतर्मन के चारों ओर मंडराते रहते थे। लगता था जैसे विधाता की एक बिलकुल ही नयी और जादूभरी सृष्टि का रहस्य-पट हमारे आगे खुल गया हो।

शरत् का जो जादू ऐसी प्रबलता से हम लोगों के सिरों पर चढ़कर बोल उठा था उसके मूल कारण का विश्लेषण जब हम आज करने बैठते हैं तब एक बात स्पष्ट रूप से हमारे सामने आती है। शरत् की दुनिया में प्रतिदिन के जीवन की घोर यथार्थता का वह आभास हमने पाया जिसका बंकिम या रवीन्द्र में निपट अभाव था। प्रथम महायुद्ध ने हमारे मन को जीवन की कठोर यथार्थता की ओर बहुत अधिक उन्मुख कर दिया था पर उस मनःस्थिति के अनुरूप साहित्य हमें नहीं मिल रहा था। शरत् ने उस यथार्थता के अभाव की पूर्ण पूर्ति कर दी ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर यथार्थ की जितनी भी झांकी उनकी रचनाओं से हमें मिली उसने हमें वास्तविक जीवन के प्रवाह के बीच में काफी दूर तक आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण शरत् के आकर्षण का था यथार्थ की पृष्ठभूमि में विद्रोही आत्माओं के रूमानी जीवन का मार्मिक और साथ ही रोचक चित्रण, जो न तो विजातीय लगता था न अस्वाभाविक।

आज की अति-यथार्थवादी दृष्टि से यदि हम देखें तो शरत् के पात्रों की जिस विद्रोहात्मक प्रवृत्ति ने तब हमें मतवाला बना दिया था वह अत्यन्त साधारण और उपेक्षणीय लगेगी। संकीर्ण और रूढ़ प्रवृत्तियों के विरुद्ध कोई बड़ा महत्वपूर्ण सामाजिक विद्रोह शरत् के किसी पात्र ने किया हो, आज के पाठक को ऐसा नहीं लगता। पर उस युग के लिये उन पात्रों की स्वल्प विद्रोहात्मकता भी कितनी प्रभावशाली थी यह बात वे लोग

अनुक्रमणिका



नहीं भुला सकते जिन्हें उस काल की संकीर्णता के चट्टानों को काट-काट कर धीरे-धीरे आगे बढ़ने का रास्ता निकालना पड़ रहा था।

उस युग की संकुचित रूढ़िवादिता का एक ज्वलंत उदाहरण शरत् के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्रहीन' के प्रकाशन संबंधी इतिहास से मिल सकता है। शरत् की दो एक कहानियां और एक-आध लघु उपन्यास विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके थे। और केवल उतने ही से एक प्रतिभाशाली नये लेखक के आगमन की सूचना बंगाल के तत्कालीन साहित्य-पारखियों को मिल चुकी थी। उन कहानियों में सुन्दर पारिवारिक चित्र अंकित किये गये थे, जिनमें विद्रोह की कोई झलक नहीं मिलती थी। केवल एक नयी कहानी कला के नये चमत्कार का सुन्दर परिचय मिलता था। उन कहानियों से और उनके कारण शरत् की निरन्तर बढ़ती हुई ख्याति से, प्रभावित होकर 'भारतवर्ष' के तत्कालीन संपादकीय मंडल के एक प्रभावशाली सज्जन ने उनसे एक धारावाहिक उपन्यास लिखकर भेजने का आग्रह किया। शरत् ने 'चरित्रहीन' का प्रारंभिक अंश उनके पास भेज दिया। इस उपन्यास में शरत् ने कलकत्ते के एक साधारण वासे में काज करने वाली एक नोकरानी को हिरोइन बना दिया था। बस केवल इतनी ही बात से 'भारतवर्ष' का संपादक-मंडल बिदक गया। लेखक ने उन अत्यंत साधारण परिस्थितियों के भीतर से उस समाज-दलिता नायिका के विकास का पथ किन दिशाओं में प्रशस्त करने की योजना बनायी है यह जानने की कोई उत्सुकता ही फिर उन लोगों के मनमें शेष नहीं रही। एक तुच्छ नोकरानी को उपन्यास की प्रधान नायिका बनाने का अपराध और धृष्टता वे लोग क्षमा न कर सके और उन्होंने अत्यंत घृणा के साथ 'चरित्रहीन' की अधूरी पांडुलिपि शरत् को लौटा दी।

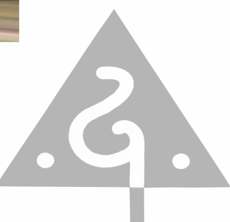
जो उपन्यास उस युग में इस कदर खतरनाक रूप से प्रगतिशील माना गया था वह आज पढ़ने पर प्रतिक्रियात्मक लगता है। उसकी नायिका सावित्री केवल इस कारण अपने मनचाहे व्यक्ति से सामाजिक संबंध





अनुक्रमणिका





स्थापित न कर पायी कि वह विधवा थी। यह विरोध स्वयं नायिका की ओर से अडिग था। उसने अपने मनचाहे युवक का विवाह एक दूसरी लड़की से कराने के षड्यंत्र में नायक के आत्मीयों का पूरा साथ दिया और नायक को यह समझा दिया कि सामाजिक मान्यता को ध्यान में रखते हुए उन दोनों का केवल आत्मिक संबंध ही उचित है, सामाजिक या शारीरिक संबंध नहीं।

और इस नायिका को शरत् ने एक आदर्श नायिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इस से स्पष्ट हो जायेगा कि शरत् के उपन्यासों में उस समय जिस विद्रोह ने हमें प्रभावित किया था उसकी सीमा कहाँ पर थी।

'चरित्रहीन' के साथ कई दुर्घटनाएं घटीं। १९१२ में जब वह बर्मा में ६० रु० मासिक वेतन हर क्लर्क का काम करते हुए किसी तरह जीवन निर्वाह कर रहे थे, तभी उन्होंने 'चरित्रहीन' प्रायः पूरा लिख डाला था। 'नारी का इतिहास' प्रायः ५०० पृष्ठ लिख चुके थे। सहसा एक दिन मकान में आग लग जाने से ये दोनों तथा और भी कुछ पांडुलिपियां जलकर एकदम राख हो गयीं।

शरत् यद्यपि बहुत छोटी उम्र से ही लिखने लगे थे और उनके कई शिष्य भी बन चुके थे, तथापि वह आरम्भ ही से अपनी रचनाओं के प्रकाशन के विरोधी थे। नवयौवन में उन्होंने जो कहानियाँ या लघु उपन्यास लिखे थे उनकी पांडुलिपियाँ उन्होंने अपने शिष्यों में बाँट डाली थी— इस हिदायत के साथ कि उनका जैसा चाहें उपयोग करें, केवल उन्हें उनके नाम से न छपायें। बर्मा में जब वह साहित्य से शून्य जीवन बिता रहे थे तब उनके लड़कपन में लिखी गयी दो एक कहानियाँ उनके किसी शिष्य ने प्रसिद्ध पत्रिकाओं में छपा डालीं। शरत् को पता लगा तो उन्हें बड़ा धक्का पहुँचा। पर जब चारों और उन कहानियों की प्रशंसा होने लगी तो उन्हें लगा कि अब कुछ ऊँचे स्तर की चीजें लिख कर पूरी तैयारी से साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये। चरित्रहीन इसी निश्चयका फल था।

पर जब आग लग जाने से सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया तो फिर साहित्य के संबंध में उसी पुराने वैराग्य ने उन्हें आ घेरा। इस घटना के बाद उन्होंने एक मित्र को लिखा भाग्य को यह स्वीकार नहीं है कि मेरे दुवारा साहित्य में कुछ काम हो, इस घटना से मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ। नये सिरे से कुछ लिखने का उत्साह नहीं रह गया...

मन की उस डाँवाडोल स्थिति में शरत् यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि यदि उन्हें जीवन में क्लर्की के अतिरिक्त और कुछ करना ही है तो साहित्य, इतिहास या चित्र-कला इन तीन में से किस पेशे को अपनायें। इतिहास और चित्रकला में से एक को अपनाकर, साहित्य से एकदम मुंह मोड़ लेने की बात वह अत्यंत गंभीर रूप से सोचने लगे थे। पर नियति का चक्र कुछ अजीब-सी उलटी-सीधी गति से चलता है। इसलिए शरत्चंद्र अंत में शरत्चंद्र ही बनकर रहे। ★



अनुक्रमणिका



बुढ़ापा आ चुका है; युवावस्था की उमंगें कभी की गल चुकी हैं। और... और... यकायक सरपर भूत सवार होता है। मन की मँजरियाँ एक बार फिर खिल जाती हैं और इंडियन समर खिल उठता हैं।

भाईजीका इंडियन समर

विठ्ठलराव घाटे

इंडियन समर। अमेरिकामें स्थित इंडियनों का समर। बड़ी मजे की बात है। प्रकृति पर ऋतु चक्र पर कभी–कभी सीधासरल राजमार्ग छोड़कर पगडंडीसे चलने का सनक सवार होता है। इंडियन समर एक ऐसी ही अमेरिकी प्रकृति की सनक हैं। असली समर तो कभी का समाप्त हो चुका है। काया को रोमांचित करने वाली हवा की लहरें उठती हैं। निष्पर्ण वृक्ष हिम वर्षा के लिए भयाकुल होकर तैयार होते हैं। तब यकायक कोई जादूई डण्डा फेर लेती है। अकस्मात शानदार, गर्म धूप फैलती है। सूरज की रोशनी जगमगाती हुई दिखायी देती है। पंछी और तितलियाँ फिर एक बार मन चाहे फुदकने लगती हैं। समझदार आदमी भी कारण के सिवा घरसे बाहर आ जाते हैं और बंजर जमीन पर, वनमें, बगीचेमें भटकने लगते हैं और हेमन्त के शीतल राज्य में अचानक घुस आये वसन्त का स्वागत करते हैं।

आदमी के जीवन में भी, यह आगंतुक इंडियन समर भी कभी कभी झाँकता है — वहाँ घुस आता है और झट उसे अपने काबूमें ले लेता है। बुढ़ापा आ चुका है; युवावस्था की उमंगें कभी की गल चुकी हैं। चाय में ताकत की दवा डालकर पीने के, घुटनें में आयोडॅक्स मलने के, कान बाँधकर नियत सपाट रास्तेपर टहलने के दिन आये हैं। तब यकायक सर पर भूत सवार होता है। किसी तरह तब कुछ न कुछ हो ही जाता है और कोई न कोई मिल जाता है। कान पर बँधा मफलर गल जाता है तथा विगत वसन्त का फिर एक बार आगमन हो जाता है। मन की मंजरियाँ एक बार फिर खिल जाती हैं और इंडियन समर खिल उठता है।

हमारे भाईजी का भी यही हुआ ! सरदी के दिन थे। सुबह का समय था। मैं चाय की गरम-गरम चुसकियाँ लेते हुए अखबार उलट रहा था। अकस्मात मेरी निगाह एक छोटेसे समाचार पर पड़ी और मैं आश्चर्य से चिल्ला उठा। वह समाचार तो आश्चर्य करने लायक ही था। कौन अचंभेमें न पड़ेगा ? भाईजी तो बूढ़े हो चुके थे। परसों ही हम दोस्तों नें और उनके शिष्यों ने उनका षष्ठ्याब्दि समारोह मनाया था। भाईजी को आरोग्य प्राप्ति के लिए हमने ईश्वर की प्रार्थना की थी। हमारी यह प्रार्थना भाईजी के लिए आवश्यक थी। उन्हें हृदय का विकार था। सीढ़ी चढते समय भाईजी को बड़े कष्ट होते थे। 'उंधियु'[1] तो उनकी पसंदगी का पकवान था। लेकिन वह भी उन्हें छोड़ना पड़ा। और यह बूढ़ा अब शादी कर बैठा था; और वह भी ज्योति के साथ !

ऐन जवानी में भाईजी की पत्नी का देहांत हुआ था और ऐन

१ गुजरात का एक पकवान—

अनुक्रमणिका





विठ्ठलराव द. घाटे :

आपकी रचना दीपावली पहलीवार पाठकों को प्रस्तुत कर रही है। आप ख्यातनाम शिक्षण शास्त्रज्ञ हैं। आप ने खींचीं व्यक्ति रेखाएँ पाठक पढ़ते पढ़ते स्वयं देख लेते हैं।

जवानी में ही वे गांधीजी की ओर आकर्षित हुए थे। वह जमाना ही वैसा था। "*Bliss it was in those days to be alive. But to be young was very heaven !*" भाईजी जवान थे। गुजरात के समतल मैदान पर नियति के भूकंपने एक प्रचण्ड लोह चुंबक परबत ऊपर फेंका था। इस परबत के आकर्षण से निद्रित जन जाग उठे, जाग्रत जन मार्गक्रमण करने लगे और जो चलते थे वे गाय के बछड़े जैसे तितर बितर दौड़ने लगे। इन दौड़ने वालों में भाई जी अग्रगामी थे। फिर भी वे तितर बितर दौड़े नहीं। वे तो चलकर सीधे विद्यापीठ में जा पहुँचे और सरकार मान्य महाविद्यालय छोड़कर विद्यापीठ में प्रविष्ट हुए ध्येयवादी विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे।

लेकिन विद्यापीठ में भाई जी के जीवन में द्वंद्व निर्माण हुआ। श्रद्धा और रसिकता आपस में झगड़नें लगीं। रसज्ञ कवि और गांधीवादी देशभक्त एकही शरीर और एकही मन में समाने में हिचकिचाने लगे। भाईजी खद्दर पहनते थे, नित्य नियम से चर्खा भी चलाते थे; लेकिन सुंदर महीन वस्त्र की ओर रसज्ञ दृष्टि से देखते ! भाईजी बिना मसाला वाली कद्दुकी साग श्रद्धापूर्वक खा लेते; लेकिन भूत काल में चखे हुए स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों का उन्हें कभी कभी स्मरण होता और उस समय तो उनका मन अस्वस्थ हो जाता। विद्यापीठ के फ़कीरी जीवन में भी भाईजी की संगीत की आसक्ति घटी नहीं। भाईजी विद्यापीठ में आये लेकिन अपने साथ अपने प्यारे शेली, वर्डस्वर्थ और ब्राउनिंग लेकर आये। उनके टेबल पर गीताके स्थानपर प्रायः 'गोल्डन ट्रेझरी' ही दिखायी देती थी। सुप्रभात की शांत वेलामें स्तोत्र के बदले भाईजी "*Earth has not anything to show more fair*" इनकी जैसी सुंदर अंग्रेजी पंक्तियाँ गुनगुनाते रहते; भक्ति भाव से '*Hound of Heaven* का ही पठन कर लेते। इसलिए स्वाभाविकतया विधुर होकर भी भाईजी गांधीजी के इर्दगिर्द जमे हुए विधुरोंके और ब्रह्मचारिओंके आंतरपरिधि में घुसे नहीं। वे तो अलग रहे, अलिप्त रहे। रसज्ञ वृत्ति को और प्रवृत्ति को अपने अन्तर्मन में छुपा ने की झंझट में भाईजी कभी भी न पड़े। दो पत्नियोंको सम भावना से बसाने वाले खानदानी पति के समान भाईजीने रसिकता और गांधीवादी श्रद्धा इन दोनों को बराबरी के नाते चलाने की चेष्टा की। दोनों में स्वाभाविकतया कभी-कभी झगड़े हो जाते। भाईजी कभी एक ओर तो कभी दूसरी ओर झुक जाते, लेकिन अति शीघ्र वे अपना तोल संभाल लेते। इस सरलता के कारण भाईजी की बातचीत में स्वार्थ त्याग की डींग दिखायी नहीं देती। चेहरेपर वीरान मुद्राहीनता और चिड़चिड़ाहट कभी दृष्टिगोचर नहीं होती।

जब विद्यापीठसे संबंध टूटा, वह झगड़ा भी मिट गया। दोनों वृत्तियाँ मिल गयीं और भाईजी के जीवन में एक सुंदर तथा स्वच्छ संयम आ गया। भाईजी किसी बात के काबू में नहीं गये वैसे ही किसी प्रकार की छूआछूत उन्होंने मानी नहीं और पाली भी नहीं। भाईजी का काव्यविनोद अब अनिर्बंध जारी था। लेकिन भाईजी विधुर ही रह गये। उनके हृदय में वैसे तो किसी प्रकार की शून्यता नहीं थी। रंग-रूप-नाद-स्पर्श इन माध्यमोंसे सौंदर्य भाईजी से मिलता और उन्हें संतुष्ट करता था।

भाईजी की इच्छा शक्ति बलवती थी। हृदय विकार होते हुए भी इसी शक्ति के बलपर भाईजी जीवित थे, और केवल जीवित ही नहीं थे वे तो भरपूर काम करते थे। डाक्टर लोगोंने उन्हें छोड़ा था। भाईजी काव्य–शास्त्र–विनोद में मग्न हो जाते; फिर भी उनका ध्यान उनके संशोधन कार्य में ही केंद्रीभूत था। गुजरात के विविध प्रकार के गीत, स्त्री गीत, भवई, रास, गरबा इन सबका उन्हें बन्दोबस्त करना था। नाद-सृष्टि के इस दंडकारण्य का उन्हें साफसुथरा और सुंदर बगीचा बनानेका था। भाईजीने गायन कला सीखी, तबला वादन भी सीखा। जब कोई गाता तब भाईजी ताल धर लेते; जब कोई बोलने लगता तब उसके भाषण में लय ढूँढने लगते। गुजराती भाषा तो लयबद्ध और मुलायम है। नागर संस्कार युक्त स्त्रियों की जिव्हाओंपर जब यह भाषा नाचने लगती है तब एक नाद मधुर 'सिंफनी' का निर्माण होता हैं। भाईजी ने हमें गुजराती गद्य भाषा स्थित लय का आस्वाद लेनेकी सीख दी।





धीरे-धीरे भाईजी को युवक युवतियोंने घेर लिया। भाईजी अब तो जवान नहीं थे; लेकिन उनका मन यौवन भरा और ताज़ा था। युवक उन्हें अपना मानते। इन युवकों में कोई कवि थे, कोई चित्रकार थे तो कोई कथाकार थे। भाईजी के घर में हर एकका स्वागत होता, यथाकाल और यथोचित आदर-सत्कार भी हो जाता।

इन युवकों के साथ ही भाईजी के जीवन में ज्योति ने पदरव न करते प्रवेश किया। ज्योति सुंदर थी — बहुत सुंदर थी; लेकिन अपने सौंदर्य का उसे पता ही न था। जिन्होंने उसे उसका सौंदर्य ज्ञात करानेकी चेष्टा की वे तो फँस गये। शारीरिक सौंदर्य से अधिक ज्ञान के उग्र तेजसे ज्योति चमक रही थी। वह तो एक ज्ञान ज्योति ही थी। उसकी वे भाव गंभीर आँखें नित्य चिंतनमें डूबी रहती थीं। ज्योति भी भाईजी के समान ज्ञानोपासक थी। वास्तव में भाईजी की ज्ञान साधनासे ही वह ज्ञानपिपासु लड़की उनके निकट आयी थी। भाईजी छंदों की व्यवस्था लगाने में लीन थे तो ज्योति पुराने गुजराती अनुसरण करते अपभ्रंश के जंगल में टटोल रही थी। भाईजी ज्योतिको मार्गदर्शन करने लगे। उसके साथ हेमचंद्र पढ़ने लगे। ज्योति भी भाईजी के संशोधन काम में हाथ बँटाने लगी।

यह थी भाईजी और ज्योति की आज तक की कहानी। भाईजी के पष्ठ्यब्दि समोराह में ज्योति ने बड़े उत्साह से भाग लिया। हमने भी उसकी सराहना की। हमें उसका यह बरताव विपरीत न लगा। लेकिन भाईजी, उनकी बेटी जैसी शोभने वाली ज्योति के साथ विवाह कर बैठेंगे, इस कल्पनाका स्पर्श हमें कभी हुआ नहीं था। वृत्तपत्र के उस समाचार पर विश्वास रखने मैं तैयार नहीं था। लगता कि शायद किसी दुष्ट ने संपादक को ठगा दिया होगा। इस प्रकारका समाचार विश्वासनीय कैसे लगे? भाईजी तो औदिच्य ब्राह्मण थे। ये ब्राह्मण तो बहुत शुद्ध और उच्चभ्रू होते हैं। प्याज भी खाते नहीं। और ज्योति तो थी नीम्न जातिकी। और भाईजीकी उम्र और उनका वह विकार ...।

मैंने आशंका से भाईजी को पत्र लिखा, उसमें उस समाचार का निर्देश किया और व्यंगसे पूछा कि क्या मैं आपका अभिनंदन करूँ? थोड़ेही दिन में भाईजी का उत्तर आया। अब वह भूतकालीन सादे कागज पर नहीं था। वह एक मूल्यवान् कागज था, बायीं ओर भाईजी और ज्योति इनके नाम एक के नीचे एक नीली स्याही में छपे थे। दायीं ओर घरका पता और टेलीफोन नंबर छपा था। बीच में दो हाथोंका मिलन दिखायी देता था। उनमें से एक हाथ शायद बूढ़ा होगा — कमसे कम मुझे तो वैसे लगा। भाईजी पत्रमें लिखते — "आपने जो समाचार पढ़ा वह सच है। उसमें अचंभा कौनसा? आजकल मेरे भोजन के बारेमें कुछ असुविधा अनुभव कर रहा था। फलस्वरूप संशोधन का कार्य भी मन के अनुसार होता नहीं है। आप की बात तो भिन्न है। बाजरा की रोटी और दूध से ही आप अपना काम चला लेते हैं। मैं सुरत का निवासी हूँ। हम में जिव्हा-लौल्य तनिक अधिक होता है। ज्योति आजकल पीछा करने लगी; शादी करने का हठ करने लगी। वह कहती कि विवाह के बिना वह मेरी देखभाल न कर सकेगी। अंतमें मैं तैयार हुआ। ज्योति बहुत बढ़िया रसोई बनाती है। भोजनकी व्यवस्था उत्कृष्ट हुई है। काम भी अधिक होने लगा है। विवाह तबीअत को अनुकूल ठहरा है। आप कब आयेंगे? विशेषरूपसे समय निकाल कर आइये और हमारा नया संसार देख लीजिए। ज्योति कढ़ी शानदार बनाती है और पुरणपोळी भी। 'पुरणपोळी' यह पकवान गुजरात और महाराष्ट्र इन दो प्रान्तों को जोड़नेवाली एक मीठी कड़ी है। शीघ्र आइए। आपकी मनपसंद 'दाल-ढोकळी' भी खाने मिलेगी। घनी दाल और ऊपर ताजा घी! आने के पहले तार भेज दीजिए, ज्योति आपको ले जाने स्टेशनपर आयेगी..."

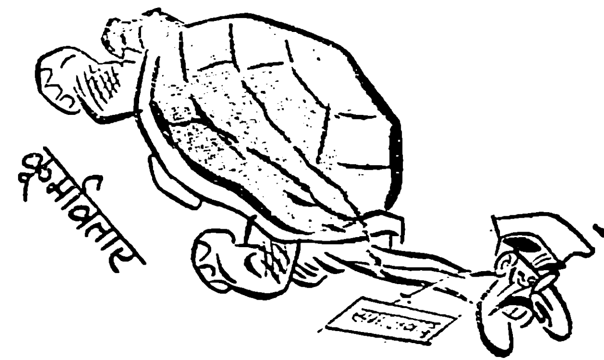
झूठे भाईजी! कहते हैं कि भोजन की असुविधा थी। नानों मैंने उन के रसोइये का पकाया खाना कभी खायाही नहीं था। और भोजन की असुविधा के कारण क्या कोई बुढापे में शादी करता है? भाईजी का यह एक पाखण्ड होगा। मन में आया, चलो भाईजी के यहाँ जाएँगे ज्योति की बनायी पूरणपोळी और दाल-ढोकळी खाएँगे और सुड़सुड़ा कर कढ़ी पी लेंगे।

ज्योति प्लेटफार्मपर मिल गयी। हम टेक्सी में बैठकर घर गये। टेक्सी घर के सामने रुकते ही भाईजी नीचे आ गये। बड़े प्यारसे गले मिले। कितने बदल चुके थे भाईजी। फीकापन घट गया था। गाल तनिक ऊपर आ गये थे और जरा गुलाबी दिखायी देते थे। चेहरेपर एक प्रकार की प्रसन्नता झाँक रही थी। भाईजी को देखते ही मैं ज्योति की ओर मुड़ा और हँसा। उसकी गंभीर आँखों में कृतार्थता और समाधान दिखायी देते थे। एकाध सुंदर कविता लिखकर या सुंदर चित्र खींचकर कलाकार

---

२ मीठी रोटी। ३ एक गुजराती खाद्यप्रकार

आज के दशावतार : २ कूर्मावतार



कहता कौन कि कच्छपगति है; जनविकास तुच्छ?
आज समाज सुधार हेतु धरभार आ रहा कच्छ!!





को जो सृजन–साफल्य प्राप्त होता है, वही मैंने उसकी आँखों में देखा। मेरे हँसते ही ज्योति हँस पड़ी और बड़े वात्सल्य से भाईजी की ओर देखने लगी। प्यार की देवीने अपनी नाजुक उँगलियाँ ज्योति की आँखों परसे, चेहरे पर से फेर ली थीं। ज्योति की गंभीर विदग्ध दृष्टि प्रीतिसे स्निग्ध बनी थी। ज्योति बदली थी – बहुत कुछ बदल चुकी थी।

ज्योति ने ताली बजायी। शीघ्र दो सेवक कुर्सी लेकर आये। भाईजी कुर्सीपर बैठे। सेवक कुर्सी ऊपर ले गये। हम उनके पीछे ऊपर गये। जाते–जाते ज्योति धीरेसे बोली—"यह ऊपरी फ्लैट लिया तब मैंने कुर्सी की यह व्यवस्था कर रखी। भाईजी आरंभ में तनिक कुड़बुड़ाते। अब चुपचाप बैठते हैं कुर्सीपर। वैसे तो वे अच्छे हैं।"

हम ऊपर चले गये। ज्योति ने भाईजी को झूलेपर बिठाया। पीछे तकिया रखा। कुडबुडाते लेकिन शांतिसे भाईजी झूलेपर बैठे रहे। ज्योति ने मुझे सारा घर दिखाया। घर सजानेमें उसने काफी चतुराई की प्रकट भी थी। बैठने के कमरे में भाईजी के सिस्टिन मॅडोना, व्हीनस, टर्नर का सीस्केप्स, वॉटस् के दो चुने चित्र अवनीन्द्रनाथ का शाहजहाँ का चित्र, कनुदेसाई का रेखांकित मुँह मोड़कर चलनेवाले गांधीजी ये चित्र दीवा पर टँगे थे। मध्य भाग में खुदे हुए कश्मिरी गोल टेबलपर फूलदान में लहलहाते फूल और पत्ते ठीक से रखे थे। एक कोने में नटराज की मूर्ति थी। संशोधन कार्य करने का कमरा बिलकुल सादा था। दीवार को लगी हुई भाईजी की बैठक थी। बैठक पर पीछे तकिया और सामने छोटा टेबुल था। एक ओर निकट ही संदर्भ-ग्रंथ विषयानु[illegible] रचे हुए थे। दूसरे कोने में ज्योति का संशोधन-संसार सजा हुआ था। कमरे में मूल्यवान मैसूरी अगरबत्ती की भीनी-भीनी खुशबू आ रही [illegible]। भाईजी के घर में गृहिणी का अस्तित्व और अधिकार हर जगह में स्पष्ट हो रहे थे। ज्योति ने धीरे से मुलायम शब्दों में पूछा–"दाऊजी! कैसे दिख रहे हैं आपके भईजी?" मैंने भी धीर से जवाब दिया–"अच्छे! बहुत अच्छे! और दीदी आप भी!"

हम आराम से कॉफी के घूँट ले रहे थे। भाईजी की कु[illegible] प्यारी कविताएँ मैंने सुनायी। भाईजी मग्न हो गये। उन्होंने गरदन के निकट की घुंडी खोल दी, गला साफ किया और कविताओं की बही हाथ में ले ली। भाईजी कविता गायन करनेवालेही थे इतने में ज्योति ने बही अपने अपने में ले ली। वह हँसते-हँसते बोली–"नहीं...नहीं।... जी! आप न गाइए! कविता गाते समय आप जोश में आ जाते हैं। वह तो अच्छा नहीं है। आप बैठिए राजा जैसे! मैं ही कविता गाती हूँ। कहिए कौनसी गाऊँ?"

भाईजी ने हार मान ली। ज्योति ने मधुर आवाज में कविताएँ गाकर सुनायी। गाते समय वह इतनी लीन हुई थी, इतनी मग्न हुई थी कि मानो वे उसकी ही लिखी कविताएँ थी। मानो वह उसी का अपत्य था — उसका[और भाईजी का —

भोजन का समय हुआ। हम रसोई घर में गये। चौके के समीप के पीढ़े पर हम बैठे। ज्योति चौके पर ही अँगीठी के निकट आसनस्थ होकर फुलके बेलने लगी। गरमागरम फुलके हमारी थालियोंमें पड़ने लगे! एक फुलके का एक कौर बनातेही दूसरा फुलका तैयार हो जाता। कढी भी अच्छी बनी थी। मेरे सम्मान के लिए ज्योतिने दाल विशेष तरह की बनायी थी। वह बोली—

"दाऊजी, भाईजी हमेशा आपके घरमें बननेवाले दाल की सराहना करते हैं। हमारे पड़ोस के फ़्लैटमें कुछ दक्षिणी परिवार रहता है। इस तरह दाल बनाने का तरीका मैंने उन्हीं से सीखा है। कहिए कैसी बनी है? कल दोपहर को आपके लिए ढोकळा बना दूँगी।"

भोजन समाप्त होते ही फिर महफ़िल हुई। कविता-गायन हुआ। बीच बीचमें चर्चा भी हुई। साढ़े दस बजे ज्योति उठी और सेनापति के रोबसे बोली —

"बस, समय हुआ। खेल खतम। उठिए अभी! अब इससे अधिक समय जाग्रत नहीं रहना चाहिए।"

भाईजी कुड़बुड़ाकर बोले --

"अरी, मुझे तो दाऊ के साथ बहुत सारी बातें करनी हैं। तुम जाकर लेटो। मैं आऊँगा थोड़े समय के बाद। अधिक समय तक मैं न जगा रहूँगा।"

लेकिन ज्योति कहाँ तैयार थी यह सब सुनने को? बड़े लाड़ प्यारसे उसने भाईजी के गले में हाथ डाला और दूसरे हाथ से उन्हें उठाया। मेरी ओर मुड़कर वह बोली— "दाऊजी! आप भी अब आराम कीजिए। हमारे निकटवर्ति कमरे में ही आपका बिछौना तैयार रखा है। कल का सारा दिन तो है ही गपशप के लिए।"

खेल में मग्न हुए हटी बच्चे के समान भुनभुनाते भाईजी गये। मैं भी कमरे में जाकर बिछौने पर लेट गया। अच्छा भोजन हुआ था। उससे भी अधिक अच्छे अनुभव सुबह से हो चुके थे। मैं तुष्ट हुआ, मन भी भरा गया। कुछ स्वस्थ हुआ और कुछ अस्वस्थ भी। मन विचार करने को तैयार न था। वह तो आलसी बन गया था। आँखें मूंदकर दिन भर के अनुभव सुस्ती से जुगाल रहा था। मेरा संज्ञा-प्रवाह सुखावह भावनाओं के और संवेदनाओं के विशाल पिच्छल पथ पर धीरे-धीरे फिसल रहा था। बीचबीच में उसका लोप हो जाता, तंद्रा आ जाती, अबोध मनकी भूत कालीन — शायद मेरे बापदादाओं के जीवनों की — बहुत गहरी, नीचे छिपी भावनाएँ और वासनाएँ पद की आहट न करते, छुपकर ऊपर आ जातीं और मेरे संज्ञा-प्रवाहपर काबू जमा लेतीं। मन इस प्रकार फिसलता, फिर जाग्रत हो जाता, फिर तंद्रा आ जाती—कौन जाने कितने समय तक यह सब चल रहा था?

इच्छा न होते हुए भी प्रयत्न न करते भी, पड़ोस के कमरे से प्यारे प्यारे लाड़ले स्वर कानपर आ टपके—"हुवोऽ--हुवो ऽऽ! केम नथी हुता?" (सो जाइए...आप सोते क्यों नहीं?) ज्योति के इस 'हुवो' शब्द में अंतिम प्लुत स्वर बड़ा लचीला और मुलामय



साँझ

— नरेन्द्र शर्मा

दूर दूर कनक धूलि खुरों से उड़ती हुई
आती है साँझ कजरी गाय-सी रँभाती हुई।
बछड़े-सा बिछुड़ा था दिन भर जो ग्राम प्रान्त,
श्याम धेनु सन्ध्या के आते ही हुआ शांत,

हरती है श्रान्ति साँझ, हृदय से लगाती हुई!
सूरज का बेटा दिन, धरती की सुता रात
दुलराती धरती के पुत्रों के थके गात
निद्रा की देवी बिना कौन जिये भूमिजात?

आती है साँझ, दीप विस्मृति के जलाती हुई!
विस्मृति में अनुकम्पा, जड़ता में समता है,
मोह विना कहाँ यहाँ ज्योति ज्ञान रमता है?
आती है, जाती है साँझ यह सिखाती हुई?

गूँजेगी दूर कहीं कुंजों में मरण वेणु,
छायेगी गोपथ पर करुणा की कनक रेणु;
आयेगी जीवन की सन्ध्या जब बनी धेनु
रहस रहस-रंभा रंभा मुक्ति गीत गाती हुई।







श्रीदत्तात्रय रामतीर्थ नगरीं गर्भांत आले पहा। माता देवि बया, मनोहर पिता, लाडाख्य सिद्धाचिया ग्रामीं बाळचरित्र दावुनि जना कल्याण क्षेत्रासि ये। तो हा दत्त प्रभु निजात्म भुवनीं माणीक क्षेत्रीं अं

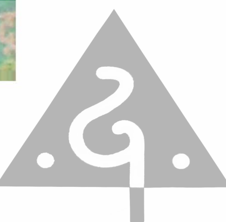
अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका





था। वह धीरे-धीरे आसानीसे ऊपर जा रहा था। मानो वह अपने नाद स्पर्शसे उस बूढ़े बालक को थपथपा रही थी, सहला रही थी।

थोड़ी देर के बाद वेही स्वर उसी लयमें लेकिन जरा धीमी आवाज में आ उठे–"हुवोऽ हुवो ऽऽ हुवो ना !"

कल्पना ने मेरी आँखोंके सामने चित्र खड़ा किया। ज्योति नजाकत से — लाड़ से भाईजी के माथेपर हाथ फेर रही है और बूढे भाईजी आँखें खोलते–मूँदते निद्रा के स्वाधीन हो रहे हैं।

मुझे कैसे नींद आएगी ? मुझे कौन थपथपाता था ? मुझे निद्रा देवी के दालान में कौन ले जा रहा था ? फिर तंद्री आयी। पुनः अबोध मन जाग उठा, ऊपर आया। पुरानी वेदनाएँ, पुरानी संवेदनाएँ जाग्रत उठी। उस किनारे से एक के पीछे दूसरी इस अनुक्रमसे इस किनारे पर आयी, संज्ञाप्रवाह में घुल–मिल गयी। फिर वे चिरपरिचित किन्तु चिरवियुक्त हाथ मत्थेपर थपथपाने लगे। फिर वही पुराना स्पर्श, पुराना स्वर, पुरानी समीपता। न जाने मुझे कब नींद आयी; लेकिन जाग्रतावस्था के मीठे स्वर सुषुप्तावस्था में भी घुस आये और बोलने लगे— "हुवोऽऽ– हुवोऽऽ ! केम नथी हुता !"

इसके बाद गत दस वर्षों में मैं कई बार भाईजी से मिला; ज्योति के आवभगत का लाभ उठाया। उस दंपति का जीवन सुख समाधानसे परिपूर्ण था। भाईजी की सेहत काफी सुधरी थी। वे तो हर वक्त मुझे अधिक जवान, ताजे दिखायी देते। उलटा ज्योति युवावस्था की देहली लाँघकर प्रौढावस्था में प्रविष्ट हुई। मानो ये दोनों प्रेमी, उम्र के दोनों सिरे से निकलकर उत्तरोत्तर एक दूसरे के अधिक समीप आ रहे थे। भाईजी के सूखे पेड़ से नयी कोंपल फूट रही थी। भाईजी के हेमन्त कालमें ऋतुराज बसन्त पदक्षेप कर रहा था— अधिक्षेप करता था। भाईजी का इंडियन समर खिल उठ रहा था।

भाईजी प्रफुल्लित हुए थे। फुर्ती से चलते थे। आम के पकौड़े खाते, उंधियु हड़प लेते। भाईजी कहानियाँ लिखने लगे, 'डोलन' शैली में नव कविता लिखने लगे, विनोदपूर्ण शब्द चित्र खींचते, ललित निबंध लिखते। भाईजी प्रवास करने लगे। आदिवासी, भील आदि दलित निम्न जातियों के सुखदुख में समरस हो गये। भाईजी के साहित्य में जैसे इन अभागों की वेदनाएँ सुनी जातीं वैसेही नवयुवकों का सरल नूतन प्रेम भी झाँकता है।

और ज्योति ? प्रेमसंशोधन के चक्रव्यूह में फँसी ज्योतिका अपनी संशोधन कभीका समाप्त हुआ। भाईजी की ज्ञान—साधना और इंडियन समर इन में वह समा गयी। भाईजी की युवावस्था जाग्रत करते समय अपना यौवन खो बैठी। और यह सौदा उसने अपनी राजी-खुशी से, समझदारी से मोल लिया था। प्यार के दंश से ज्योति प्रौढ़ा बनी — स्थिर गंभीर पुरंध्री बनी। पाल में रखे कलमी आम की तरह उसका व्यक्तित्व पका था और नितांत मधुर बन गया था।

स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं। वत्सला, प्रेमला और बाला। ज्योति वत्सला थी—Mother Wife थी। 'डेव्हिड कॉपर फिल्ड' वाली डोरा जैसी कोई Child wife बाला होती है। बंकिमचंद्र और शरच्चंद्र की नायिका जैसी कोई प्रेमला–प्रणयिनी होती है। ज्योति



आप याद रखें और ग़मगीन हों
इस से लाख दर्जे बेहतर यह है कि
आप भूल जाएँ और मुसकराएँ।

डेव्हिड कॉपर फिल्ड के ॲग्नेस जैसी वत्सला थी। ज्योति जैसी कोई वत्सला अपने हड़बड़िया सनकी पति को सँभाल लेती है। ज्योति ने भाईजी को इसी प्रकार सँभाल लिया। उन्हें दस वर्ष जिवित रखा, बढाया और स्वयं पीछे रह गयी — बैठकखाने में, रसोई घर में और शय्या घरमें।

वह तो इंडियन समर था। कितने दिन टिक सकेगा। भाईजी अपना बुढापा बीमारी भूल बैठे; लेकिन यमदेव बही लेकर बैठा था; हिसाब कर रहा था, वह कैसे भूलेगा ? उसने दुबारा हमला किया। इस आधुनिक सावित्री ने उसे दुबारा लौटा दिया। भाईजी को झटका आया तब ज्योति घण्टोंतक उन्हें अपने सीने से हौलेसे लगाकर बैठी। यमदेव वापस लौटे।

भाईजी सत्तरी लाँघ गये। उन का ग्रंथराज पूरा हुआ। पैंतीस वर्ष की तपस्या की फलप्राप्ति हुई। हमने समरोह मनाया। ज्योति ने भी उसमें भाग लिया। भाईजी के ग्रंथराज की पांडुलिपि अपनी गोद में लेकर वह भाईजी की बगल में बैठी—बिलकुल शांत, गंभीर और संयत। भूत कालीन फूर्ति अब नहीं रह गयी थी। अब विशुद्ध सेवाभाव, विशुद्ध शरणागति प्रकट हो रही थी। अब अनिर्वचनीय अनाकलनीय करुणा चेहरेपर से चू रही थी।

सत्तरी के पश्चात् भाईजी अधिक दिन जीवित नहीं रहे। फिर तीसरी बार देव आये। ज्योति हार गयी। कृतार्थ भाईजीने ज्योति के बाँहोंमें अतीव समाधान से प्राण त्याग किये। अब जीवित रहने की क्या फिक्र थी ? दुनिया में किसी को भी न मिला इतना प्यार भाईजी को मिला था और गुजराती भाषा जब तक जिन्दा रहेगी तब उनका ग्रंथराज जिन्दा रहनेवाला है। वही उनकी संतान थी — उनके और ज्योतिकी।

मृत्यू के पहले कोई एक उनके सिरहाने बैठ कर कविता की एक पंक्ति गुनगुनाया

"हूं छिन्न छूं ! हूं खिन्न छूं !"
(मैं छिन्न हूँ ! मैं खिन्न हूँ !)

भाईजी ने गरदन उठायी। ज्योति की ओर देखा। उस के पीठ पर हाथ फेरा और बोले– "ना–ना ! एम नहीं" (नहीं–नहीं ऐसे नहीं,)

हूं पूर्ण छूं। परिपूर्ण छूं।
संतुष्ट छूं। संतुष्ट छूं"



रूपाः कु. सुरेखा तोर्णे

कुछ लोगत कहते हैं कि हॅम्लेट ने बहुत विचार किया यही उसकी गलती है। मुझे यह ठीक नहीं जँचता। कालाबजार करना, युद्व करवाना, चुनाव जीतना इनके लिए भी बहुत सोचना पड़ता है।



हॅम्लेट की गलती

हॅम्लेट की गलतियाँ निकालने में आलोचकों को किसी तरह का सूक्ष्म आनंद जरूर होता होगा। दूसरों की गलतियों पर भी बहस स्वभावतः ही बहुत रोचक होती है। मनुष्य स्वभाव की इस विशिष्टता पर ध्यान देने से गलतियाँ करनेवाले ये व्यक्ति संसार का कितना उपकार करते हैं इसकी कल्पना होती है। महात्मा गांधीजी पर कभी-कभी कठोर आत्म-आलोचना करने की सनक सवार होती थी; इस समय वे स्वयं ही इस बात की प्रकट स्वीकृति देते थे कि उन्होंने हिमालय जैसी गलती की है। ऐसे समय कुछ लोगों को हर्ष का उबाल फूटता था। हिमालय जैसी गलती करनेवाला महात्मा गांधी जैसा मनुष्य इन व्यक्तियों को सह्याद्रितुल्य ही क्यों न हो, आनंद देता था। नेपोलियन ने अपनी सेना का अन्तिम संचालन करते समय पंद्रह मिनट की जो गलती की थी वह भी इसी तरह के महत्त्व की गणना में आती है। इस छोटी-सी गलती को लेकर सारा यूरोप सौ वर्ष तक इसका आनंद लूटता रहा। मास्को मुख में नेपोलियन ने जो कुछ भी किया वही भी किसी कम महत्व का नहीं है। स्टालिन की गलतियों का उत्खनन जो आजकल शुरू हुआ है वह भी इस दृष्टि से बड़ा मनोरंजक है। इन गलतियों पर चर्चा करते समय पैदा होनेवाली गुदगुदियाँ भी इतनी विलक्षण हैं कि हम स्टालिन को और दस हत्याओं के लिए भी माफ कर सकेंगे। मनुष्य मरते हैं, लेकिन उनकी गलतियाँ सदा के लिए रहती हैं—और यह बात कोई कम महत्त्व की नहीं है।

दूसरों की गलतियाँ खोजते समय होनेवाला सर्वसामान्य आनंद मानवीय एकता का और एक सबूत है। ऊपरी तौर पर चाहें हॅम्लेट और मैं अलग दिखायी देते हों फिर भी दोनों को जोड़नेवाली कड़ी इस स्वभाव-वैशिष्ट्य में दिखायी देगी। यह सत्य है कि मुझे हॅम्लेट की गलतियाँ निकाल ते समय आनंद होता है; किन्तु हॅम्लेट को भी अपनी माँ और चाचा द्वारा की गयी गलती उनके मत्थे मारते समय कुछ कम हर्ष नहीं हुआ होगा। इससे भी आगे जाकर मैं तो यह कहूँगा कि हॅम्लेट के जीवन में अन्त में इस आनंद के सिवा दूसरा कोई भी आनंद शेष नहीं था। अधिकतर आलोचकों के जीवन का अन्त भी इस संबंध में हॅम्लेट जैसा ही होता है। हॅम्लेट की एकाध नई गलती निकाले बिना हमें चैन नहीं आती। आलोचकों को हॅम्लेट इतना प्रिय होने का कारण है हॅम्लेट ने बहुत नई और अकल्पित गलतियाँ कीं। इसके सिवा हॅम्लेट का व्यक्तित्व इतना विनोदपूर्ण है कि प्रत्येक युग में उसके जीवन में एकाध नई गलती मिलती रहती है। मैं तो यही कहूँगा कि हॅम्लेट के जीवन में एकाध नई गलती मिली कि यह समझना चाहिये कि मनुष्य की संस्कृति में एक नये युग का आरम्भ हुआ।

हॅम्लेट ने कोई भी गलती नहीं की और इसलिए उस बेचारे के जीवन का अन्त शोकजनक हुआ ऐसा कहनेवाला एक भी आलोचक मुझे अभी तक नहीं मिला। उस समय उसका अन्त शोकात्मक न होकर भयानक होगा; और मनुष्य शोकात्मक अन्त सह सकता है, किन्तु ऐसा भयानक सत्य देखकर उसकी आँखें चकाचौंध हो जायेंगी! यह बात वह नहीं चाहता; इसलिए हॅम्लेट की गलती को ग्राह्य समझना सुविधाजनक होता है। मेरा यह विधान गलत सिद्ध करने के लिए आप किसी ऐरेगैरे सामान्य आलोचक का हवाला देंगे। हॅम्लेट को ठीक बतलानेवाले उसके वचन भी आप उद्धृत करेंगे। किन्तु आपकी यह सारी दौड़धूप आखिर मेरे विधान की ही पुष्टि करनेवाली सिद्ध होगी। यदि आप गहराई में जाकर देखें तो आपको पता चलेगा कि आपका जोर हॅम्लेट को सही बतलाने के लिये नहीं, बल्कि मुझे गलत बतलाने के लिए है। हॅम्लेट को सही बतलानेवाले मनुष्य को खुद मानव की भावी पीढ़ी के सुख को छीनकर ले रहे हैं इसका थोड़ा-सा विचार करना चाहिये। इसलिए हॅम्लेट के खिलाफ किये गये षड्यंत्र में अन्य सभी आलोचकों के साथ-साथ मैं भी सम्मिलित हूँ।

कुछ लोग कहते हैं कि उसने बहुत विचार किया यही उसकी गलती थी। मुझे यह ठीक नहीं जँचता। हॅम्लेट की वास्तविक गलती वह बहुत विचार करता है यह नहीं। व्यवहार में सफल होनेवाले व्यक्ति भी बहुत सोचते हैं। काला बाजार करना, युद्ध करवाना, चुनाव जीतना, वसीला लगाकर काम में सफलता पाना, इतना ही नहीं बल्कि

गो. वि. करंदीकर




गो. त्रि. करंदीकर :

आप मराठी भाषा के श्रेष्ठ कवि एवं ललित निबंध लेखक हैं। आपका कवि-हृदय ललित निबंधों में प्रकट होता है।

साहित्य जैसे क्षेत्र में प्रतिष्ठा पाना – इन सभी बातों के लिए बहुत ही सोचना पड़ता है। किन्तु यह विचार 'क्या करना' इसका निश्चय करने के लिए नहीं होता;

'किस तरह करना' यह निश्चय करने के लिए होता है। उन्हें क्या चाहिये इससे वे भली भांति परिचित होते हैं; वे केवल साधनों के बारेमें सोचते हैं; साध्य के बारेमें नहीं। क्या करना इष्ट है उसे ग्राह्य समझकर बाद में सोचने के बजाय हॅम्लेट सोचकर क्या करना इष्ट है इसे तय करने का प्रयत्न करता है। मानो, उसे लगता है कि 'स्वयं क्या करे' यह सोचकर तय किया जा सकता है। वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य की जीवन-शक्ति उसे किसकी आवश्यकता होती है यह स्वतंत्र रूप से निश्चित करती है। खुद को 'क्या चाहिये' यह निश्चित करने-वाली शक्ति विचारों से बहुत गहरी छिपी हुई होती है। इस शक्ति के जड़मूल अपने अंतर्मन के पुराने चबूतरे के नीचे बहुत अन्दर तक घुस गये होते हैं। विचार एक बुद्धू नौकर के समान, चाहें सो बात किस तरह प्राप्त की जाय यह बतला सकता है। लेकिन अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को क्या चाहिये इसका निर्णय वह स्वतंत्र रूप से नहीं ले सकता। मैं क्या चाहता हूँ यह समझकर हॅम्लेट की पहली गलती हुई। उसने बिलकुल उलटी तरह से शुरुआत की? पहले सोचकर फिर क्या करना इष्ट होगा यह निश्चित करने का प्रयत्न किया!

मुझे लगता है कि हॅम्लेट के मन में जो सबसे बड़ा असमंजस पैदा हुआ वह 'जीना या मरना' इस प्रश्न पर नहीं। इस असमंजस के मूल में जो प्रश्न था वह खुद को कभी नहीं पूछ सका। क्या करना इष्ट है यह प्रश्न खुद को पूछते समय खुद को जो चाहिये उसी की खोज में ही

स्वयं है इस तरह के असली रूप को दिखानेवाले सत्य को उसने खुद से छिपाया। यह उसकी दूसरी गलती। उसकी यह भ्रामक कल्पना थी कि वह न्यायनिष्ठ और तटस्थता से हर प्रश्न का निर्णय लेता है, अन्यों के अन्तरंग की छान–बीन करता है। इसमें सन्देह नहीं कि उसकी यह कल्पना पूरी तरह से प्रामाणिक थी। किन्तु अनेक प्रामाणिक कल्पनाओं के अनुसार इस कल्पना को भी वास्तविकता का आधार नहीं था। अपने अन्तरंग की खोज करने के पहले वह दूसरों के अंतरंग की खोज करने का प्रयत्न करता रहा। इसीलिए अपनी प्रेमिका ऑफेलिया में अपनी व्यभिचारिणी माता का प्रतिबिंब उसे अवश्य दृष्टिगत हुआ किन्तु अपनी माँ में अपनी युवा प्रेयसी का प्रतिबिंब वह नहीं देख सका। यदि वह अपने अंतःकरण को गहरे

में जाकर देखता तो अपने चाचा की ही एक धुँधली छाया अपने मन के जटिल भाग में उलटे पैरों घूमती हुई उसे दिखाई देती। अनजान में स्वयं एक सुप्त शक्ति के अधीन होकर अपने चाचा के साथ स्पर्धा करनेवाला एक युवक उसे दीख पडता—और वह चौंक उठता। इस धक्के से शायद उसकी न्यायनिष्ठा और तटस्थता की धुन एकदम उतर जाती। फिर, 'क्या करना चाहिये' इसे खोजते समय खुद को क्या चाहिये वही वह खोज रहा है यह सत्य उसे दिखायी देता। किन्तु ये बातें भिन्न है; इसे समझ कर वह अपनी और दूसरों की कृतियां का मूल्यमापन कर रहा था। यह नकली द्वैत निर्माण कर वह खुद को धोखा दे रहा था। फिर भी मुझे नहीं लगता कि हॅम्लेट की यह दूसरी गलती ज्यादातर अपवादात्मक है। यह गलती हम सभी करते हैं। इसी कारण अपना जीवन सुसह्य होता है। यह दूसरी गलती हम हजम कर सके हैं; क्योंकि हॅम्लेट की पहली गलती हम कभी नहीं करते। इस दूसरी गलती के लिए ही क्यों न हो हॅम्लेट सुसंस्कृत व्यक्तियों का प्रतिनिधि समझा जाना चाहिये।

ग्रहण के समय सूरज की ओर देखते समय हमें काजल लगाये हुए कांच का उपयोग करना पड़ता है। सामान्य आँखों से सूरज का दाह सहा नहीं जाता। हमें क्या चाहिये यह बात हम खुले तौर से देख नहीं सकते। मनुष्य के लिए यह बात बड़ी कठिन होती है। इसलिए धोखा देनेवाली नैतिकता के काजल लगाये हुए कांच को हम आंखों के सामने धरते हैं। मुझे लगता है कि हमारा मस्तिष्क अभीतक एकदम बाल्यावस्था में है और उसे बच्चों की कहानियाँ सुनने में ही मिठास मिला करती है। उसके प्रवाहमान रक्त के निकट अनंत काल से एकत्रित चातुरी आवश्य है। संपूर्ण भूतकाल का अनुभव उसमें समाया हुआ है। इसलिए रक्त में मस्तिष्क के ही समान झन्नाहट नहीं आ जाती और वह समझ लेने का रौत्र नहीं गांठता। आधारों की अतिशबाजी नहीं खेलता। वह अपना काम मौन रूप से साध्य करता है। सुविधाजनक शब्दों की आड़ में, यदि आप रक्त को स्वेच्छया ही कुछ शोधने को बाध्य करते रहें तो भी वह चिढ़ता नहीं। यह आंख-मिचौनी उसे कौतुकास्पद लगती है—हॅम्लेट यही आंख–मिचौनी बड़ी निष्ठा के साथ खेला। वह इतनी अडचन की जगह छिपा की उस स्थान से बाहर निकलना उसके लिए फिर कठिन हो गया।

मुझे लगता है कि अपने साथ यह आंख–मिचौनी का खेल खेलते समय हॅम्लेट को भाषा का बहुत ही उपयोग हुआ होगा। इस दृष्टिसे भी हॅम्लेट हम सभी सुसंस्कृत का पहला प्रतिनिधि था। सुसंस्कृत व्यक्तियों को भाषा ढाल के समान उपयोग में आती। दो अलग-असग शब्दों का उपयोग करने से उन दों अलग-अलग शब्दों के आधार पर धीरे-धीरे वह दो अलग-अलग बातों का अस्तित्व ग्राह्य समझने लगता है और इसीलिए ऐसा लगता है कि अपनी संस्कृति की नींव शब्द के समान ही कुरकुरी है। पत्नी एवं माता इन दो अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल करने से स्त्री के प्रति आकर्षण का एकाध शाश्वत गुणधर्म इन दो स्थानों पर हो सकता है या नहीं इस बात का विचार करना भी पाप मालूम होता है। दस्यु, शूद्र व गृहिणी ये शब्द गुलाम शब्द से, दीखने में इतने भिन्न है कि भारत में गुलामी होने की शक्यता नष्ट होती है। लूट और पूंजी ये शब्द भी एक–दूसरे से अपरिचित होने का इस तरह का बहाना करते हैं कि काले बाजार में होनेवाला उनका मिलन किसी के भी ध्यान नहीं आता! शब्दभ्रम यह संस्कृति को बुढ भस लगने का चिह्न है। कोई संस्कृति मरने लगी कि वह ज्यादा से ज्यादा शब्दनिष्ठ बनने लगती है–हॅम्लेट के पास मरनेवाले युग के शब्द थे और जन्म लेनेवाले युग का – ज्ञान था। वह एक महान् सांस्कृतिक स्थित्यंतरों के चौखट पर खडा था — किन्तु इसी तरह चौखट पर खड़ा रहना सदा ही खतरनाक होता है। ★

रूपा : **सुधाकर सामन्त**

तपन बाबू को लगा जैसे इस दूसरे मुवक्किल की बातें सुने बिना पहले मुवक्किल के मामले का चित्र पूरा नहीं हो पाता। वे मुस्करा कर अपनी गाड़ी में बैठते-बैठते बोले वादी और प्रतिवादी हमारे ही—



दो मुवक्किल

मोहनसिंह सेंगर

अभी तपन बाबू सोकर उठे भी नहीं थे कि नौकर ने धीरे से दरवाजा खोलकर कमरे में प्रवेश किया। करवट बदलकर उन्हों ने एक प्रश्न–भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसने बूझकर विनीत भावसे कहा–" बाबू, एक सज्जन आपसे मिलने आए हैं। "

" पर तुम्हें तो मालूम है कि हम आठ बजे से पहले किसी से भी नहीं मिलते। " लेटे–ही–लेटे तपन बाबू बोले– " जाकर कह दो कि अभी मुलाकात नहीं हो सकती। हम ९ बजे जब चेंबर में जायँगे, तभी मिल लें। "

" आज्ञा, यह तो ठीक है। " –नौकर ने जरा सकपकाते हुए कहा–" मैं ने उनसे यही कहा था। पर वे कहते हैं कि बड़ा जरूरी काम है। अपने–आपको उन्हों ने आपका बाल्य–बंधु बताया है।

" बाल्य–बंधु ! क्या नाम है उनका ! "

" आज्ञा, रामे अर्थात् रामेन्द्र सुंदर मित्र। कोई डाक्टर हैं।

" डाक्टर ! रामेन बाबू ! रामेन्द्र सुंदर मित्र ! " कुछ सोचते हुए-से तपन बाबू उठे। फिर नौकर से बोले—" अच्छा तुम जाकर उन्हें बैठक में बिठाओ। हम हाथ–मुँह धोकर नीचे आते हैं। "

नौकर नें आकर रामेन बाबू को बैठक खोलकर उसमें बैठने को कहा और फिर घरके काम में लग गया।

रामेन बाबू बड़े उत्तेजित एवं उद्विग्न थे सो बैठने को उनका मन नहीं हुआ। बैठक में वे इधर–उधर टहलने लगे। चारों तरफ़ की दीवारोंके सहारे सटी छत तक की ऊँचाईवाली आल्मारियों मे कानून की किताबें ठसी हुई थीं। तपन बाबू के बैठने की बड़ी घूम-नेवाली कुर्सी के ठीक ऊपर दो बड़े तैल-चित्र टँगे थे, जो संभवतः उनकी माँ और बाप के रहे होगें। बाईं तरफ़ बैरिस्टरी की पोशाक में खड़े युवा तपन बाबू का एक चित्र था और ठीक उसके सामने दांई ओर एक सौम्यमुखी महिला का। अभी रामेन बाबू इसी को गौर से देख रहे थे कि तपन बाबू ने बैठक में प्रवेश कर पहले हाथ जोड़कर पिता के चित्र के आगे नमस्कार किया, फिर माता को। और फिर पास आकर रामेन बाबू के कंधे पर हाथ रख कर बोले...इतने ध्यान से क्या देख रहे हो, रामेन ? "

" आज्ञा, नमस्कार। " — सहसा दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए रामेन बाबू ने तनिक मुस्कराकर कहा " देख रहा था कि ये सौम्यमुखी देवी कौन हैं ? "

" तो फिर तुम्हीं बताओ ये कौन हैं।

" शायद ये तुम्हारी स्त्री हैं।

तुमने बिलकुल ठीक पहचाना। शायद क्यों, यथार्थ में यह मेरी बड़ी स्त्री ही है। एक संतोष की साँस लेकर तपन बाबू ने

अनुक्रमणिका

कहा और फिर बड़ी मेज के लिए रखी कुर्सी की तरफ बढ़ते हुए बोले – " पर मैं इसे स्त्री कहने का साहस नहीं कर सकता, रामेन ? जानते हो, क्यों ? क्योंकि इसके सामने देवत्व भी तुच्छ और मिथ्या लगता है। जिस आत्म-त्याग से इसने सारे ? घर-गृहस्थी को सम्हाला, जिस स्नेह और सेवा-परायणता से मेरे सूने शुष्क जीवन को हरा-भरा कर दिया और अपने गहने बेचकर मुझे बैरिस्टरी पढ़ने विलायत जाने का सुयोग दिया; उसके बिना आज भला मैं क्या होता ? कहाँ होता ? "

यह कहते-कहते तपन बाबू का गला ही नहीं, आँखें भी भर आई थीं। कुर्सी पर बैठकर उन्हों ने धोती के पल्ले से आँखें पोछीं और सामने पड़ी कुर्सी की ओर इशारा करते हुए बोले – " बैठो। खड़े क्यों हो ? "

रामेन बाबू ने कुर्सी सम्हालते हुए कहा— " तो क्या अब ये... "

" नहीं रहीं, भाया। "—गद्गद् कंठ से तपन बाबू ने कहा— " जैसे भगवान से मेरा सुख देखा नहीं गया और उन्होंने उस देवी को अपनी सेवा करने के लिए बुला लिया। आज तो मेरे पास चार पैसे हैं, मकान है, मोटर है। पर जब मेरी वकालत चली नहीं थी और दोनों जून का भात भी नहीं जुटता था, तब भी उस देवी ने मुझे कभी किसी चीज का अभाव महसूस नहीं होने दिया। मुझे कभी पता तक नहीं चला कि उसने अपना हाथखर्च बचाकर अपने बचे-खुचे छोटे-मोटे गहने बेचकर या उधार लेकर न जाने कैसे घर का काम चलाया। पर मुझसे स्वयं चलकर न तो कभी पैसा माँगा, न उसके अभाव की शिकायत ही की। अपने लिए तो उसने कभी भूलकर भी कोई फ़र्माइश नहीं की। अगर कभी वार-त्योहार मैं उसके लिए कोई चीज खरीद कर लाता, तो साधारण होने पर भी वह उसकी बड़ी प्रशंसा करती, मुझे धन्यवाद देती और फिर बड़े प्यार तथा संयम के साथ कहती कि उसे कमी किस बात की है, जो मैं व्यर्थ नई-नई चीजों में पैसे नष्ट करती हूँ ! "

इसी समय रामेन बाबू की आँखों में उमड़ते आँसुओं को देखकर तपन बाबू अपनी बात कहते-कहते सहसा रुक गये। फिर धीमी आवाज में बोले— " मुझे माफ़ करना, रामेन। तुम्हारी बात पूछने के बजाय मैं तुम्हें अपनी ही बात सुनाने में लग गया। पर क्या करूँ भाया, वह देवी मेरे जीवन और स्वभाव की इतनी बड़ी दुर्बलता बनकर मेरी नस-नस में समा गयी है कि समय-असमय मैं अनायास उसका गुण-गान करने लगता हूँ। मुझे गलत न समझना, भाया। अच्छा तो बताओ, आज कैसे रास्ता भूल पड़े ? तुम्हें देश और विदेशों में डाक्टर के रूप में जो ख्याति, सम्मान और स्वीकृति मिली है, उसकी बात मैं बराबर जब-तब अखबारों में पढ़ता और

मित्रों से सुनता रहा हूँ। पर तुमने तो कभी मेरी खोज-खबर ही नहीं ली? वैसे मैं भी इस संबंध में कम दोषी नहीं हूँ, क्योंकि मैंने भी तो कभी तुमसे मिलने की चेष्टा नहीं की। पर विश्वास करो, मन-ही-मन मैं तुम्हें बराबर याद करता रहा हूँ, रामेन। कॉलेज-जीवन के वे रंगीन और सुनहले दिन भला क्या कभी भूले जा सकते हैं ?"

यह कह कर तपन बाबू हा-हा कर हँसे। पर रामेन बाबू नहीं हँस सके। उन्हों ने सिर नीचा कर लिया। फिर जेबसे रुमाल निकालकर आँखें पोछीं। यह देखकर तपन बाबू कुछ असंमजस में पड़े। रामेन बाबू की ओर झुककर वे आश्वस्त स्वर में बोले—"क्या बात है, रामेन ? इतने दिनों बाद तो तुम मिलने आए हो ओर कुछ बोल नहीं रहे ? क्या कोई तकलीफ है तुम्हें ? बोलो।"

इस बार रामेन बाबू ने भर-नजर तपन बाबू की ओर देखते हुए कहा—"बुरा न मानना, तपन। पर एक बात पूछूँ ?"

"हाँ, हाँ, शौक से पूछो। तुम मेरे बचपन के दोस्त ही नहीं, भाई के समान हो। भला तुमसे बुरा क्या मानूँगा ?"

"तो सच-सच बताओ तुमने अपनी स्त्री के बारे में जो बातें कहीं, क्या वे बिल्कुल ठीक हैं ? क्या सचमुच भारतीय नारी ऐसी होती या हो सकती है ?"

"ओह !"—कहकर तपन बाबू एक फीकी हँसी हँसे। फिर बोले—"मेरी जान में तो मैंने ठीक ही कहा। पर हो सकता है कि प्रेमातिरेक के कारण मैं कुछ अतिरंजना कर गया होऊँ। खैर छोड़ो भी उस बात को। पर हाँ, अगर मेरे कथन से परोक्ष रूपसे भी तुम्हारे मनको कोई धक्का पहुँचा हो, तो मुझे माफ करना, भाया।"

"अरे नहीं, नहीं। तुम्हारी स्त्री की प्रशंसा से भला मेरे मन को धक्का क्यों पहुँचेगा ? पर हाँ, मैं यह अवश्य सोच रहा था कि..."

"क्या सोच रहे थे ?"

"यही कि तुम सचमुच बड़े भाग्यशाली हो !"

"ओह ! हाँ, इस बात से तो मैं इन्कार नहीं कर सकता। पर हठात् मेरे सौभाग्य की बात सोचने का कारण ?"

"कारण है मेरा अपना दुर्भाग्य ! तुम्हारी बात सुनकर तो सचमुच मुझे तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या होने लगी है। एक तुम हो, जो अपनी स्त्री के सद्गुणों का स्मरण कर कृतज्ञतापूर्ण भावावेश में आ जाते हो; और एक मैं अभागा हूँ, जो अपनी स्त्री के अवगुणों का शिकार हो घृणा और कटुता से जल और उबल रहा हूँ !"

"यह तुम क्या कह रहे हो, रामेन ? आखिर ऐसी भी क्या बात हो गई ?"

"अब तो वह कोई साधारण बात नहीं, बड़ी गहरी घात हो गयी है, तपन। और उसी के अंतिम वार से बचने के लिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। पहले यह कहो कि असमय आकर तुम्हें कष्ट देने के लिए मुझे माफ तो कर दोगे न ?"

"छिः, छिः, ! तुम भी यह क्या व्यर्थ की औपचारिकता निभाने लगे ? अरे, साफ़-साफ़ कहो कि असली बात क्या है ?"

"वही तो बता रहा हूँ। असली बात यह है कि पिछली रात मेरी स्त्री ने मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है और मुझे धमकी दी



दिल्ली को वृन्दावन कौन करेगा ?

— नीरज

मेरे प्यार भरे गीतों को मत दो—देश निकाला भाई।
मैं ही चुप हो गया अगर तो युग का कीर्तन कौन करेगा ?

महफ़िल थी भद्‌रंग न जब तक
मैंने छेड़ा था इकतारा,
जब तक स्वर मेरा न जगा था
सोया था खुद कंठ तुम्हारा,

मैं बटोरता दर्द न तो
आवारा हो जाते सब आँसू
मैं यदि गाता नहीं, गीत को
लेना पड़ता जन्म दुबारा,

मैं दोपहरी का बादल हूँ, मैं प्यासों का गंगाजल हूँ
मैं ही यदि न ढला तो मरघट को फिर नन्दन कौन करेगा ?

तुम उनके हो औरों को बन
गई जरा जिनकी तरुणाई,
मेरे वे हैं, जिनके घर तक
आकर लौट गई पुरवाई,

तुम लिख रहे कीर्ति पाने को,
मैं गा रहा सुबह लाने को,
जब जब तुमने रात बुलाई
तब तब मैंने भोर जगाई,

तुम्हे प्यार चिकनी अलकों से, मुझे प्रीति रूखी पलकों से
मैने भी पथ बदल दिया तो रज को चन्दन कौन करेगा ?

मौसम का यह हाल कि
वासन्ती रितु में कलियाँ उदास हैं,
सुनी गुलाबों की बस्ती में
शासक बन बैठे पलाश है,

जिनकी उँगली थाम सीखता
है चलना हर स्वर्ग धरा पर
वाल्मीकि के यती श्लोक वे
सिंहासन के बने दास है,

सब तम के होगये सभासद, मैं ही एक बचा हूँ बागी
मैं भी यदि बिक गया नये रवि का अभिनन्दन कौन करेगा ?

दीपक तो आजाद हुये पर
कैद बना रह गया उजाला,
हर मोती का हृदय छिद गया
पूरी लेकिन हुई न माला,

जिनके पैरों के छालों ने
हर मुश्किल आशीष बना दी
जाने क्यों उनसे ही है
सबसे ज़्यादा नाराज़ शिवाला

सबने कर ली सन्धि अनय से मैं ही केवल बोल रहा हूँ
मैं भी यदि हो गया मौन तो रितु-परिवर्तन कौन करेगा ?

मैंने प्यार किया जिस दिन बढ़
गई उमर उस दिन बहार की,
आँख ढली जिस रोज विवादित-
पीर हो गई हर सितार की,

मैंने खुद को होम दिया तब
आया उभराई पर यौवन
मैंने दी आवाज तभी
साँकल खटकी स्वर्ग के द्वार की,

मैं हूँ तो यह चहल-पहल है, मैं हूँ तो यह भीड़भाड़ है
मैं ही यदि न रहा तो दिल्ली को वृन्दावन कौन करेगा ?

है कि या तो मैं उसे तलाक दे दूँ, वर्ना वह मुझे जिन्दा नहीं रहने देगी !"

"ये तुम कैसी बातें कर रहे हो, रामेन ?" ... आश्चर्य से आँखें फाड़कर तपन बाबू बोले... "यह भी भला कभी हो सकता है ?"

"हो सकता नहीं, हुआ है; जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूँ।"

"बड़ी अजीब बात है। पर आखिर यहाँ तक नौबत पहुँची कैसे ?"

"इसके लिए बहुत बड़ी हदतक दोषी तो मैं ही हूँ, तपन ! पर अब पछताने से लाभ ही क्या ! तुम्हें शायद याद होगा कि हम लोगों के साथ संध्या नामकी एक लड़की पढ़ती थी। उम्र में वह मुझसे काफी छोटी थी; पर उसके रूपने मुझे उसका बंदी बना दिया। वैसे तो उसके चाहनेवालों की तो कमी न थी, पर मेरी सम्पन्नता, प्रतिभा, खूबसूरती आदि ने उसे मेरी ओर ही विशेष आकृष्ट किया और हम लोगों ने बिना अपने माता-पिताओं की सम्मति – सहमति या जानकारी के प्रेम-विवाह कर दिया। विवाह के बाद ही उसने पढ़ना छोड़ दिया। जब मैं उच्च शिक्षा के लिए विलायत गया, तो वह भी साथ गयी, यद्यपि उसने वहाँ सीखा-पढ़ा कुछ भी नहीं। हाँ, क्लबों और पार्टियो में पुरुषों से पीछे न रहे, इसके लिए उसने सिगरेट, शराब पीना और परपुरुषों के साथ, निःशंक-निःसंकोच बातचीत करना, घूमना-फिरना और नाचना जरूर सीख लिया। फिर तो वह अकेली अपने पुरुष-मित्रों के साथ निर्बन्ध विचरने लगी। हिन्दुस्तान लौटकर भी उसने यह क्रम जारी रखा। उसके कॉलेज जीवन के पुरुष साथियों ने उसकी इस प्रगतिशीलता को खूब सराहा और इससे लाभ उठाने को मक्खियों की तरह सुबह-शाम उसके इर्द गिर्द मँडराना शुरू किया। अपनी प्रैक्टिस जमाने में मुझे काफी समय देना और परिश्रम करना पड़ता था। अतः मैंने यह समझ कर संतोष किया कि चलो, इसी तरह उसका मन तो लगा कर रहेगा और वह यह नहीं समझेगी कि मैं उसकी उपेक्षा कर रहा हूँ या उस जैसी रूपसी, युवा पत्नी को जितना समय मुझे देना चाहिए, अपने काम के कारण मैं नहीं दे पा रहा। ज्यों – ज्यों मेरी आय बढने लगी, त्यों-त्यों उसकी नई-नई डिजाईन की साड़ियों, घड़ियाँ, जेवर, फर्नीचर, शृंगार-प्रसाधन आदि की माँग भी बढती गयी। इसके बाद तो धीरे – धीरे पुरुष – मित्रों की संख्या के साथ उसका शराब, सिगरेट, सिनेमा, क्लब, होटल, रेस्त्राँ, टैक्सी आदि का ख़र्च भी बेतहाशा बढ चला। मैंने जब काम बढ़ जाने पर मोटर ख़रीदी, तो उसका उपयोग वह और उसके मित्र इतना अधिक करने लगे कि जरूरत पर गाड़ी न मिलने पर मैंने मजबूर होकर अपने लिए दूसरी गाड़ी खरीद ली और पहलेवाली अकेले उसी के किए छोड़ दी। बाद में मोटर चलाना सीखकर उसने ड्राइविंग-लाइसेंस भी अपने नाम करा लिया और अपने – आप को मोटर का मालिक भी घोषित कर दिया। अपना बड़ा मकान मैं शादी के कुछ समय बाद ही उसके नाम 'गिफ़्ट' कर चुका था। आमदनी बढ़ने पर उसके अनुरोध पर मैंने उसके नाम से बैंक में एक अलग हिसाब

भी खोल दिया और उसके हाथ खर्च के नाम पर एक खासी मोटी रकम हर महीने उसमें जमा कराने लगा। ''

'' यह तो तुमने बड़ी समझदारी का काम किया। '' — बीच ही में तपन बाबू बोल पड़े।

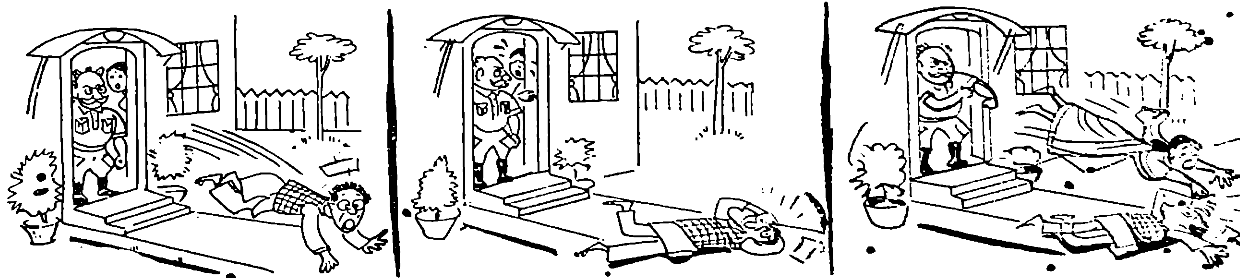
'' नहीं रे भाया, नहीं। क्या खाक समझदारी का काम किया? '' विरक्ति-भरे स्वर में आपनी बात जारी रखते हुए रामेन बाबू ने झुँझलाकर कहा — '' इससे तो उसकी स्वच्छन्दता और एकदम अबाध हो गयी। फिर मकान, मोटर, रुपये और पुरुष-मित्रों को पाकर उसे भला मेरी क्या जरूरत रह गयी? दरअसल हुआ भी यही। मेरे देर से लौटने के बहाने उसने अपने मित्रों के साथ सैर-सपाटे, होटल-रेस्त्राँ और नाटक-सिनेमा का कार्यक्रम ही नहीं बनाया; बल्कि घर पर भी दावतों, शराब, सिगरेट, ब्रिज आदि का अखंड यज्ञ शुरू किया और मेरे लौट आने पर भी मुझसे कभी कुछ पूछा-कहा नहीं गया। पहले तो मैं लौटा हूँ या नहीं, खाना खाया है या नहीं, मेम साहब नौकर से यह पुछवा लिया करती थीं; पर बाद में तो मुझे ही नौकर को बुला कर खाना माँगना पड़ता। कभी-कभी तो घर के सब नौकर मेम साहब की महफिल में ही इतने व्यस्त रहते कि मुझे बिना खाए-पिए ही सो जाना पड़ता। पहले तो यदा-कदा मेम साहब सुबह चाय पीने मेरे पास जरूर आ बैठती थीं और कभी-कदास घर की किसी बात को लेकर चर्चा भी करती थीं; पर इधर कुछ दिनों से तो देखा कि मेरे चेंबर के लिए खाना होने तक उनकी नींद ही नहीं टूटती, क्योंकि महफिल अब ११-१२ के बजाय २-३ बजे तक चलने लगी थी और दिनों क्या हफ्तों हमारी एक-दूसरे से भेंट ही नहीं होती थी। हम दोनों में जैसे किसी प्रकार का संबंध-संपर्क रह ही नहीं गया था। मेरा अस्तित्व घर में जैसे नहीं के बराबर था। हाँ, जब रुपये की आवश्यकता होती, तो किसी बच्चे, नौकर या टेलीफोन के द्वारा मुझे जरूर याद किया जाता। और तपन, तुम मेरी बेवकूफी पर हँस भी सकते हो कि इतना सब कुछ होने पर भी मैं बराबर संध्या द्वारा माँगे गए रुपयों के चेक पर चेक काटता गया। ''

'' हूँ! ''—कहकर तपन बाबू कुछ गंभीर हो गये।

'' और भाया, नाटक का असली पटाक्षेप तो कल हुआ। ''— अपनी काँपती हुई आवाज को साधने की चेष्टा करते हुए रामेन बाबू ने कहा—'' कल चेंबर आने से पहले ज्यों ही मैं ने चेक-बुक लेने को अपने मेज का दरवाज़ा खोला तो देखा कि वह गायब है! बच्चों और नौकरों से पूछा, तो उन्हों ने कहा कि वे तो कोई मेरे कमरे में ही नहीं आए। सब कमरों में ढूँढ़ता-ढूँढ़ता मैं अनायास संध्या के कमरे में जा पहुँचा। पर यह क्या? उसे एक पर-पुरुष के आलिंगन में बद्ध देखकर मुझे अपनी आँखों पर जैसे विश्वास ही नहीं हुआ। पुरुष ने तो मुझे देखते ही आँखें बंद कर लीं; पर संध्या उबल पड़ी—'' यह भी क्या बदतमीजी है? तुम तो पढ़े-लिखे हो, विलायत हो आये हो! क्या तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि दरवाज़े पर दस्तक दिए बिना भीतर नहीं आना चाहिये? '' यह सुनकर मैं तो ऐसा हक्का-बक्का रह गया कि मेरे दिल, दिमाग, जबान, आँखें आदि जैसे काम ही नहीं कर रहे थे। तुरंत मैं उल्टे पाँवों बाहर निकल आया और बैग लेकर चेंबर चला आया। रात को १०-१०॥ बजे जब घर लौटा, तो देखा कि सदर दरवाज़े पर एक नया दरबान लाठी लिये बैठा है। मेरे भीतर पाँव रखने से पहले ही उसने खड़े होकर रास्ता रोकते हुए कहा—'' भीतर जाने का हुकुम नहीं है, डागदर साहब। '' मैं अवाक् रह गया। मैं कुछ कहूँ, इससे पहले ही वह बोला—'' मेम साहेब के हुकुम से चार और लठैत भीतर बैठे हैं। सो आप कुछ गोल-माल न करें; वर्ना फिर हमें दोष मत दीजिएगा। '' पर अपने सिवा मैं भला किसे दोष देने योग्य रह गया था, सो चुपचाप अपना-सा मुँह लेकर एक होटल में चला गया।

'' हूँ। '' —कह कर कुछ सोचते हुए से तपन बाबू ने पूछा— '' पर तुमने कहा न कि उसने तुम्हें धमकी दी। सो उसने तुमसे तलाक पहले-पहल कब माँगा था? ''

'' इसके दो ही दिन पहले। बात यह हुई कि उसने मुझसे २५ हजार रुपए की माँग की। इस पर मै ने पूछा कि उसके नाम बैंक में जो अलग हिसाब था, वे रुपये क्या हुए? उसने कहा—' वे तो सब खर्च हो गये। ' फिर जब मैं ने पूछा कि किसमें और अब इतने रुपये किस लिए चाहिए, तो तुनक कर बोली कि मुझे उसकी खानगी बातों में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है! फिर उसने कहा कि अगर मैं उसपर विश्वास नहीं करता, उसके चाल-चलन को पन्सद नहीं करता; तो तलाक ही देदूँ। मेरे यह कहने पर कि उसे जब असुविधा है, तो वहीं क्यों न तलाक दे दे, वह राजी नहीं हुई। अब तुम्हीं बताओं, मुझे क्या करना चाहिए? ''



गंगा गये गंगादास......!

"अच्छी बात है। तो मुझे कुछ सोचने का समय दो।"

"हाँ, हाँ, अवश्य। तो फिर मैं कब मिलूँ तुमसे?"

"आज ही रात को ९–१० बजे या फिर कल सुबह ८ बजे आ सकते हो।"

"अच्छी बात है। तो अब मैं चलूँ।" – कहकर रामेन बाबू उठे, दोनों हाथ जोड़कर तपन बाबू को नमस्कार किया और एक बार फिर उनकी स्त्री के चित्रपर एक उड़ती हुई-सी नजर डालकर बाहर निकल आए।

पीछे से उन्हें तपन बाबू की आवाज सुनाई दी – "अरे रामेन। लो, मैं तो बातों में भूल ही गया। इतने दिनों में तो मेरे घर आए हो, एक कप चाय तो पीते जाओ, भाई।"

"आज नहीं, फिर कभी।" – गाड़ी स्टार्ट करते हुए रामेन बाबू ने हँसकर कहा – "और खाली चाय ही क्यों, किसी दिन पूरा खाना ही खाऊँगा! अब तो मेरे रहने-खाने का कोई ठैर-ठिकाना नहीं, इस लिए तुम्हारे सहारे की और भी ज्यादा जरूरत है।" और गाड़ी चला दी।

"अच्छा, अच्छा।" – कहते हुए तपन बाबू भीतर चले जाए।

— २ —

ड्राइवर को गाड़ी निकालने को कहकर ज्यों ही तपन बाबू ऊपर से उतरे, देखा कि बैठक में कोई स्त्री बैठी उनका इंतजार कर रही है। पास जाकर उन्हों ने पूछा – "आप कौन हैं? और इस वक्त? यह तो मेरे कोर्ट जाने का समय है।"

"मैं एक अभागी सताई हुई अबला हूँ, बैरिस्टर बाबू।" – सिर नीचाकर कातर कंठ से स्त्री ने कहा – "बड़ी तकलीफ़ में पड़कर ही आपकी शरण में आयी हूँ।"

"सो तो ठीक है।" – तपन बाबू ने तनिक सहानुभूति के स्वर में कहा – "पर अभी तो मैं कोर्ट जा रहा हूँ। आज पहला मुकदमा मेरा ही है। क्या आप शाम को नहीं आ सकतीं?"

"आ क्यो नहीं सकती? पर बात यह है—" और फिर कुछ रुक तथा स्वर को कुछ और कातर और धीमा करके वह बोली—

"आप तो जानते ही है हमारे समाज की अवस्था। शाम या रात को अकेली स्त्री का कहीं आना-जाना लोग ठीक नहीं समझते। तरह-तरह की बातें होने लगती हैं। जितने ही मुँह उतनी ही बातें। भला कौन किसका मुँह बंद कर सकता है?"

"अच्छी बात है, तो फिर कल सुबह आठ बजे आइए।"

"जी, अच्छा।"—कहकर उठते हुए स्त्रीने कहा-"पर मैं इतनी दूर से बड़ी आशा लेकर आई थी आपके पास। आप अगर दो मिनट भी दें, तो मैं संक्षेप में अपनी बात आपके कानों में तो डाल देती। मेरे लीए तो इस समय कष्ट और यातना का एक एक पल काटना युग–सा भारी हो रहा है।"

"आखर ऐसी भी क्या बात है?"

"बात क्या कोई नई है, बैरिस्टर बाबू? हमारे देश में बेचारी स्त्रियों की जो दुरवस्था है, आए दिन ही तो उसके किस्से सुनाई देते हैं। सुधार, प्रचार, शिक्षा, कानून की बड़ी–बड़ी बातों के बावजूद आज गँवारों की तो क्या, पढ़े–लिखे पुरुषों की यह हालत है कि स्त्री की स्वतंत्रता और समानता को फूटी आँखों भी नहीं सह सकते। उनके लिए आज भी स्त्री अपनी वासना शान्त करने के एक यंत्र से बढ़कर और कुछ भी नहीं है।"

"जी हाँ, दुर्भाग्यवश आज की स्थिति तो यही है। पर जमाना तेजी से बदल रहा है। शायद यह स्थिति ज्यादा दिन न रहे। पर हाँ, आप अपनी बात तो बताइए।"

"जी हाँ, वही तो बताने जा रही हूँ। मेरा विवाह हुए कोई २० वर्ष हुए होंगे। दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं। इस दौरान में पतिदेव ने धीरे–धीरे शराब और पर स्त्री–गमन में इतनी दक्षता हासिल कर ली कि अति होने पर जा मैं आपत्ति करती, तो मुझे बुरी तरह मारते–पीटते। हाल ही में सुना कि उन्हो ने गुप्त स्थानों पर दो–तीन रखेलियाँ भी रख छोडी हैं। जब मैंने इसके कारण हुई घरकी तबाही की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया, तो मुझे पहले तो बहुत बुरा भला कहा, फिर मारा–पीटा और फिर अचानक घर से गायब हो गये। यह देखिए, मैंने तो अखबार में उनका चित्र देकर विज्ञापन भी छपवाया, पर अभी तक उनकी कोई खोज–खबर नहीं! भला मैं अकेली निराश्रित स्त्री ४–४ बच्चों को लेकर अब क्या करूँ कैसे रहूँ।" —यह कहकर स्त्री ने हाथ में लिए बैगसे एक मुड़ा हुआ अखबार निकाल कर तपन बाबू की ओर बढ़ा दिया।

तपन बाबू ने अखबार तो नहीं लिया, पर बोले—"इसे अभी अपने पास ही रखिए। फिर देख लेंगे। तो फिर कुछ दिन उनके लौटने की प्रतीक्षा करने के सिवा चारा ही क्या है? वैसे आप चाहती क्या हैं?।"

"तलाक, और क्या?" —स्त्री ने तपाक से कहा।

तपन बाबू जैसे हैरत में पड़ गये। बोले—"लेकिन आपके पति तो लापता हैं — और वह भी चंद दिनों से ही, फिर तलाक मिलेगा कैसे? आपको आखिर इतनी जल्दी क्या है?"

"जल्दी की बात नाहीं, बैरिस्टर साहब।—" स्त्रीने तनिक आवेश के साथ कहा — "पर आखिर ऐसे विश्वासघातकी और लंपट पति की प्रतीक्षा में अनन्त काल तक बैठी रहूँ? आखिर मुझे अपने और अपने बच्चों के भविष्य की भी तो चिन्ता करनी है।"

वह तो ठीक है। पर जैसा कि आप कहती हैं आपके पति को लापता हुए तो अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। इस स्थिति में तो परित्याग आ आरोप भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

"किन्तु मार-पीट, क्रूरता, दुर्व्यवहार, व्यभिचार आदि क्या पर्याप्त कारण नहीं? मेरे पास इसके गवाह भी हैं।"

"होंगे, मगर अदालत तो वादी और प्रतिवादी की बात सुनकर ही कोई फैसला दे न? आखिर कानून भी तो—"

देखिए मैं कानून-वानून कुछ नहीं जानती। बस, इतना जानती हूँ कि आप चाहें, तो सब-कुछ हो। मैं बड़ी आशा से आपका नाम सुनकर आयी हूँ। कृपया इस कष्ट के समय मेरी कुछ तो मदद कीजिए।"

"लेकिन मैं इन्कार कब कर रहा? अच्छा, तो अगर आपको शामको आने में आपत्ति हो, तो सुबह ८ से ११ बजे के बीच कभी

भी चली आइएगा। जरा विस्तार से बातें करने के बाद ही मैं आपको कुछ बता सकूँगा। ''

"अच्छी बात है। '' – ठंडी साँस लेकर स्त्री ने कहा और उठते हुए आजिजी के साथ बोली – " पर मैं सोच रही थी कि चेंबर में आपको दूसरे मुवक्किल भी तो घेरे रहते हैं। सबके सामने अपनी व्यक्तिगत बातें कहते मुझे जरा संकोच होना स्वाभाविक ही है। इसलिए क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप ही कभी कोर्ट जाने से पहले या लौटते समय थोड़ी देर के लिए मेरे घरको अपनी चरण-धूलि से पवित्र करें। वहाँ चाय भी पिएँ और सारी बातें भी हो जायँगी। '' – यह कहकर स्त्री ने अपने बैग से एक कार्ड निकाल कर तपन बाबू की ओर बढ़ाया और कहा – " यह है मेरा पता – ठिकाना। टेलिफ़ोन का नंबर भी इसमें है। आप चाहें, तो आने से पहले फ़ोन भी कर सकते हैं। वैसे उसकी कोई खास जरूरत नहीं, क्योंकि मैं तो सब समय घर पर ही रहती हूँ। ''

" देखिए, मैं वादा तो नहीं कर सकता; पर चेष्टा करूँगा। ''

" अच्छी बात है। तो अब मैं चलती हूँ। अच्छा, नमस्कार। '' कहकर स्त्री ने दोनों हाथ जोड कर नमस्कार किया और बाहर की ओर चलदी। तपन बाबू ने कार्ड लेते हुए प्रति नमस्कार किया और उसके पीछे-पीछे बाहर निकल आए।

अपनी गाड़ी की ओर बढ़ते हुए तपन बाबू ने कार्ड पर नज़र डाली। ऊपर टेलीफ़ोन के नंबर और नीचे लिखे पते के बीच नाम की पंक्ति पर आकर उनकी आँखें सहसा ठिठक गईं। बलखाती नागिन – से टेढ़े–मेढ़े अक्षरों में लिखा था—संध्यारानी मित्र! उन्हों ने तेजी, से कदम बढ़ा कर मोटार में जा बैठी स्त्री के पास जाकर पूछा—" अच्छा, माफ़ कीजिएगा, एक बात तो बताइए। आपके पति का नाम क्या है ? ''

" जी, रामेन्द्र सुंदर मित्र। बड़ा डाक्टर बना फिरता है ! '' —कहकर स्त्री ने मुँह बिचकाकर एक व्यंगपूर्ण हँसी हँस दी।

पर इसका प्रभाव तपन बाबू पर उल्टा ही हुआ। उनका चेहरा उतर गया। बड़े कष्ट के साथ उन्हों ने कार्ड स्त्री को लौटाते हुए कहा—" क्षमा कीजिएगा, मैं आपका मुकदमा नहीं ले सकूँगा। ''

" पर अभी तो आपने मेरे पक्षकी पूरी बात ही नहीं सुनी है। —" स्त्री ने सहसा हतप्रभ होकर कहा—" अगर आपको अपने मेहताने की चिन्ता हो, तो कहें तो बैंक की गारंटी दिला दूँ और कहें, तो पेशगी दे दूँ। विश्वास कीजिए, आपकी अधिकतम फीस मैं दूँगी। ''

" जी वैसी कोई बात नहीं। फीसका सवाल नाहीं है ''–तपन बाबू ने सहज भावसे कहा-" दरअसल बात यह है कि रामेन बाबूका केस मैं पहले ही हाथ में ले चुका हूँ। इसलिए भला वादी और प्रतिवादी दोनों का वकील मैं कैसे हो सकता हूँ ! ''

" ओह ! तो यह बात है। ''—कहकर स्त्री ने एक विरक्तिपूर्ण दृष्टि तपन बाबू पर डाली और फिर अपने ड्राइवर को चीखते हुए हुक्म दिया—" ड्राइवर घर चलो। ''

तपन बाबू को लगा जैसे इस दूसरे मुवक्किल की बात सुने बिना पहले मुवक्किल के मामले का चित्र पूरा नहीं हो पाता। विरसता से मुस्कराकर वे अपनी गाड़ी में आ बैठे और कोर्ट चल दिये। ★

घा य ल !



वि. स. खांडेकर

वह एक सामान्य मनुष्य था। एक साधु ने बचपन में उससे कहा था, " मध्य रात्रि के एक शुभ मुहूर्त में कभी एक याचक तुम्हारे पास आयेगा। वह जो माँगेगा वह वस्तु यदि तू उसे दे देगा तो ईश्वर प्रसन्न होकर संसार के सभी सुख तुझे दे देगा। "

साधु के उस वचन पर विश्वास रखकर वह प्रतिदिन मध्यरात्रि के दो घड़ी पूर्व उठता और दरवाजे से कान लगाकर बैठता और मध्य रात्रि के दो घडी बाद निराश होकर फिर सो जाता।

इस तरह कई वर्ष निकल गये। किन्तु मध्य रात्रि के समय उसके पास कोई भी याचक नहीं आया।

उस साधु के वचन पर उसका विश्वास अब उठने ही वाला था किन्तु इतने में ही एक मध्य रात्रि के समय उसका दरवाजा किसी ने जोर–जोर से खटखटाया और बाद में तुरन्त ही कठोर आवाज सुनायी दी, " मुझे तेल चाहिये। तुम्हारे पास जितना तेल हो मुझे दे दो। "

वह तेल लाने के लिए घर में जानेवाला था। इतने में फिर से किसी ने दरवाजा खटखटाया। किन्तु यह खटखटाना सौम्य था। तुरन्त एक कोमल आवाज सुनायी पडी, " मुझे तेल चाहिये। तुम्हारे पास जितना तेल हो मुझे दे दो। "

वह तुरन्त ही घर में गया। उसने सारे बर्तन ढूंडे। केवल करछुली भर तेल घर में बाकी था।

उसे हाथ में लेकर उस ने दरवाजा खोला।

" डालो, यह तेल डालो '' कठोर आवाजवाला वह व्यक्ति बोला।

" कहाँ ? कहाँ ? "

" मेरे मस्तक पर के जख्म पर। वहां का मणि—किन्तु यह सारी कुलकथा तुझ से कहने से क्या लाभ ? मेरा नाम अश्वत्थामा है। पांडवों के शिबिर में मध्य रात्रि के समय घुसकर मैं ने उनके पुत्रों का वध किया। मैं ने बदला लिया है। जिससे मुझे सन्तोष हुआ। किन्तु उसके लिए सतत बहनेवाली इस जख्म की वेदना सहते हुए और उसको ठण्डा करने के लिए मुझे घर-घर तेल की भीख मांगनी पडती है। "

" घृणा से कभी किसी का भला हुआ है ? " तेल मांगनेवाला वह दूसरा व्यक्ति बुडबुडाने लगा। फिर शीघ्र ही वह उस मनुष्य की ओर झुककर बोला, " मेरे हाथ का वह दिया बुझ गया है। अंधेरे से लाखों व्यक्ति जा रहे हैं। उन्हें प्रकाश दिखाना होगा। डालो, वह सारा तेल इस दिये में डालो। "

उस व्यक्ति की सहृदयता से द्रवित होकर उस व्यक्ति ने पूछा, " महाराज आपका नाम क्या ? "

" गौतम बुद्ध। "

यह नाम सुनकर उस व्यक्ति के हाथ से वह तेल का बर्तन गिर पडा। उसका सारा तेल जमीन पर गिर पडा।

उस व्यक्ति ने सिर ऊपर उठाकर देखा। दरवाजे में वह अकेला ही खडा था। आसमान के तारे उसकी ओर देखकर आपस में पलकें हिला रहे थे।



अ र विं द गो ख ले

अब मैं एक रामायण-कालीन कहानी कहनेवाला हूँ। संशोधक के अधिकार से या आलोचक के विचार से नहीं। रामायण जैसे आदरणीय अभिजात साहित्य पर विपुल विवेचन और विस्तृत संशोधन हुआ है। वाल्मीकि से विजय भट्ट तक अनेक व्यक्तियों द्वारा रघुकुल के इस काल पर बहुत मौलिक रचनाएँ लिखने के प्रयत्न किये गये हैं। इस अविस्मरणीय कथा और अमर चरित्र के सामने हमारी यह कहानी और उसकी कथा–नायिका कितनी नगण्य और उपेक्षित! किन्तु इसलिए ही यह कहानी कहने योग्य है...।

जिस समय अयोध्या नगरी मे विष्णु-अवतार प्रभु रामचंद्र अपनी शैशवावस्था विता रहे थे उस समय मिथिला नगरी में हमारी नायिका का जन्म हुआ। मिथिलाधिपति राजा जनक की यह जेष्ठ कन्या थी। जनक जैसे राजा के घर जन्म लेना कितना बडा भाग्य! वैभवशाली देश की राजकन्या के नाते उसका क्या सम्मान, जनक के जामाता के नाते लक्ष्मण का चुनाव और असामान्य राजपुत्र के साथ उर्मिला का विवाह, एक भाग्यशाली राजा की महारानी के नाते उसका कितना गौरव! अपने लोकोत्तर कार्य से पार्वती, सरस्वती आदि स्त्रियों जैसा अमरत्व पाना! उर्मिला को ऐसा श्रेष्ठ जीवन प्राप्त हुआ कि आर्यावर्त की सभी कन्याएँ उसकी ईर्ष्या करें।

पर छोटी-सी उर्मिला के सामने समस्यायें पहेली जैसी लगती थी। बाल्यावस्था में उसे इसका भास नहीं था। परंतु उसे अपने दैनिक जीवन में कुछ कमी महसूस होने लगी। अपनी सहेली को पूछकर उसे लगा कि इसका हल किया जाय। किन्तु उसे डर लगता था। अन्य किसी से कहने का साहस उर्मिला में नहीं था। वह अबोल, सहनशील और शांत थी।

सही देखा जाय तो, कई बातें बड़ी आश्चर्यजनक थीं!... हल चलाते समय जनक को भूमि में सीता मिली और उन्होंने उसका पुत्री जैसा पालन किया। सीता अनाथ लड़की थी। राजमहाल में

भोजन करते समय, सोते समय, सिंहासन पर बैठते समय, जुलूस में जाते समय उर्मिला को सीता के पीछे-पीछे ही रहना पड़ता था। जनमसेही बेचारी के भाग में गौण भाग्य लिखा था। बावली...कोने में पड़ी बेचारी !

वैसे तो अनेक दासी-कन्याएँ थी!... किन्तु सीता का कितना कौतुक! जनक राजा उसे बार-बार अपनी गोद में लेते, स्वयं हाथसे खिलाते, समय निकाल कर उसे पढ़ाते। राजा की सभी रानियाँ उस पर बहुत ही प्रेम करती थीं। इसी तरह नगर के सभी लोग सीता पर प्रेम भाव रखते थे। लेकिन बेचारी उर्मिला ! वह पीछे रहकर देखती। उसे लगता कि सीता को गोद में लेने के लिए सभी की होड़ लगती और मैं रोती तो भी किसी का मेरी ओर ध्यान ही नहीं जाता। गुरुवर्य सीता को पहले पढ़ाते और उसका अनुकरण उर्मिला को करना पड़ता। सभी विद्याओं में सीता का नंबर पहला और उसका दूसरा। भोजन करते समय, सोते समय, सिंहासन पर बैठते समय, जुलूस में जाते समय, वह सीता के पीछे-पीछे ही रहती थी।... इसका असर नन्ही उर्मिला के हृदय पर बहुत पड़ा और स्वभावतः वह गंभीर और सहनशील बन गयी।

उर्मिला बड़ी हुई। अपने भावी जीवन के विचार उसके सामने आने लगे। यह जीवन, घर, बाग सखी आदि सभी को छोडकर दूसरे घर उसे जाना पड़ेगा इसकी जानकारी से उसकी दृष्टि बदलने लगी। घरमें विवाह-विषयक बातें होने लगीं। हररोज पूजापाठ करते समय राजा जनक कहते, कि दादा के जमाने से यह शिवधनुष्य यहाँ पड़ा हुआ है। इसे डोरी लगानेवाले को मैं अपनी कन्या दे दूँगा। उर्मिला लज्जित होती थी – उसके मन में अनेक विचार आने लगते। शिवधनुष देखते – देखते अनेक विचार उसके मन में आते। सभी स्थानों से राजपुत्र स्वयंबर के लिए आयेंगे। इस में से तेजस्वी राजपुत्र आगे बढ़कर सहज ही लीला से धनुष की डोरी लगाते-लगाते मेरी ओर देखेगा। सुख की सहस्र धाराओं का सिंचन होगा और मैं उस पुरुषोत्तम को माला पहनाऊँगी।

किन्तु विधि में कुछ अलग ही लिखा था। एक तेजस्वी नरेश आगे बढ़ा; पर उसे सीताने माला पहनायी!...प्रतिज्ञा थी सीता के लिए। युगों-युगों से प्राप्त होनेवाला वह भाग्य सीता का था। और हमेशा की तरह उर्मिला को दूसरे नंबर का भाग्य मिला और राजा दशरथ के दूसरे पुत्र को उर्मिला ने माला पहनायी।

उर्मिला के मन पर भारी असर हुआ। उसे लगता कि सीता पर के पिता के प्रेम में वात्सल्य से आदर और ममता से भक्ति ही अधिक है। कुलशील के अनुसार धनुष भंग करनेवाले को ही जनक अपना जामात बनायेंगे। किन्तु यहाँ तो लक्ष्मी और विष्णु दोनों में मानवी अवतार का विवाह होनेवाला था। उर्मिलाको शेषावतार से विवाह करना पड़ा और उसका सुख भी शेषवत् रह गया।

लज्जारूपी ज्वाला में उर्मिला ने अपनी आकांक्षाओं, अपने सपनों को जला दिया। सही देखा जाय तो उसका विवाह इतना घूमधाम से मनाया जानेवाला थी। किन्तु राम-सीता की मंगलवेदी के पास ही और तीन विवाह-वेदियाँ लगाकर उनमें उर्मिला और उसकी दो चचेरी बहना कों भी पाणिग्रहण-संस्कार कर दिया गया। इन चार विवाह की धूम-धाम में राजा जनक की इस एकमात्र कन्या का जितना उल्लास होना चाहिये था, नहीं हुआ इसमें आश्चर्य ही क्या है ?— सारा राजवंश राम-सीता के दर्शन में मग्न था उसमें इस उर्मिला की क्या बात। उर्मिला को लगा, बाल्यावस्था और युवावस्था में ससुराल के नियंत्रण में फरक क्या है ? राजा के छोटे भाई से विवाह और फिर सीता का ही सहवास ! जन्म से ही अपने भाग में गौण भाग्य ही लीखा है; उसे ठीक समझकर जीने में ही सफलता है। इन सभी बातों को दृढ़ता से सह लेने का निश्चय उसने किया। सीता के ससुराल जाते समय जनक की विरह-व्यथा कण्व की करुण कहानी जैसी बन बैठी। किन्तु प्रत्यक्ष अपनी कन्या को बिदा देते समय उनकी हालत क्या हुई होगी इसकी कपल्ना भी उसने नहीं की। वह ससुराल चली गयी। उस नये वातावरण में उसे सुमित्रा का एक ही सहारा था। उसके सास की स्थिति उसके समान ही थी। प्रेमी, शांत, मितभाषणी और सहनशील। उर्मिला के लिए वह माँ जैसी ही थी। उर्मिला को उसीका आधार था। एक विचार उसके मन में आया। अपनी सास भी दशरथ राजा की दूसरी पत्नी, अपना पति यदि कौसल्या माता का पुत्र होता तो ?...यहि राजवंश में महत्व का स्थान प्राप्त करनेवाली कैकयी अपनी सास होती तो ? ...

लेकिन जो कुछ मिला उसी में जीवन आनन्द से बिताने के लिए वह प्रयत्नशील थी। उसे स्वतंत्र महल मिला था जिसमें सभी तरह की सुखविधाएं प्राप्त थीं। सास-ससुर भी उस पर अत्यन्त प्रेम करते थे। उसके पति का सभी जगह काफी सम्मान था। वस्तुतः वह था भी वैसाही साहसी। उसका मत्सररहित और गर्वरहित स्वभाव उर्मिला के लिए गौरव की बात थी। राजस्त्रियों के सभी समारोहों में सीता और मांडवी के बीच वह बैठती थी।

परंतु अभी ही सजाये हुए, उसके जीवन के उस सुनहरे सपनों पर पानी फिर गया। रघुकुल के सभी व्यक्तियों के सामने महान् संकट आ पड़ा। उर्मिला को इस बात की कल्पना ही नही थी कि कैकेयी इस प्रकार का कुछ निर्णय कर लेगी। राम को राजतिलक

अरविंद गोखले :

आप मराठी भाषा के एक उत्कृष्ट कहानीकार हैं। आपकी कहानियां कई बार हमने प्रस्तुत की हैं। मन की सूक्ष्मतम भावनाओं को आप भली भांति शब्दांकित करते हैं।





अनुक्रमणिका

लगाया जायगा इस एक ही आनंद में अन्य स्त्रियों के समान वह भी डूब गयी थी। राम केराजा बनने के पश्चात् राज्य की सारी जिम्मेदारी लक्ष्मण पर ही आ पड़नेवाली थी और उसे सभी सुख प्राप्त होनेवाले थे। अर्थात् सीता के समान ही उसे बड़ा सम्मान मिलनेवाला था इसमें ही वह प्रसन्न थी। किन्तु बीच में ही कैकेयी द्वारा विलक्षण विद्युत् उपस्थित किया गया। उर्मिला को भविष्य की उत्पन्न हो गयी। उसने मांडवी को पूछा, लेकिन उसे भी कुछ पता नहीं था। सास सुमित्रा को पूछकर कुछ समझमें आनेवाला थोड़े ही था। सीता अपनी व्यथा में डूबी हुई थी। और उर्मिला का पति लक्ष्मण राम के साथ जोरों से वाद-विवाद करने में मग्न था। क्या किया जाय इसका पत्ता उर्मिला को नहीं चलता था। उसे कुछ भी नहीं सूझता था। पगली जैसी वह पति की राह देख रही थी।

लक्ष्मण आये, उन्होंने अनेक शोकजनक बातें कहीं। राम और सीता बनवास चले जाएँगे और उनके साथ स्वयं वे भी जायेंगे। उर्मिला किं कर्तव्य विमूढ हो गयी। अपने को संभालते हुए उसने पूछा, "आप...आप उनके साथ क्यों जायेंगे और वह भी चौदह वर्षों के लिए?"

लक्ष्मण को अनेक प्रकार से समझाने की उर्मिलाने कोशिश की परंतु लक्ष्मण ने कुछ भी नहीं सुना। वह निश्चित रूप से जानती थी कि दृढनिश्चयी पति अपनी कुछ भी नहीं सुनेगा। फिर भी उसने प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। फिर भी लक्ष्मण अपने निर्णय पर अडिग रहे और वह जाने की तैयारी में लग गये। अपने बड़े भाई के बन में कष्टमय जीवन व्यतीत करते समय मैं यहाँ राजविलास में मग्न हो जाऊँ यह लक्ष्मण को ठीक नहीं जँचा।

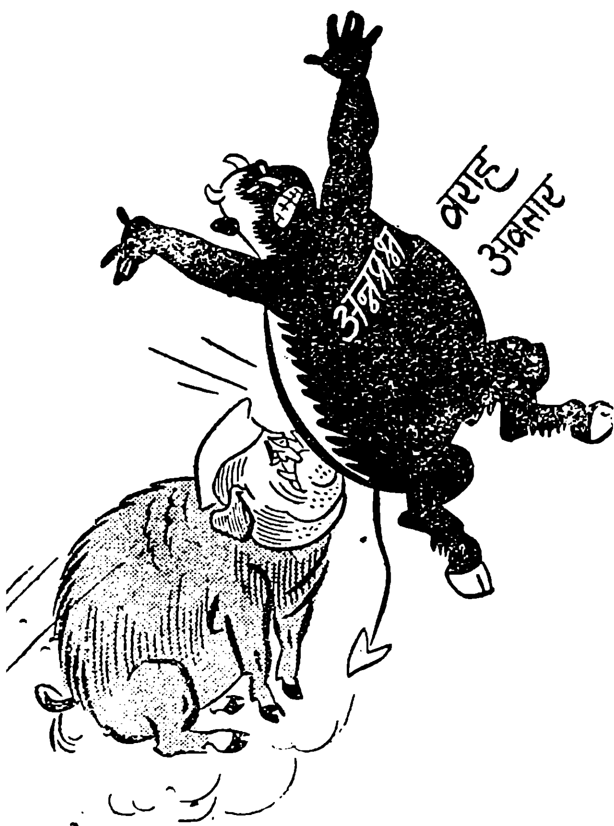
उर्मिला के दुःख की सीमा नहीं रही। समय की कमी थी। उसे सूझता नहीं था कि क्या किया जाय। पगली-सी वह राम ओर सीता के पास गयी। वे दोनों अपने दुःख में चूर-चूर हो गये थे। उनको पिता के शोक से परावृत्त करना, माता की आज्ञा का पालन करना, नगरवासियों को समझाना और चौदह वर्ष के कठिन जीवन के लिये सिद्ध होना था। उर्मिला को लगा उसके इस दुःख के सामने अपनी कहानी कितनी क्षुद्र है। अपने इस दुःख को कहकर उन्हें क्यों सताऊँ! उनके मन की संभ्रांत भावना हट गयी फिर भी वह कुछ निर्णय लेना चाहती थी। उसने याचना की—"मेरे पति को न ले जायँ, यदि ले जाना ही हो तो उनके साथ मुझे भी ले चलें। मैं यहाँ अकेली कैसे रहूँ? मैं साथ आऊँगी। सीता बहिन की सहेली बनूँगी पति की सेवा करूँगी, आप सभी के कपड़े धोऊँगी। आने दो मुझे तुम्हारे साथ...।"

उर्मिला की विनति का कुछ भी असर नहीं हुआ। सीताने अपने मीठे शब्दों में उसे समझाया। रामचंद्र ने उपदेश दिया पर अबोल उर्मिला, बावली, कोनेमें पड़ी हुई उर्मिला बोल ही क्या सकती हैं? – कौशल्या के सामान वह विव्हल नहीं हो सकती थी, क्रोध में कैकेयी के समान अपना ही सिर पीट नहीं सकती थी, सीता जैसी हठ भी नहीं कर सकती थी। उसकी विनति का, विवशता का कोई मूल्य नाहीं था। दुःख से वह मूढ़ बन गयी थी।

पति-धर्म का पालन करने के लिए सीता बन जा सकी पर इस उर्मिला को झिड़की सहन करने का पुण्य भी प्राप्त नहीं हुआ—इसका उसे रह-रह कर दुःख होता था। सर्वज्ञ रामचंद्र को भी इसका विचार नहीं इसका उसे विस्मय होने लगा उर्मिला को लगा कि अपनी सम-दुःखीनी को देखकर सीता का उसे साथ ले जाना उसका कर्तव्य था और अपने स्वामी...। अभी ही विवाहबद्ध हुए हैं। आज उसकी नयी पहचान को तोड़कर उसके स्वपनोंपर, आकांक्षाओं पर यौवन पर, वज्रघात करके निष्ठुरता के साथ चले जाना यह घटना उसे बार-बार सता रहीं थी। बन्धुप्रेम में मग्न पति, सर्वज्ञ रामचंद्र और सम दुःखी सीता उसे छोड़कर वन में गयी–उर्मिला जैसे दुःख की बढ़ में वह गयी। आसपास सभी शोकमग्न वातावरण था कोई पुत्र के लिए तो कोई राजा के लिए। किसी को भी उर्मिला के आक्रोश की और ध्यान देने के लिए समय नहीं था। सारी जनता राम को

(शेषखण्ड पृष्ठ १६० पर देखिए।)

आज के दशावतार : ३ वाराहावतार



अन्न प्रश्न जब बना पहेली प्रगट हुए अवतार।
धर, वाराह देह बन बैठे, भारवहन अधिकारी

उलझन

सन्तोष कुमार घोष

जन्म, शादी और मृत्यू! इन के अलावा इस गली में कोई परिवर्तन नहीं होता। उस गली में अकस्मात एक मकान खाली हुआ। और... और...

एकदम नया आदमी! मैंने उसे इस मुहल्ले में कभी नहीं देखा था। पहले-पहल जिस समय मैंने उसे देखा, उस समय हमारे बरामदे में एक कुत्ता, बरामदे की रेलिंग पर एक कौआ और नीचे रास्ते पर कदाचित् एक फेरीवाला ही था।

बच्चे स्कूल जा चुके हैं। वह भी कुछ देर हुई नियमानुसार पान मुँह में दबाकर वे आफिस गए हैं। सारा काम निपटा कर मैंने स्नान किया और अब कपड़े सुखाने के लिए मैं बाहर बरामदे मे आयी हूँ। तार बहुत ऊँचा है, किसी भी तरह उस तक हाथ नहीं पहुंचता। कपड़े उस तार पर सुखाने हैं, पर अंगूठे के बल खड़े होकर मेरे हाथ उस तार तक नहीं पहुँचते। नोकर को प्रायः रोज ही कहा करती हूँ—'उसे जरा नीचा कर देना,' जवाब में वह कह देता है—'कर दूँगा'। पर नीचा करता नहीं या फिर करना भूल जाता है। फलस्वरूप रोज ही मुझे जरा इधर-उधर देखकर एक ऊँची कूद-सी लगानी पड़ती है--तीन-तीन बच्चों की माँ होकर, छिः!

उस दिन कूदकर भी तार को नहीं पकड़ सकी और ब्लाऊज हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ा। जरा झुक कर देख रही थी कि ब्लाऊज कहीं नाली में तो नहीं जा गिरा, तभी अचानक उस आदमी पर नजर पड़ी।

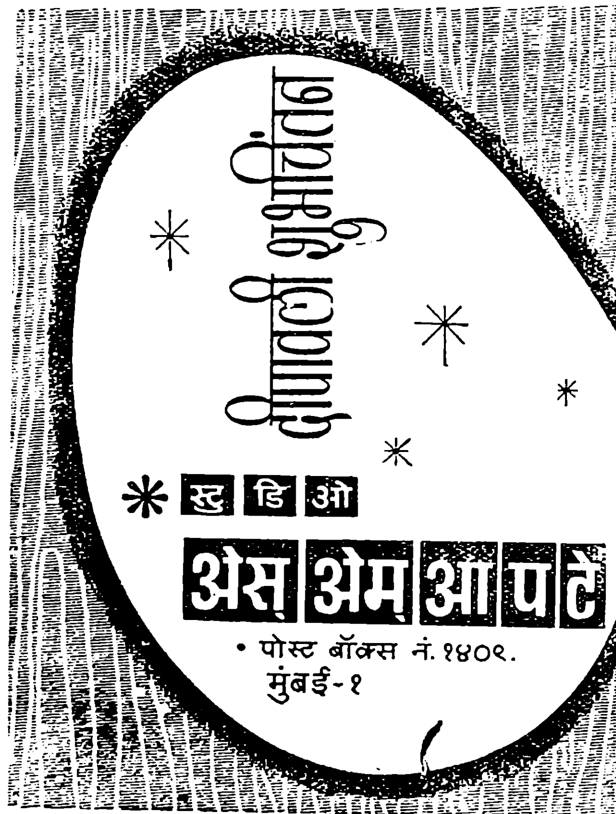
नया आदमी था इसीलिए उसे देखा, वर्ना कोई खास बात उसके चेहरे में नहीं थी। सामनेवाला जो मकान आज प्रायः महीने भरसे खाली पड़ा है, उसी ओर वह आदमी एक टक देख रहा था वह उस मकान के पास आकर खड़ा हुआ और दरवाजे पर एक धीमी-सी दस्तक दी। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ, सामने इतना बड़ा ताला लटक रहा है, क्या वह भी इस आदमी को नहीं दिखाई देता।

कुछ देर तक यों ही वहाँ खड़ा रहा। मैं भी उसी ओर देखती रही। इसके बाद वह जिस ओर से आया था उसी ओर न जाकर सामने की तरफ जाने लगा। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर नहीं, यद्यपि वही उस उम्र के पुरुष के लिए स्वाभाविक चाल होती, वह तो धीरे-धीरे चल रहा था। अचानक वह रुका और जूतों के फीते बाँधने लगा था—ऐसा मेरा विश्वास है।

अचानक मैंने देखा कि वह सामने की ओर न जाकर वापस लौट रहा है। वह उस बन्द मकान के पासवाली दुकान से सिगारेट खरीदने लगा। उसने सिगरेट खरीदी जरुर, पर सुलगायी नहीं। मेरा ख्याल है, उसके पास सिगरेटें पहले से ही पड़ी हुई थी। पैसे देते-देते उस आदमीने दुकानदार से न जाने क्या कहा, अंगुली से उस मकान की तरफ इशारा भी किया। उत्तर में दुकानदारने भी कुछ कहा था पर मैं सुन नहीं पाई थी। इसके बाद वह आदमी वहाँ से चला गया।

उस आदमी पर पहले ही दिन मेरी नजर क्यों पड़ी, इस विषय पर मैंने काफी सोचा है। और फिर कारण भी है, हमारी इस गली में बाहर के आदमी बहुत कम आया करते हैं। दरवाजे, खिड़कियाँ बन्द कर स्त्रियाँ दोपहर को सोती हैं, इसलिए फेरीवाले भी दोपहर को कम आया करते हैं। सुबह से शाम तक जो जो व्यक्ति बाहर से इस गली में आते हैं, उन सबको मैं जानती हूँ। सुबह आता है एक रद्दी कागजवाला। उससे कुछ देर बाद एक आता है धूप-चन्दन बेचनेवाला। प्रायः ग्यारह बजे एक बर्तन बेचनेवाला काँसे की कटोरी को बजाता हुआ आता है। एक बिहारी जाड़े के दिनों में सन्तरे और गर्मी के दिनों में आम बेचता हुआ आता है। इन सबको मैं पहचानती हूँ। खरीदूँ या न खरीदूँ, पर इनकी आवाज सुनते ही बरामदे में आ खड़ी होती हूँ। बेला, चमेली, चम्पा, फूल-वाला नहीं आता, इस गली में फूल-उल के शौकीन नहीं हैं!

नववधू बनकर गले तक घूंघट काढ़े मोटर से उतरी थी बहुत दिन पहले। उस समय मेरे पैर काँप रहे थे, छाती धड़क रही थी। इसके बाद दो बच्चों को जन्म देकर मैं एकदम दुर्बल तथा तीसरे बच्चे को जन्म देकर अति मोटी हो गयी। मेरे कितने केश उड़ गये, कितने लुक-छिपकर सफेद हो गये, किन्तु यह गली जैसी थी वैसी ही है, जरा भी नहीं बदली।



छोटा मुहल्ला होने के कारण मैं सब को पहचानती हूँ। सभी आफीस के क्लर्क हैं, कोई छोटा और कोई बड़ा। सुबह उठकर नाश्ता करने के बाद सभी बाजार जाकर सौदा खरीद कर लाते हैं और उसके बाद आफीस जाते है। शाम होने पर सभी वापस आते हैं। मेरे स्वामी भी, सीढ़ियों में जूतों की आवाज सुनते ही मैं समझ जाती हूँ कि सवा छः बज गए हैं, दो-चार मिनटों का हेर-फेर हो सकता है।

उनके आने के पहले ही मैं हाथ-मुँह धोकर तैयार रहती हूँ। वह आते हैं, हाँफते हैं, थोड़ा–हँसते हैं, धोती के पल्लों को घुमा–घुमा कर हवा खाते हैं। पसीना सूख जाने पर हाथ बढ़ा कर कहते हैं—"देखूँ..."

नहीं-नहीं, मुझे नहीं, मुझे नहीं चाहते, कम से कम उस समय नहीं चाहते, रात न होने तक नहीं 'चाहना' चाहिए। वह पानी का एक गिलास माँगते हैं।

मैं गिलास उनके हाथ में पकड़ा देती हूँ। जल्दी-जल्दी पूरा पानी पीकर वह कहते हैं--"आः।" किसी-किसी दिन मेरी सिन्दूर की बिंदी पर उनकी नजर पड़ जाती है, और कहते हैं—"वाह!" इन दोनों अव्ययों में पहला है तृप्तिज्ञापक और दूसरा प्रशस्ति वाचक।

आसपास में जितने घर हैं, एक-जैसे हैं--जैसे मिल भी तैयार की हुई साड़ियाँ हों—रंग, डिजायन, आकार–प्रकार सब एक जैसा! सभी आफिस से लौटकर एक गिलास पानी पीते हैं। सबों को सिन्दूर की बिन्दी लगी हुई एक एक बहु मिलती है।

मिलती है, पर किसी-दिन ग्रहण करते हैं, किसी दिन नहीं करते। किन्तु ठीक समय पर सोते हैं। घड़ी भी लेट-फास्ट हो जाती है, बन्द हो जाती है चाबी न देने पर, किन्तु इनको देर या जल्दी नहीं होती इन्हें डर बना रहता है कि अगर सोने में देर हो–जायेगी तो उठने में भी देर होगी और फलस्वरूप आफिस जाने में देर हो जायेगी।

बात-बात में कहा आ पहुँची हूँ। मैं तो उस नये आदमी के बारे में कह रही थीं।

जन्म, शादी और मृत्यु। इनके अलावा इगली में कोई परिवर्तन नही होता, उस गली में अकस्मात् एक मकान खाली हुआ और उसी मकान को यह आदमी देख गया है। हमारे मुहल्ले के बाबुओ के साथ यह नहीं मिलता और नहीं मिलता इसीलिए तो पहले दिन ही नजर पड़ी थी।

दूसरे दिन वह आया टैक्सी पर चढ़कर। उतरा उसी मकान के सामने ही। पाकिट से चाबी निकाल कर उसने उस टाले को खोल डाला। मैंने अपने पति से कहा–"उस मकान में शायद नये किराये-दार आये हैं..." मेरे पति उस समय अखबार पढ़ने में व्यस्त थे, अतः कोई उत्तर नहीं दिया।

खट्-खट की आवाज सुनकर उस मकान की खिड़कियाँ खुली; मैंने आवाज सुनी। कमरे में बत्ती नहीं थीं, वह बार-बार दियासलाई जला रहा था और कुछ देर बाद ही वे बुझ रही थी। इसका दिमाग खराब है क्या? दियासलाई भी तीलियाँ खराब कर रहा है, क्या एक मोमबत्ती भी साथ नहीं ला सका।

(शेषखण्ड पृष्ठ १६१ पर देखिए।)





अनुक्रमणिका

इस मंगल-वेला पर हमारे ग्राहकों
और हितैषियोंका शुभ चिंतन !

गत पचीस वर्षों से
अख़बार, मासिक
पत्रिकाएँ, पुस्तक-
प्रकाशन और प्रसिद्धि-
वितरण संस्थाएँ इन
विविध संस्थाओं की
लगातार अविराम
सेवा करनेवाली

विश्वसनीय,
अग्रगण्य संस्था

टे. नं. २९६५७

प्रभात प्रोसेस स्टुडिओ
शंकर आणि कंपनी

धोबी वाडी, ठाकुरद्वार, मुंबई - २

दीदी की कहानी

दीदी की याद आज अचानक ही आने लगी है। न जाने क्यों आने लगी है ! बस, आने ही लगी है– और क्या कहूँ। उनका पूरा इतिहास ही आँखों के आगे उमड़–घुमड़ उठा है। तस्वीरों पर तस्वीरें खिंचती चली आ रही हैं। मन न जाने कैसा-सा होने लगा है। रह-रहकर आँखों से खारे पानी की एकाध बूँद भी टपक पड़ती है।

दीदी ! ओ सविता दीदी ! तुम्हें प्रणाम। अपने भाई के आँसुओं से भीगे बहुत–बहुत–से प्रणाम लो।

दीदी, तुम कहाँ चली गयी हो ? इतना दुःख पाकर तुम कहाँ जा छिपी हो ? आज मुझे तुम्हारी याद आ रही है। तुम्हारे मुँहबोले भाई को तुम्हारी बार-बार याद आ रही है। रोम–रोम से तुम्हारे स्नेह की विकल कामना झर रही है।

लंबे छः साल बीत जाने पर भी तुम मेरे मन और शरीर से चिपकी हुई हो। छुड़ाये ही नहीं छूटती हो कहते हैं कि समय सब कुछ भुला देता है, लेकिन तुम्हारी याद ने तो जैसे खुद समय को ही भुला डाला है। जैसे वह उसके राज्य में चलना भूलकर रुक गया है, एकदम स्थिर ही हो गया है।

आज भी तुम्हारी याद उतनी ही ताजी है, उतनी ही खुशबूदार है।

कोई कहता था कि तुम अब नहीं हो। अपार दुःख पाकर इस दुनिया को छोड़ गयी हो। ... लेकिन मैं कह रहा हूँ, सचमुच कह रहा हूँ कि तुम हो, आज भी हो, आगे भी रहोगी। कहीं भी न हो, तो मेरे मानस में तो हो ही। तुम वहाँ जल रही हो ... गरमी के साथ जल रही हो, रोशनी देती हुई जल रही हो ! मानस यदि सत्य है तो तुम भी सत्य हो।

मैं तुम्हारी सत्ता में विश्वास करता हूँ, भले नहीं ईश्वर में करता होऊँ।

अनुक्रमणिका

तो, दीदी का यह पहला ही चुंबन था। सच कहता हूँ, हीरे-मोती की तरह आज भी वह मेरे पास सुरक्षित है। जब-जब दीदी की याद आती है, वह जीवित हो उठता है और हरहराती नदी जैसे मुझे डुबा लेता है।

कैसा दिन था वह, जब मैं घर-बार से नाराज होकर बनारस आया था। माता-पिता की अवज्ञा कर मैं गरमी की छुट्टियों में संघ का काम करने के लिए भाग आया था। तब मैं बहुत बड़ा नहीं था। इंटर का इम्तहान ही तो दिया था। छोटा ही कहूँ तो ठीक होगा क्योंकि बुद्धि से तो और भी छोटा था। माँ रोती हुई मुझे मनाने आयी थी। तुमने सामने के घर की खिड़की से देखा था लेकिन कुछ कहा नहीं था। तब तुम मुझे जानती ही नहीं थीं। फिर भी, माँ के साथ-साथ मेरे लिए तुमने भी दो आँसू धरती पर गिराये थे।

लेकिन तब तुम क्या जानती थी कि यही बवंडर मैं तुम्हारे लिए भी खड़ा कर दूँगा। तुम्हारे भाई को भी, अपनी ही तरह, कुछ ही

महेंद्र कुलश्रेष्ठ

दिनों के लिए क्यों न हो, तुमसे अलग करने की साजिश करूँगा। जानती होती, तो भी क्या तुम मेरे लिए आँसू गिराती ?

सदा ही तो तुम कहती रही हो कि 'राम, तू तो बड़े कठोर हृदय का है। तेरे मन में किसी के लिए जरा भी वेदना नहीं है। किस दिन क्या कर डालेगा, कहा ही नहीं जा सकता।'

और मैंने ही कब कहा है कि मैं बड़े कोमल मन का हूँ। मैंने तो सदा ही तुम्हारी बात का समर्थन किया है। यह कह कर किया है कि पुरुष जो हूँ। पत्थर और पुरुष की राशि एक ही होती है न ?

एक दिन यही बात सुनकर तुमने मेरे सर पर हाथ फेरते हुए कहा था – 'तो तुम हीरे ही जैसे कठोर बन जाओ। दुनिया में फैला यह बहुत – बहुत-सा दुःख तुम्हारे मन को जरा भी न छू सके। उसके जहर को तुम ऐसे पी जाओ जैसे भगवान शंकर समुद्र-मंथन से निकले कालकूट को पीकर पचा गये थे। तभी तुममें से हीरे जैसे आभा भी निकलकर फैलेगी।'

इसका विरोध करते हुए मैंने कहा था – 'लेकिन मैं तो शंकर हूँ ही नहीं। मैं तो उनकी पूजा करके ही लंका पर चढ़ाई करने की हिम्मत करनेवाला छोटा-मोटा राम हूँ।'

तनिक हँसकर तुमने कहा था – 'राम ही सही।... हे राम, तुम्हारी सीता तुम्हारी रक्षा करे।'

इस पर मैंने बहुत ही नाराज होकर कहा था – 'कितनी बार कहा है कि मुझे सीता एकदम नापसंद है। मुझे तो राधा पसंद है। सीता को कहाँ नाचना भी आता है!'

इस बदली हुई बात पर तुम हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी थीं। फिर, कहा था – 'तुम्हारी सीता को नाचना सिखा देंगे। नहीं तो तुम्हारा नाम ही कृष्ण रख देंगे।'

ये बातें गीता की तरह अमर होकर मन में बस गयी हैं। जब चाहे, तब याद आकर परेशान करती हैं।

* * *

तो, संघ का कैम्प लग रहा था और उसमें अन्य बहुतों के साथ, विनय को भी जाने के लिए कहा गया था। विनय की इच्छा जाने की थी, लेकिन दीदी की नहीं थी। वे उसे कहीं भी बाहर नहीं जाने देना चाहती थीं और किसी पराये के साथ तो बिलकुल ही नहीं जाने दे सकती थीं। फिर विनय अभी छोटा भी तो था।

उन्होंने मना कर दिया, बिलकुल निश्चय से मना कर दिया। लेकिन विनय भी उनका अपना ही भाई जो ठहरा। उसके भीतर भी तो उनके ही जैसा गरम रक्त बह रहा था। अल्टीमेटम दे दिया—'वह जाये बिना नहीं मानेगा और यदि नहीं ही जाने देंगी तो कुछ ऐसा-वैसा खा-पी डालेगा, या फिर इधर-उधर कहीं भी निकल जायेगा।'

हाय! विनय ने यह क्या कह दिया? किसने उसे यह सब सिखा दिया? दीदी रोने लगीं, उनके पिताजी भी रोने लगे। कितने सीधे थे वे बेचारे!......

आधी रात हो रही थी और दीदी के घर में यह सब किस्सा मच रहा था। उन्होंने पिताजी से कहा – 'यह जो इलाहाबाद से राम आया है न, सब आग उसी की लगायी हुई है। उसी ने भड़का रखा है मेरे भाई को। जरा उसे बुलाकर तो लाइये। कैसी खबर लेती हूँ।'

फिर मेरी पुकार हुई। पिता ने कुंडी खड़खड़ायी, तब मैं सो रहा था। बड़े असमंजस में पड़कर उनके साथ-साथ चलने लगा। टेढ़ी-मेढ़ी सीढ़ियों पर पैर रखते हुए, धीरे-धीरे ऊपर गया।

बंगालियों में काली की पूजा होती है, यह बचपन से ही सुन रखा था। देखा कभी नहीं था। आज दीदी के रूप में जैसे पहली बार उसके दर्शन किये। लेकिन, आशा के विपरीत, ये दर्शन कुछ डरावने नहीं लगे। कहूँ कि अच्छे ही लगे, बहुत अच्छे लगे।

दीदी के हाथ में चूल्हे का जलता हुआ चैला था। विनय भी क्रोध से अभिभूत और पसीने से तर, जैसे जवाब देने को सन्नद्ध, खड़ा था। दोनों छोटी बहिनें, इस कांड के कारण भयभीत, सहमी-सी कोने में चुप खड़ी थीं। और, पिता की तो जैसे इस समग्र घटना-चक्र में कोई सत्ता ही नहीं थी। उनकी सिधाई ने उन्हें शून्य बना दिया था। मुझे पहुँचा कर वे नीचे चले गये।

मुझे देखकर दीदी ने चैला फेंक दिया और मेरा हाथ पकड़ कर न जाने क्या-क्या ... बहुत कुछ कहना शुरू कर दिया। लेकिन यह सब मेरे कानों में जा ही नहीं पा रहा था। सच कहता हूँ, एकदम नहीं जा रहा था। मैं तो दीदी को देख रहा था! अपलक और चुप, देखे ही जा रहा था।

कैसा आश्चर्य है कि इस अद्‌भुत कांड के मध्य से भी वे मुझे बहुत अच्छी लग रही थीं। सोच रहा था कि ये वही 'दीदी' हैं जिनकी बातें विनय सुनाया करता है।

काफी देर हो गयी और मैंने कोई जवाब ही नहीं दिया। चुप आया था, चुप ही बना रहा। मन में से कुछ निकल कर ही नहीं आ रहा था। जो आ रहा था, उसे कहने का अवसर नहीं था।

तब देखा कि अचानक शांति छा गयी है। देर से उमड़-घुमड़ रहे बादल हट गये हैं। कैसे हट गये, इसका आश्चर्य ही है। कहा न कि मेरे मन से कुछ निकलना चाह रहा था। वह मेरे मन से तो निकल नहीं सका, दीदी के मन से निकलने लगा। कैसे निकलने लगा, इसका रहस्य भी वे अंतर्यामी ही जानें। मैं तो नहीं जानता।

सामने चारपाई पड़ी थी। दी दीने कहा – 'बैठ जाओ।'

अब मेरा मुँह भी खुला। सामने खड़े विनय को हाथ से पकड़ा और कहा – 'तू अब यहाँ क्यों खड़ा है? जाकर सो।'

उसने मेरा हाथ झटक दिया और कहा – 'दीदी आपसे फिर कुछ कहेंगी। मैं नहीं जाऊँगा।'

मैंने कहा – 'कुछ नहीं कहेंगी दीदी, तू जा।'

लेकिन वह गया नहीं। लगा, जैसे वह मेरी रक्षा के लिए है।

मैंने दीदी से कहा–आप उसे जाने क्यों नहीं दे रहीं? और लोग भी तो जा रहे हैं।

दीदी बोलीं 'तुम नहीं जानते। वह हम तीन बहिनों से अकेला भाई है। माँ भी नहीं हैं।'

इस बात का जवाब मेरे पास कहाँ से आता। माँ के समान बड़ी दीदी ही ऐसी बात कह सकती थीं। इसलिए चुप रह गया। काफी देर तक चुप ही रहा। फिर बोला – 'मैं सोचता हूँ दीदी, कि आप उसे जाने ही दें। मेरी तरफ देखें और मुझ पर विश्वास हो आये तो मेरे साथ ही जाने दें।'

दीदी कुछ देर मेरी ओर देखती रहीं, फिर रोने लगीं। जिन् आँखों में से अभीतक लपटें उठ रही थीं, वे ही अब जल बरसाने लगीं।

मैंने कहा– 'क्यों रो रही हैं दीदी? मैं कह रहा हूँ, मत रोइये। आप नहीं चाहेंगीं तो विनय नहीं जायेगा।'

चुप होकर उन्होंने कहा– 'नहीं भैया, तुम विनय को ले जाओ, जरूर ले जाओ। भाई के साथ भाई को भेजते हुए बहिन को दुःख क्यों होगा!'

अब जैसे मुझे क्रोध आने की बारी थी। झुँझला कर मैंने कहा— अंत में यही कहना था तो पहले इतना झंझट करने की क्या जरूरत थी! बेकार मेरी नींद खराब की।'

दीदी की आँखों में हँसी की रेखा चमकी। मेरा हाथ पकड़ कर भीतर ले गयीं। बोलीं– 'चलो, तुम्हें शरबत पिलाऊँगी। गरमी भी बहुत है।'

अनुक्रमणिका





खिलाते-पिलाते समय वे बार-बार मुझे देख लेती थीं। पहले ही दिन देखी हुई उनकी उज्ज्वल आँखें अभीतक याद हैं। उसके बाद भी उन्हें अनेक बार देखा है, बहुत समीप से देखा है, लेकिन वे आँखें नहीं भूलतीं। इतना गौरव, इतना तेज कभी कहीं दिखायी नहीं दिया। उनमें एक अद्‌भुत शांति, गहरी उदासी से भरी शांति थी, जो किसी कठिन दुःख की सूचना थी। कष्ट में जब प्रतिभा प्रकट होती है, तब शायद उसका रूप ऐसा ही होता है।

* * *

दूसरे दिन सोकर भी नहीं उठा था कि विनय आगया। बोला–'दीदी बुला रही हैं।'

मैंने कहा–'मैं नहीं जाऊँगा। कल रात की ही परेशानी अभी दूर नहीं हुई है।'

लेकिन बहुत जल्दी-जल्दी तैयार होकर दीदी के पास पहुँच गया।

दीदी ने कहा—'कितनी देर से तुम्हारा लिए नाश्ता लिये बैठी हूँ।'

मैं बोला–'अब आपकी डाट-फटकार का डर नहीं रहा इसलिए आराम से सो रहा था।'

'कैसे नहीं रहा, अब ही तो ज्यादा हो गया है।'

हँसते-हँसते हम लोग खाते-पीते रहे। खा चुके तो देखा कि—खाया हमने था, तृप्ति दीदी को हुई थी। फिर यह कैसी उलटी बात हुई थी।

जब मैं चलने लगा, दीदी ने कहा–'दस बजे खाने के लिए भेजूँगी। देर मत करना। आज से तुम्हें यहीं खाना हुआ करेगा।'

यह बात चौंकने की थी। नाश्ते तक तो ठीक था, रोज-रोज खाने भी लगना क्या सभ्यता की सीमा के बाहर जाना नहीं था? क्या अब हम लोग सभ्य नहीं रह गये थे? शायद नहीं ही रह गये थे, यही कहूँ।

विरोध करने के लिये दृढ़तापूर्वक सर ऊपर उठाया। लेकिन दीदी की आँखों में जो देखा, उससे बचपन में कही माँ की एक बात याद आ गयी। एक बार जब मैं उनके बहुत मनाने पर भी दूध नहीं पी रहा था, उन्होंने कहा था–'किसीके आग्रह को कभी मत टालना बेटा। मेरी यह बात तू सदा याद रखना।'

सोचने लगा, माँ ने यह बात इसी अवसर के लिए तो नहीं कही थी। दीदी की आँखों में कुछ ऐसा था, जिसकी अवज्ञा की ही नहीं जा सकती थी। इसलिए जबान तक आई बात को चुपचाप निगल गया।

* * *

दोपहर को खाते समय, पंखा झलते–झलते, दीदी ने कहा–उस दिन तुम्हारी माँ आयी थीं राम। किसलिए तुमने उन्हें इतना दुःख दिया?

मैं बड़े आडंबर के साथ देश और राष्ट्र की बातें उन्हें समझाने लगा। वे सुनती रहीं और मेरा कहना खत्म हो जाने पर कुछ सोचती रहीं।

फिर बोलीं–'तुम माँ को मेरे बारे में लिख देना। लिखना कि मुझे बहिन मिल गयी है। उनकी चिंता कम हो जायगी।'



ओ, मेरे अभिमन्यु!

—उदयभान मिश्र

कभी नहीं मारा गया अभिमन्यु
न कभी किसी चक्रव्यूहकी रचना हुई!
न तो किसी अर्जुन को व्यामोह हुआ,
न किसी द्रौपदी को
जुवे के पत्ते पर चढ़ाया गया!

यह सब...
किसी संजय का छल था
जो अंधे की आड़ में मुझे अंधा बनाता रहा...
झूठी कथाओं पर मुझे झुठलाता रहा!

ओ मेरे भीतर के...
(अजन्मा अभिमन्यु)
उठो, जाओ, मैदान में जाओ
चक्रव्यूह तो टूट चुका कभी—
(जो मेरे मन में था)
जिसे छोड़ कर तुम बाहर आ रहे हो!

मैंने कहा – ‘ बचपन में माँ कहा करती थीं कि सच्चा प्रेम देश – काल की मर्यादा लाँघ कर खुद ही यात्रा किया करता है। क्या तुम्हारा प्रेम भी उन तक अपने आप ही नहीं पहुँच गया होगा ? ’

दीदी कुछ सोच रही थीं, कुछ कह नहीं रही थीं।

मैंने फिर कहा – ‘ मुझे तो लगता है कि कल रात उन्होंने जरूर कोई अच्छा-सा सपना देखा होगा।’

दीदी ने कुछ नहीं कहा। एक बूँद जरूर टपक कर थाली में आ गिरी।

मैंने कहा – ‘ मैं तुम्हें घर का पता दे दूँगा, तुम ही लिख देना।’

* * *

इस तरह दीदी ने अपने दोनो डैने फैला कर मुझे उनके भीतर भर लिया।

दिन तेजी से बीतने लगे। आगे पढ़ने के लिए बनारस ही आकर मैंने दीदी के सामने अपना स्थायी डेरा ही जमा दिया।

दिन बीतते ही चले जाते, अगर एक दिन मैं उन्हें थोड़ी देर रुकने के लिए न कह देता।

बात यों हुई। रात को सिर में पीड़ा होने लगी। कुछ देर उसे सहने का प्रयत्न किया परंतु जब वह काफी असह्य हो उठी, तो सोचा, क्यों न दीदी के पास जाकर कुछ बाम – वाम ही ढूँढा जाय।

सो, गया। नीचे विनय पढ़ रहा था। उसने बताया, दीदी छत पर होंगी। छत पर जा पहुँचा। नंगे पैर आया था, इसलिए विशेष आवाज नहीं हुई।

जो देखा, उससे चकित रह जाना पड़ा। ऊपर चाँद था, नीचे दीदी थीं, उसे देख रही थीं। वे रो रही थीं। आँसू नेत्रों से अविरल झर रहे थे।

बचपन में एक बार मसूरी का गोमती प्रपात देखा था। दीदी को रोते देख कर आज, पाँच शाखाओं में फूट कर गिरनेवाले उस महाप्रपात की तस्वीर आँखों से आगे खिंच उठी।

रोना क्या होता है, यह कभी नहीं जाना था। माता – पिता ने कभी रोने का अवसर ही नहीं दिया था। याद आता है, बचपन में जब अपनी तरफ से रोना शुरू करता था, कहीं चोट लगने या गिर जाने की वजह से रोना जरूरी हो जाता था, तब माँ कहा करती थीं — ‘ कहीं बहादुर लड़के भी रोया करते हैं। एकदम चुप हो जा। ’

वही बहादुर लड़का आज दीदी को रोते देख कर फूट-फूट पड़ने को होने लगा। माँ की बात याद आयी, लेकिन भीतर से किसी ने रुलाई रोकने की कोशिश ही नहीं की। उसकी दीदी जो रो रही थीं, उसकी अपनी दीदी, जिन्होंने उसे बहुत-बहुत प्यार किया था।

लेकिन दीदी क्यों रो रही थीं ? अठारह–उन्नीस साल के लड़के की छोटी समझ में यह बात आने से इनकार करने लगी। वह, जो सिर

'गाने के बाद तुम एकदम खुश हो जाना दीदी।'— मैंने उनकी तरफ देखते हुए कहा।

दीदी ने मुस्कराते हुए मुझे थपथपाया।

मैं उन्हें मीरा का पद सुनाने लगा :

माई री, मैं तो लीन्हो गोविंद मोल।

* * *

एक दिन दीदी बहुत खुश थीं। कालेज से, जिसमें वे पढ़ाती थीं, उन्होंने संदेशा भेजा कि मैं छुट्टी होते ही सीधा घर चला आऊँ, और कहीं न जाऊँ। घूमने चलेंगे।

मैं पहुँचा तो वे प्रतीक्षा ही कर रही थीं। बहुत उल्लास से मुझे लिया और कहा—'आओ राम, जल्दी से खा-पी लें। फिर चलेंगे। आज खूब खूब घूमेंगे। है न!'

मैंने तत्परता से उनका समर्थन किया और खाने पर जुट गया। दीदी का उल्लास देखकर बहुत भूख लग आयी थी।

रिक्शा लिया और शहर में घुमते फिरे। निरुद्देश्य ही घुमते फिरे, घूमने के लिए ही घूमते फिरे। आज दीदी सचमुच बहुत ही खुश थीं। जाने कहाँ से इतनी खुशी पा गयी थीं, जो उनमें समा ही नहीं रही थी। एक बार मैंने पूछा भी – 'दीदी, बताओ तो आज क्या हो गया है जो इतनी खुश हो।'

उन्होंने रहस्यमयी हँसी के साथ, हाथ रख कर, मेरा मुँह बंद कर दिया। कहा–'बोलो नहीं। जिंदगी में खुशी आती ही कब–कब है! जब आये, चुपचाप उसे ले लेना चाहिए। कुछ कहना–सुनना, सोचना–समझना नहीं चाहिए।'

मैंने सिर हिलाया।

फिर उन्होंने बड़े आवेग के साथ, मेरा हाथ अपने हाथों में दबाते हुए, खुद ही कहा – 'सच मेरे राजा भैया, आज मैं बहुत खुश हूँ।'

जब सारे शहर की परिक्रमा कर चुके, दीदी ने कहा– 'अब गंगा किनारे चलते हैं। घरहरे पर बैठेंगे।'

शाम घिर आयी थी और हम घरहरे पर बैठे थे। समीप में दो देवियाँ थीं। एक नीचे बह रही थी, जाने कब से, युग – युगों से, अविराम बहती ही चली आ रही थी, और दूसरी ऊपर, मेरे सामने बैठी, आज ही अचानक बहने लग गयी थी।

यह बात मैंने दीदी से कही तो उन्होंने मेरी आँखों में गहरे देखते हुए कहा – 'हम दोनों देवियाँ एक साथ ही क्यों न बह जायँ? क्यों राम?'

यह क्या कह दिया दीदी ने! शाम का सब मजा ही बिगाड़ दिया। मैं अचानक बहुत ही गुस्सा हो उठा। जोर से चिल्लाकर बोल उठा – 'हाँ, जाओ, बह जाओ, जरूर बह जाओ न जावो, तो चलो मैं बहा आऊँ।'

मेरी आँखों में पानी आ गया था। मुँह दूसरी ओर फेर लिया था।

दीदी ने बहुत प्यार से, दोनों हाथों से पकड़कर, मेरा मुँह अपनी तरफ किया और कहा-'कहीं दीदी पर इस तरह नाराज होते हैं। तू ही मुझ पर नाराज होने लगा तो फिर मेरा क्या होगा? बता तो।'

लगा, दीदी सचमुच ठीक ही कह रही थीं। नाराज होकर मैंने गलती की थी। मैंने अपराधी आँखों से उनकी ओर देखा और क्षमा पा ली। फिर, वातावरण बदलने के लिए, मैंने कहा– 'अच्छा दीदी, कहो तो तुम्हें एक बढ़िया-सा गाना सुनाऊँ?'

दीदी ने कहा–'आजतक तू ही मुझे अपना गाना सुनाता आया है। क्या कभी मेरा गाना नहीं सुनेगा? और एक दिन तूने ही तो कहा था कि दीदी, मुझे अपने जीवन का गाना सुनाना।'

दीदी का मतलब समझ में आ गया था। लेकिन इस तरह उलटकर आया हुआ प्रस्ताव कुछ अच्छा सा नहीं लगा। इसलिए कहा-'सुनना तो है ही दीदी। लेकिन आज रहने दो तो ही ठीक हो।'

उन्होंने कहा-'आज और कल में क्या कोई फरक है? क्या काळ सभी जगह एक जैसा ही नहीं है? और फिर क्या मैं सदा ही उसके लिए तैयार हो सकूँगी?'

अनिच्छा से ही सही, सुनने को तैयार होना पड़ा।

दीदी कह रही थीं-'राम, आज तुझे ही पहले-पहल अपनी बातें सुना रही हूँ। सुनाऊँ भी तो और किसे? महाभारत में द्रौपदी जब कष्ट में पड़ जाती थी, तो कृष्ण के पास जाया करती थी। वह कृष्ण को 'सखा भैया,' कहती थी। तू भी मेरा वैसा ही सखा भैया हो गया है।'

—मैंने द्रौपदी से अपनी तुलना की है। सचमुच मैं भी उसी जैसी अभागिन हूँ। विवाह होते ही मेरे भी दुर्भाग्य की कहानी शुरू हो गयी। तब मैं सोलह-सत्रह बरस की थी। मैट्रिक पास ही किया था। लड़कियों को जितना ज्यादा से ज्यादा, उस समय में, पढ़ाया जा

सकता था, उतना मैंने पढ़ लिया था। पिताजी को तो तुम जानते ही हो। वकील हैं पर वकालत के लायक नहीं हैं। गुजर-बसर से ज्यादा कभी नहीं कमा पाते हैं। माँ के कारण ही मैं इतना भी पढ़ सकी। वे कहा करती थीं कि स्त्रियों का उद्धार ज्ञान से ही हो सकता है। पुरुषों से अपने अधिकारों के लिए लड़ना-झगड़ना बेकार की बात है। लड़कियाँ ज्ञान के रास्ते में आगे बढ़ती जायँ, सब कुछ अपने आप सुधारता चला जायगा।

—तो, विवाह की समस्या के साथ दहेज की समस्या भी सामने आयी। तुम जानते भी होगे, हम कान्यकुब्जों में दहेज होता भी बहुत है। पिताजी कुछ जोड़ नहीं पाये थे। जोड़ सकते भी नहीं थे। इसलिए मेरा विवाह भी, इच्छानुसार नहीं हो सकता था।... संक्षेप में कहूँ तो यह हुआ कि सत्रह साल की लड़की एक पैंतालीस साल के प्रौढ़ के साथ, जिसका एकमात्र गुण एक अच्छी-सी रियासत का मालिक होना था, बाँध दी गयी। रूप और गुण, और धर्म भी, एकसाथ धन के सामने नतशिर हो गये।

—मैंने कहा न कि मैं द्रौपदी की तरह अभागिन हूँ। कहते बहुत शरम भी लगती है। ससुराल गयी तो पति के चार-पाँच भाई-भतीजे, अच्छी तरह, मेरा स्वागत करने को तैयार बैठे थे। जानते थे कि पति खुद कम लंपट नहीं हैं, रोज शहर से नयी लाया करते हैं। पति को भी इसमें कोई एतराज नहीं था। वे खुद...रहने ही दो इस बात को।

—द्रौपदी तो समाज और शास्त्र की सम्मति से पाँच की पत्नी हुई थी, मुझे बलपूर्वक ऐसा करने के लिए तैयार होना था। कोई और लड़की होती तो, समझदारी दिखाते हुए, परिस्थिति से समझौता कर लेती, लेकिन मैं नहीं कर सकी। इतनी समझदारी कहाँ से लाती। महलों के रीति-रिवाज भी नहीं जानती थी। माँ की अभिजात शिक्षा भी आड़े आयी।

—इस कहानी को ज्यादा नहीं बढ़ाऊंगी। कहा कुछ नहीं क्योंकि कहती भी क्या, करनी से ही बता दिया कि मैं यह सब नहीं सह सकूँगी।

मैंने रोकते हुए पूछा—'यह तुमने कैसे बता दिया ?'

दीदी की आखों में चमक आ गयी। बोलीं—'तू तो बड़ा नासमझ है।...जानना ही चाहता है तो जाकर खुद देख आ। देवर के मुँह के घाव सब कहानी बता देंगे। मैंने शीशे का झाड़ उसके सिर पर फोड़ दिया था। इसी तरह किसी पर कुर्सी उठाकर दे मारी, किसी पर चाय की केतली ही उड़ेल दी। जब जो समझ में आया, वही कर डाला।'

मुझे अपनी दीदी पर बहुत-बहुत गर्व हो आया। मन जैसे फूल उठा। पहले दिन उनकी आँखों में नारीत्व की जो अपार महिमा देखी थी, उसका सूत्र आज मिल गया। मैंने बहुत लाड़ से उन्हें अपनी भुजाओं में लिया और कहा—'दीदी, तुम मेरी कितनी बहादुर दीदी हो। माता-पिता ने ठीक ही तुम्हारा नाम सूरज रखा है। तुममें कितनी गरमी और रोशनी है।'

दीदी ने मेरे कान से मुँह लगाकर कहा—'बहादुर दीदी को बहादुर भाई भी तो मिला है।'



मेरे प्रभो, वे लोग जिनके पास सिवाय तेरे सब कुछ है, उन लोगों पर हँसते हैं जिनके पास तेरे सिवाय कुछ नहीं है।

कथा फिर आगे बढ़ी। दीदी कहने लगीं—इस कांड का अंत उस दिन आया, जब पति के एक मित्र शहर से आये। उस दिन मुझे इतनी घृणा और क्रोध हुआ कि मैंने पति का हंटर ही उठा लिया और उससे घर आये अतिथि का सत्कार कर डाला। महल में कुहराम मच गया। मैं अपने कमरे में पति की प्रतीक्षा कर रही थी, सोच रही थी कि वे क्रोध से उबलते हुए आयेंगे और मुझसे जवाब माँगेंगे। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

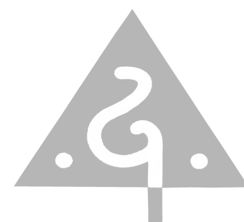
—पति नहीं आये तो मन ने फिर पलटा खाया। सोचने लगी, वह दुराचारी ही नहीं, कायर भी हैं। अपनी पत्नी से भी कड़ी बात नहीं कह सकते। सच कहती हूँ, इस बात से मन में इतनी घृणा हुई कि सारा शरीर ही जल उठा। सोचा, ऐसे पति के साथ रह ही क्यों रही हूँ। क्यों न रोज-रोज के इस कांड का आज ही एकबारगी अंत कर दूँ। उठकर खुद ही पति के पास गयी और बोली—'चाहिए तो यह कि इसी हंटर से तुम्हारी भी खबर लूं लेकिन मुझे तुम्हारे ऊपर इतनी ज्यादा घृणा हो रही है कि उसकी भी इच्छा नहीं होती। आज से इस सारे संबंध को एकदम ही खत्म करके जा रही हूँ। जानती हूँ, वेदी के बंधन मुझे जीवन भर कभी तुमसे मुक्त नहीं होने देंगे, लेकिन अपने बल से जितनी भी मुक्ति संभव है, वह मैं इसी क्षण से लिये ले रही हूँ।'

—और गाड़ी पर बैठकर मैं घर चली आयी, सदा के लिए चली आयी। माँ ने यह देखा तो सिर पीट लिया। उन्हें इस घटना का इतना दुःख हुआ कि वे फिर सालभर भी जी नहीं सकीं। खाट पर जो पड़ीं तो अरथी पर ही उठीं। पिताजी के दुर्बल कंधों पर चार भाई-बहनों का भार छोड़कर वे जाने कहाँ उड़ गयीं।

दीदी की आँखों से आँसू झर रहे थे। थमने ही नहीं थे। कुछ देर वे चुप रहीं, नीचे बहती गंगा की धारा को देखती रहीं। फिर कहने लगीं—'पति से बिछुड़ने का मुझे उतना दुःख नहीं होता, जितना एक दूसरी ही बात का होता है। पति-गृह से छूटकर तो जैसे मैंने बड़े ही संतोष की सांस ली थी।'

कुछ देर के लिए फिर वे चुप हो रहीं। बहुत सीधे, हालांकि चढ़ावदार रास्ते पर चलती हुई उनकी कहानी अब अचानक एक बड़ा टेढ़ा और रहस्यमय मोड़ ले रही थी। पता नहीं, कहाँ ले जाकर छोड़नेवाली थी। मैं उत्सुकता-भरे दुःख से उनकी ओर देखता रहा।







जब रूह जिस्मको छोड देती है तो मुर्दा गोश्त और हाड्डियों में कीडे पड़ जाते हैं; ऐ नादान इन्सान, फानी जिस्म और जवानीकी मस्तियोंपर इस कदर ना जौन हो। यह सिर्फ कीड़ों की खूराक है।

दीदी कहने लगीं – बचपन में मैंने अपूर्व को प्रेम किया था। अपूर्व पढ़ता था और कवि था। बहुत ही सरल और भोला था। अपना कोई भी काम खुद नहीं कर सकता था। सच कहूँ तो इस संसार में रहने के काबिल ही नहीं था। इसी मकान में रहता था, जिसमें तुम रहते हो। पढ़ाई में मेरी सहायता किया करता था कवितायें लिखकर मुझे ही सुनाया करता था। मैं उसके बहुत से काम कर देती थी। कहूँ कि मैं उसके जीवन का आधार ही बन गयी थी। ... लेकिन वह दूसरी जाति का था। इसलिए माँ उसके साथ विवाह नहीं चाहती थीं। मैं भी माँ को बहुत चाहती थी, इसलिए उसकी बात का उल्लंघन नहीं कर सकती थी। फिर अपूर्व ने एक बार भी यह बात अपने मुँह से नहीं कही। कहता तो शायद कोई रास्ता निकालने की सूरत ही जा सकती थी।

—जिस दिन मेरा विवाह हुआ, उसी दिन अपूर्व यह शहर छोड़कर चला गया। बिना कुछ बताये ही चला गया। गाँव में अपने माता-पिता तक को कोई खबर नहीं दी। फिर कभी उसका पता नहीं चला। उस जैसे भोले व्यक्ति ने कहाँ कहाँ कितने कितने दुःख पाये होंगे, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। करना चाहती हूँ तो मन घबड़ा उठता है। जैसे पागलपन सवार हो जाता है।...जब मैं ससुराल से घर लौट आयी तो अचानक एक दिन पता चला कि अब वह इस संसार में नहीं रहा है। कहीं किसी ने उसकी हत्या कर दी थी। कहते हैं, वह बुरे संग में पड़ गया था।

अब दीदी की वाणी बहुत मंद हो आयी थी।—इस तरह न प्रेम को ही पा सकी, न पति ही मिला। ...अपूर्व की बड़ी याद आती है। सोचती हूँ कि उसकी मृत्यु का जिम्मा मेरे ही ऊपर है। इसलिए अब अपना जीवन भी अच्छा नहीं लगता। जैसे भीतर आग लगी हुई है, जो सदा जलती रहती है। उसे बुझाने का अब कोई उपाय भी नहीं है। इस समाज और धर्म में अब मैं नितांतनिरुपाय हूँ।

दीदी का कहना खत्म हो गया था। वे बेहोश हुई जा रही थीं। आँखें सूखी थीं परंतु उनमें अमित दुःख भरा था।

मैंने अपने छोटे और दुर्बल हाथों से उन्हें सँभाला। वे मेरे ऊपर गिर आयीं और फूट उठीं। देरतक फूटती रहीं। मेरा मन भी चुप हो गया था। कुछ सोच ही नहीं पा रहा था। वेदना भी नहीं उठ रही थी। बहुत शांति सी लग रही थी। धीरे-धीरे दीदी को थपथपाता रहा, बहुत देर तक थपथपाता रहा।

* * *

अब अधिक दीदी की कथा का स्मरण नहीं करूंगा। उसका दुःख मेरे अंतःप्रदेश में सागर की तरह गर्जन करता है। वह जन्म से ही उसे साथ बांधकर लायी थीं, अंत तक संजोये रहीं। कोई भी उसके लिए कुछ नहीं कर सका। मैं, उसका सबसे अधिक प्रिय भी नहीं कर सका।

उपर्युक्त घटना के बाद अनेक वर्ष बीते। मैं पढ़-लिखकर कलकत्ता में अच्छी-सी नौकरी पा गया और वहीं का हो रहा। दीदी को साथ रखना चाहा, परंतु वह नहीं आयीं। जानता था कि आग्रह व्यर्थ है, इसलिए नहीं नहीं किया। लेकिन कुंवारा बना रहा क्योंकि सामने दीदी को देखकर शादी को मन नहीं हुआ।

जिंदगी अपनी गति से चली जा रही थी कि एक दिन तार मिला–दीदी मृत्युशय्या पर हैं। पहुंचा तो वे अस्पताल में थीं। किसी से उन्हें गर्भ रह गया था और उन्होंने जहर खा लिया था।

मैं उनके पास गया तो मेरा हाथ पकड़कर रोने लगीं। मैंने कहा–दीदी, यह क्या किया?

वे बोलीं–तू मुझे गलत नहीं समझेगा और किसी एक के ही सामने दुश्चरित्र न होने का विश्वास पा सकूं, इसीलिए जाने से पहले तुझे बुलाया है। राजा, मैंने यह नयी जिंदगी बसाने की कोशिश की थी क्योंकि अब सहारे के बिना नहीं रहा जाता था। उसने वादा भी किया था कि विवाह कर लेगा। लेकिन, मेरा भाग्य ही नहीं था। बता, तू तो मेरी व्यथा को जानता है और मुझे निर्दोष समझता है? नहीं तो मेरे प्राण बहुत कष्ट पायेंगे।

मैंने उनके हाथों को माथे से लगा लिया। क्या कहूँ, यह समझ नहीं आ रहा था। कुछ सूझ ही नहीं रहा था। अचानक बिजली की तेजी से कुछ उतरा और मैं कह उठा– दीदी, तुमने क्यों नहीं कह दिया कि मेरा गर्भ है और कलकत्ता चली आयीं? ... और, हाय दीदी, अब तुम्हें कहां पाऊंगा, कहकर रो उठा।

लगा जैसे उनकी वेदना कम हो गयी है। उन्होंने मेरे आंसू पोंछे, मेरे माथेपर हाथ फेरा और कहा– भैया, तेरे लिए मेरा गर्व बेकार नहीं हुआ। तुने प्रेम की आत्मा को पा लिया है। अब तू शादी जरूर कर लेना। यह मेरा आग्रह है। मेरी तरफ से नयी बहू के गाल को रोज थपथपाना। याद रखना।

इसके बाद वे जरा हंसी, फिर बेहोश हो गयीं और शामतक उनके प्राण पखेरू उड़ गये।

आज उनकी याद आ रही है। अपनी बहू के गाल को थपथपाकर उनकी आज्ञा का पालन करता हूँ। उसे मैं सदा 'नयी बहू' ही कहता हूँ दीदी ने यही तो कहा था। जब वह बूढ़ी हो जायगी, तब भी कहता रहूंगा।

अमरु शतक



स्त्री–पुरुष के प्रेममय जीवन के रमणीय चित्र अमरु ने इतने कौशल से अंकित किये, कि, इन बारह सौ वर्षों में गृहजीवन का रूप भलेही बदल गया है पर इन चित्रों में प्रदर्शित रसरंग आज भी वैसे ही भावरम्य लगते हैं।

—ग. त्र्यं. देशपांडे

अमरुकवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते ॥
—एक अज्ञात भरत टीकाकार

संसार में अपनेको अनुभवी समझनेवाली एक गृहिणी ने नवोढा वधू को प्रेम-रहस्य समझाने के प्रसंग में बताया :—

मुग्धे मुग्धतयैव नेतु मखिलः
कालः किमारभ्यते ?
मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुताम्
दूरे कुरु प्रेयसि। अ. श. ७०

ऐ भोली लडकी, अपने पति के साथ हमेशा तुम अपने भोलेपन का ही व्यवहार क्यों करती हो ? भला, क्या हर वक्त एक ही तरह की व्यावहारिकता रखी जाती है ? कभी-कभी मान धारण करो, कभी-कभी खूब गम्भीर बनकर रहो और अपने इस भोलेपन को कम करो।

मित्र बनकर उपदेश देनेवाली उस गृहिणी की यह बात सुनकर वह नववधू भयभीत हो गयी और प्रार्थनायुक्त शब्दों में बोली– 'बहनजी, जरा धीमी आवाज में यह सब कहिये, कहीं मेरे हृदयवासी प्राणेश्वर ने यह सुन लिया, तो!...' उपदेश बघारनेवाली देवी अपना-सा मुँह लिये वापस चली गयी।

* * *

श्री. ग. त्र्यं. देशपांडे :

आपकी रचना पहली बार हिंदी पाठकों के लिए प्रस्तुत की जा रही है। अत्यंत विचार प्रवर्तक ललित लेखों के लिए आप सुप्रसिद्ध हैं।

द्विभार्याप्रतिबंधक इस युग में ऐसा प्रसंग उठाना ठीक नहीं जँचता, फिर भी ऐतिहासिक कथा होने के कारण इसे सब के सामने रखने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। दो भार्याओं को एक ही साथ खुश करने के लिए एक चतुर नायक का व्यवहार इस काव्यांश में वर्णित है।

दृष्ट्वैकासन संस्थिते प्रियतमे–
पश्चादुपेत्यादरा–
देकस्या नयने पिधाय विहित–
क्रीडानुबन्धच्छलः।
ईषद्वक्रितकन्धरः सपुलकः
प्रेमोल्लसन मानसा–
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकाम्
धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥
अ. श. १९

नायक किसी काम से बाहर गया था, तो उसकी दो पत्नियाँ मध्याह्न काल में स्नान कर अपने बाल सुखाने के लिए एक ही झरोखे पर बैठी हुई कुछ बातें कर रही थीं कि उसी समय नायक आ पहुँचा। अब दोनों को एक ही साथ प्रसन्न करना था; बस इस छली नायक ने इन्हें हँसी–मजाक की बातों में फँसा रखा और फिर इसी क्रीड़ा–छल से एक की आँखें मूँद दीं और दूसरी के गाल चूम लिये। दोनोंने अलग-अलग यही समझा कि ये इस से अधिक मुझे ही प्यार करते हैं! सच कहिये तो, ऐसा व्यवहार कोई 'धूर्त' या दक्षिण नायक ही कर सकता है!

* *

दम्पत्योर्निशिजल्पतोर्गृहशुके
नाकर्णितं यद्वचः
तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतः
तस्यातिमात्रं वधूः।
कर्णालम्बित पद्मरागशकलम्
विन्यस्य चञ्चूपुटे
व्रीडार्ता विदधाति दाडिमफल
व्याजेन वाग्बन्धनम् ॥ अ. श. १६

— शय्यागृह में रात को पति-पत्नी ने जो प्रेमालप किया था, घरेलू तोता वही सब ऊँचे स्वर से प्रातःकल में दुहराने लगा। उस स्त्री के सास-ससुर और जेठ-जेठानी सभी गुरुजन रोज की तरह तोते से कहते–' मिट्ठू राम-राम, सीता-राम बोल '। मगर वह लुच्चा तोता तो अपनी धुन में वही प्रेमालाप अलाप रहा था। लज्जावश उस कुलवधूने अपनी आँखें मूँद लीं। पर उसी वक्त उसे एक चालाकी सूझी और उसने अपना मणि-माणिक्य-निर्मित कर्णफूल निकालकर उस तोते के मुँह में डाल दिया कि इसे अनार के दाने समझ वह खाना शुरू करे जिससे उसकी जबान बंद हो जाय। बंद करने का यह अलौकिक उपाय भला सूझता भी किसे ?

* * *

भावाभिव्यंजन एवं संघटन-चातुर्य के ऊपरिलिखित पद्य अमरुशतक से उद्धृत हैं। अमरुशतक शृंगारप्रधान संस्कृत मुक्तकों (स्फुट कविताओं) का एक संग्रह है, जो अमरु अथवा अमरुक नामक कवि द्वारा रचित माना जाता है। इस अमरुशतक में

एक पल
डूबता — होता विलय—
उस जडित ठहराव में
किन्तु मैं,
लांघती चुपचाप सबको बढ़ बहुत आगे
मुड़ा बायें।

जकड़ी हुई-सी मौन अठराहें
चार सड़कें कट परस्पर आठ बनती हैं जहां
जिन्दगी के केन्द्र में,
दिग्भ्रमित करतीं विचारों को,
ठहराव भर देतीं,
बांधती गति को
न हो दिशादृष्टि यदि व्यक्तित्व में !

तुम उफनती, वेगशीला बाढ़ में
बहती नदी – सी
आ गयी मैदान में
क्षितिज तक फैले हुए समतल !

पर्वतों की बांह पकड़े,
बगल में सटकर फिसलना
ज्ञात था।
कंदराओं की गली में खिलखिलाना,
घूमना भर
याद था।

किन्तु मैदानी बड़े फैलाव में
छोर पकड़े लक्ष का बढ़ना नहीं सीखा।
अस्तु प्रिय,
सहज है तालाब बन जाना तुम्हारा,

कुंठिता बन वेग खो देना,
सम्भावनाओं को निजी सीमा-कगारों में
पानी सरीखा बांधकर हर ओर से
सहज है देना सड़ा।

बांह में फंसकर नदी की
सहज में तालाब बन जाता किसी दिन घाव-सा,
वक्ष पर फैला हुआ जो भूमि के।
किन्तु यह होना नहीं था समय मेरे
स्वत्व का आवेग खो
तालाब बन जाना नहीं था हाय मेरे।

कशमकश का वह भंवर लांघा,
तुम जहां तालाब बन कर खो गयीं
अगति का घेरा बनाकर सो गयीं
मैं तनिक आगे बढ़ा, बायें मुड़ा।

ऐसी आख्यायिका दी है, कि दिग्विजय करते-हुए आचार्य कश्मीर देश में गये थे, वहाँ की सभा में पंडितोंने आचार्य से श्रृंगार रस का वर्णन करने के लिए कहा। उसी समय आचार्य ने परकाया-प्रवेश विद्या से अमरुनामक राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया और एक रात हजार स्त्रियों से केलि-क्रीडा की तथा दूसरे दिन इस काव्य की रचना कर दी। यह सुनने पर पंडित लोग अवश्य यह प्रचार करने लगेंगे कि अपने को आजन्म ब्रह्मचारी कहने-वाला यह संन्यासी कपटी है, और इसी कलंक के बचने के निमित्त आचार्य ने इन काव्यों को शांत रस में अभिप्रेत वर्णित किया। रामचंद्र के इस कथन का कोई पुष्ट आधार नहीं। उन्होंने स्वयं 'इति किंवदन्ति' – यह किम्वदन्ती है ऐसा कहा है। इसके अतिरिक्त रविचंद्र की दी हुई यह किंवदन्ति शंकर दिग्विजय में वर्णित कथा से विसंगत मालूम होती है। दूसरी बात यह भी है कि रविचंद्र के सिवा और किसी आलोचक ने अमरुशतक में इस तरह शांत रस खोजने का प्रयत्न नहीं किया है। आनन्दवर्धन जैसे रसिकाग्रणी तथा अभिनवगुप्त जैसे साक्षेपी साहित्य-मीमांसक ने भी इस काव्य में श्रृंगार रस ही दिखाया हैं, शांत रस नहीं। इस के अलावा अमरु के कितने पद्य गाथासप्तशती की गाथाओं से मिलते-जुलते हैं। तब अमरुशतक में शांत रस ढूँढ निकालने के पहले गाथासप्तशती में ही शांत रस ढूँढ निकालना पड़ेगा और तब यह "रहसि प्रौढ वधूनां रति समये वेदपाठ" यानी एकांत में प्रौढ़ वधुओं की रतिक्रीडा के समय वेद-पाठ करना जैसी ही बात होगी। अमरु के पद्यों में विपयश्रृंगार है। इन्हें देखकर लगता है कि श्रृंगार की अभिव्यक्ति करने में शब्द-योजना, अर्थ-व्यक्ति, मधुरं और प्रसन्न संघटनौचित्य, अलंकार का उचित विन्यास तथा विभावादि रस-सामग्री का सम्यक् योग-ये सब गुण कवि में वर्तमान होने चाहिये और अमरु में ये सभी गुण विशिष्टतया लक्षित होते हैं। दूसरे कवियों को किसी प्रसंग को उठाने से श्लोक पर श्लोक रचने पड़ते हैं, परन्तु अमरु उसे चार पंक्तियों में ही बड़ी खूबी के साथ कह डालते हैं। यह अमरु के पद्य का आकार तो मुक्तक का ही है पर उसका आशय प्रबंध जैसा विराट है। अमरु के इस वैशिष्ट्य क निर्देश सभी साहित्य-कारों ने मुक्त कंठ से किया है। इस लेख के आरंभ में अज्ञात भरत आलोचक के वचन का भी यही आशय है।

अमरु के पद्यों में श्रृंगार रस का आस्वाद लेने के पहले श्रृंगार का रूप हमें समझ लेना चाहिये। श्रृंगार का स्थायी भाव 'रति' है। रति अर्थात् प्रेमरूप विशेष चित्तवृत्ति। निश्चय ही इसमें स्त्री-पुरुष विषयक प्रेम ही अभिप्रेत है। पंडितराज जगन्नाथ ने रतिभाव को स्पष्ट समझाने में कहा है – "स्त्रीपुंसोः अन्योन्यालम्बनः प्रेमाख्यः चित्तवृत्तिविशेषः रति स्थायिभावः।" कामसूत्र में रति और 'प्रीति' पारस्परिक पर्याय कहा गया है। इस रतिका स्वरूप हेमचंद्र ने 'आस्थाबन्ध' कहा है। आस्था का अर्थ है आत्मीयता किंवा अनन्यता। प्रेमरूपी चित्तवृत्ति का यही आलंबन है अनन्यता का अर्थ है अन्याश्रय का त्याग। आलंबन के विषय में कहा जाता है कि प्रेमिका की प्रेमी के सिवा अन्यत्र कहीं निष्ठा नहीं होती। प्रेमिका मनसा, वचना और कर्मणा अपनी पूरी निष्ठा अपने प्रेम के आलंबन 'प्रेमी' को ही समर्पित कर देती है। किसी भी कारण से आलंबन या चित्त को इसके वियोग की जान-कारी हुई तो इससे व्याकुलता का निर्माण हो जाता है। स्त्री-पुरुष के इस तरह के परस्पराश्रित अनन्यता-वृत्ति को ही आस्था-बंध कहा जाता है। प्रेमबंधन में दोनों किसी एक का निरपेक्ष अस्तित्व नहीं होता। वैसे ही एक दूसरे के सुख का साधन है—यही भावना रहती है। अतः प्रेम का विषय साधनरूप नहीं, वह फलरूप है।

हेम[illegible]कथनानुसार 'रति' परस्पर 'विभाविका' होकर भी [illegible] होती है। प्रेम की इस एकरूपता का आविष्कार करते हुए अमरु का कथन है :—

आ[illegible]भसात् विलीन[illegible] इवा–
कान्त[illegible]नङ्गेन या
यस्याः कृत्रिमचण्डवस्[illegible]रणा—
कृतेषु खिन्[illegible]नः ।

कोऽयं काहमिति प्रवृत्तसु[illegible]
जानाति या नान्तरम्
रन्तुः सा रमणी स एव रमणः
शेषौ तु जायापती ॥ अ.श.१४२

—पारस्परिक आवेगवशात् जब दोनों अलिंगन-बद्ध हो एकरूप हो जाते हैं, काम-पीडित होने से कृत्रिमता और उग्रता दोनों दूर हो जाती हैं, तथा परस्पर सहयोग के समय 'यह कौन और मैं कौन' यह भेद-भावना समाप्त हो जाती है उसी समय वे रमण और रमणी की संज्ञा के बोधक होते हैं, बाकी तो पति-पत्नी हैं ही।

पूर्वोक्त पद्यमें प्रेमबंध की सभी विशेषताएँ बतायी गयी हैं। 'बिलीन वृत्ति' के बीच 'तदर्पितारिवला चारुता हैं। 'कोऽहम् काहम्' इस विस्मरण-वृत्ति में 'द्वयोरपि एकरूपता' है। इसी कारण से प्रेम 'प्रीति' अथवा 'रति' है। इस रतिवृत्ति में विघ्नभूत होकर देखने की वृत्ति को ही 'कृत्रिमचण्ड वस्तुकरणा कृतेषु खिन्नं मनः' इस पंक्ति में निर्दिष्ट किया गया है। कृत्रिमता और चण्डता ये प्रेमवृत्ति में नहीं चलतीं। कृत्रिमता से जुगुप्सा का निर्माण होता है। प्रीति दोनों हृदयों को आकर्षित कर उनमें एकता लाती है और जुगुप्सा एक होकर दिखनेवाले हृदयों को दूर करता है। कृत्रिमता ही जगुप्सा का मूल कारण होता है। चण्डता उग्रता का द्योतक है। प्रेमवृत्ति में उग्रता नहीं चलती। दोनों प्रेमी हृदयों के एक होते ही यह वृत्ति उनमें मिलने का आवेग ला देती है। इसी आवेग की वृत्ति तो 'रभसता' या केलि-क्रीडा कहा जाता है। रभसता के विपरीत जो वृत्ति होगी उसे आलस्य कह सकते हैं। इसीसे प्रेमवृत्ति में आलस्य नहीं चलता। रति के आविष्कार में अभिलाष हास्य, लज्जा तो कारण हैं ही पर [illegible] कोप, [illegible] दैन्य [illegible] इत्यादि भाव भी [illegible]में गिने जा सकते हैं–इन कारणों से रति के आ[illegible]कार में विचित्रता ही होगी; लेकिन जुगुप्सा, आ[illegible]स्य और उग्रता ये किसी तरह कारण नहीं हो सकते–इनसे तो रतिभाव ही नष्ट हो जायेगा।

रति के परस्परिक आलंबन स्त्री-पुरुष हैं। शृंगार के आविष्कार की दृष्टि से यह रति-भावना स्त्री-पुरुष में विशिष्टता की अपेक्षा करती है। उनमें तारुण्य तो होगा ही पर इसके अलावा 'समग्र-विषयग्रामसमग्रता', 'स्थिर अनुराग' और 'कामिता' ये भी आवश्यक हैं। इनमें अगर अपूर्णता रही तो रतिका आविष्कार नहीं हो सकता। रतिभाव के लिए आवश्यक अनन्याश्रयता को अपूर्णता की जानकारी बाधक होती है। पूर्णता की जानकारी ही वस्तुतः सापेक्ष मनःस्थिति का बाधक है। यह केवल बाह्य वैभव के न्यूनाधिक्य पर अवलम्बित नहीं है। "न खलु बहिरुपाधीन प्रीतयः संश्रयन्ते" का अर्थ ही है कि बाहरी वैभव में दिखनेवाले दाम्पत्य में

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका


धुम्रपानकी अधिक लहज़त
जसवंत छाप
टेलीफोन
बीड़ी
परभुदास किसोरदास • अहमदाबाद •
IPB

अनुक्रमणिका


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



रति का उदय नहीं दिखकर झोपड़ी अथवा वन में दिखायी पड़ेगा। कामिता ही 'रति' के उदय का प्रारम्भ है। कामिता के रत्युदय का पर्यवसान होने में किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं होना ही पूर्णता का स्वरूप है।

त्रिवर्ग के योग्य साधन नहीं हुए तो रत्युदय अनुचित सावित होता है। "धर्मदार्थतः कामः कामात् सुखफलोदयाः साधीयान्" यह बात कामशास्त्रानुसार शृंगारतिलक में बतायी गयी है। तत्र "तेषां समवाये पूर्वो पूर्वो गरीयान्' यह वात्स्यायन मुनि का कथन है। धर्म, अर्थ तथा काम का समवाय होने पर भी धर्म अर्थ की अपेक्षा और अर्थ काम की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है।

धर्मानुसार जो रति इष्ट नहीं वह शृंगार में परिणत नहीं होती, वह तो स्वैराचार है। शृंगार के इस धर्ममूलक औचित्य को ही साहित्य-मीमांसकों ने अत्यधिक महत्व दिया है और इसी दृष्टि से ही साहित्यशास्त्र में उन्होंके नायिका-भेद का वर्णन किया है। "नायिका स्वकीया परकीया सामान्या इति त्रेधा। स्वमूढा शीलादिमती स्वीया। परेणोढा परस्य स्त्री परस्त्री। साच नाङ्गिनि रसे उपकरिणी। अवरुद्धापि परस्त्री इत्युच्यते। कन्यातु पित्राद्यायत्त्वात् अनूढाऽपि परस्त्री इत्युच्यते। गणिका सामान्या। केवलं धन लाभालंबनेन कृत्रिम प्रेमत्वात्॥" यह हेमचंद्र की उक्ति है। नायक का जिससे विवाह हुआ हो और जो शीलवती हो, साथ ही ऋजुता और गृहाचारनिपुणता जिसमें हो वही स्त्री नायक के रतिभाव का आलंबन हो सकती है। परस्त्री का अर्थ है दूसरे की पत्नी अथवा नायक के अवरुद्ध रहनेवाली स्त्री। परस्त्री का दूसरा प्रकार कन्या भी है। कारण कि, वह कन्याभाव से पिता के स्वाधीन किसी दूसरे की होनेवाली पत्नी अतः परस्त्री ही है। उसके लिए अभिलाष सम्भव है। अभिलाष रतिभाव का पोषक होगा, पर वह स्वयं रति-स्वरूप नहीं है। वह कामितारूप है और विवाहपूर्व विप्रलम्भ का हेतु हो सकती है। गणिका साधारण... उसका आलंबन नायक नहीं ... धन ही होता है। उसका प्रेम ...म है। धन-निरपेक्षता से नायक से ...होनेवाली गणिका ही केवल रति का ...लंबन हो सकती है; कारण, उसको कन्या की ही भाँति वधू होने की शक्यता होती है। मृच्छकटिक में वसंतसेना इसका उदाहरण है।

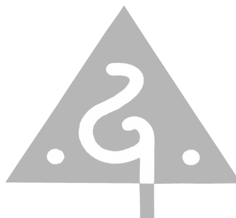
सारांश यह कि नायक से विवाहबद्ध हुई शीलवती, निष्कपट, गृहाचारनिपुण स्त्री और नायक की दृष्टि से जिसे वधूत्व प्राप्त हो सकता है (अर्थात् नायक से विवाहबद्ध होने में जिसके लिए प्रत्यवाय न हो) ऐसी कन्या – ये दोनों नायक और नायिका रतिभाव के आलंबन हो सकते हैं। इनके आलंबन पर शृंगार का आविष्कार हो सकता है। दूसरी तरह की स्त्रियों के सम्बंध में तथाकथित शृंगार केवल शृंगाराभास होता है।

अमरु की विशेषता यही है कि उन्होंने शृंगार की इसी मर्यादा का पालन कटाक्ष-



अनुक्रमणिका





से किया है, अमरु के शृंगार-द्योतक पद्यों में सभी नायिकाएँ चित्रित है, शीलयुक्त, निष्कपट और ग्रहाचार-देश हैं। एक ही पद्य में नायिका कन्या है। इस पद्य में अमरुने उसका प्रथमानुराग अभिव्यक्त किया है: —

अलसवलितैः प्रेमार्द्रार्द्रैः मुहुर्मुकुली कृतैः
क्षणमभिमुखैर्लज्जालोलैर्निमेष पराङ्मुखैः।
हृदयनिहितं भावाकूतं वमद्भिरिवेक्षणैः
कथयसुकृतीकोऽयमुग्धेत्वयाद्यविलोक्यते॥
— अ. श. ४

युवावस्था में पदार्पण करती हुई एक मुग्धा बाला किसी की ओर बार-बार देखती थी और आँखें सखी की ओर फेर लेती थी; सखी ने इस को समझ लिया। जब वहाँ दूसरा कोई नहीं था तो उसने पूछा– "अरी, वह कौन भाग्यशाली है जिसकी ओर तू बड़ी कोमल दृष्टि से बार-बार देख रही थी और तनिक-सा कटाक्ष उधर से पाने पर तुम्हारे मुखड़े पर लालिमा छा जाती थी और तुम्हारी आँखें प्रेमार्द्र हो जाती थीं? पर वह भी क्षणभर के लिए ही। लगता है, उस भाग्यवान् प्रियतम को देख-देख आज तक सँजोकर रखी हुई अभिलाषा (भावाकूत) तुम्हारी आँखों से बाहर हो रही है।

अमरु का यह एक ही श्लोक उसकी विशिष्टता दिखाता है जिसमें नायिका मुग्धावस्था में है और जिसमें प्रेम की स्पष्ट कल्पना नहीं। वयःसंधि की अवस्था में कुमारी के हृदय में उदित होनेवाले, पर लज्जावश प्रकट न होनेवाले मधुर भाव उसके हृदय में कूटकूट कर भरे हुए हैं। आज उसके हृदय में जरा-सा धक्का लगते ही वे मधुर भाव आँखों से बाहर निकल रहे हैं। 'वमद्भिः' इस एक ही शब्द से यही स्थिति अभिव्यक्त हुई है। 'भावाकूत' शब्द में यह अभिप्राय है मनोराज्य का संकल्प-विशेष अथवा मनोरथ। इस मनोरथ से उसका हृदय व्याप्त है। लेकिन यह मनोराज्य का केवल ओकाशचित्र नहीं है। वह भावरूप है। [illegible] अवस्था में शांत रहनेवाले [illegible] के यौवनो-[illegible] वशीभूत होनेवाले परिणाम [illegible]कृत हैं। यौवनागम के साथ ही उस मुग्धा की मनोभूमि में स्वभावतः जो बीज अंकुरित होने लगे थे उनके अंकुर प्रकट होने के पूर्व ही भूमि पर होनेवाली उच्छूनावस्था को ही भाव कहा गया है। इस भावरूप संकल्प-विशेष के प्रथम प्रकटीकरण आरम्भ में दृष्टि से ही होते हैं — अमरु ने इसे प्रत्यक्ष खड़ा किया है। यह दृष्टि स्त्रियों में स्वाभाविक अलंकार है। भाव, हाव और हेला यौवन में प्रविष्ट होती हुई मुग्धा के स्वाभाविक (अयत्नजाः) अलंकार हैं। भाव नजरों से प्रकट होते हैं। उसके प्रकटीकरण को 'हाव' कहा जाता है। हाव भावोद्रेक के कारण दृष्टि का स्वाभाविक विलास है। उसमें शृंगार अंकुरित होता है, पर स्पष्ट दिखता नहीं। वही जब शारीरिक हालचाल से प्रकट होने लगता है तब उस अवस्था को 'हेला' कहते हैं। इस पद्य में 'हाव' नामक नाट्यालंकार हैं। दृष्टि का यह विलास अमरुने जैसे अपने एक ही शब्द में लिख दिया हैं– ऐसा प्रतीत होता है। इस कटाक्ष में मंथरता (अलसवलितैः) हैं, यौवन की मध्यावस्था में आनेवाली कटाक्षों की तीव्रता उसमें नहीं है; दृष्टि में प्रीति की स्निग्धता है (प्रेमार्द्रैः) परन्तु अभी वह प्रवाहित नही हुई है; दर्शनसुख से दृष्टि अर्द्धोन्मीलित (मुकुलित) होती है लेकिन उसके साथ ही तृष्णा बढ़ती है इसीलिए वह नायकाभिमुख होती है, पर लज्जा से तुरन्त मुँह घुमा लेती है। लेकिन वह भी क्षणभर के लिए ही। इसी प्रकार वह बाला अपनी आँखें इसलिए सखी की ओर फेर लेती है कि उसे उसके मन का रहस्य कभी प्रकट न हो जाये। इसी को 'नर्मस्फोट' कहा जाता है। ऐसी दृष्टि को भरतने 'रतिदृष्टि' कहा है। और, दृष्टि की इस विविधता की कल्पना भी पद्य में आये इसलिए 'ईक्षणैः' (दृष्टियोंसे) ऐसा बहुवचन प्रयोग अमरु ने किया है। इस श्लोक की सरसता को बताते हुए अंततः अर्जुन वर्मदेव ने कहा है– "ऐसी दृष्टि का सौंदर्य अनुभव से ही प्रतीत होता है–शब्दों से उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती।"

वस्तुतः अमरु का प्रत्येक श्लोक इसी तरह का है। उसका प्रत्येक भाव केवल अनुभवगम्य है। 'प्रतीयमानता' अमरुके मुक्तक का प्राण ही है–इस लेख के प्रारंभ के में दिये गये भावसंसूचक पद्य को देखिये। उस में नववधू की 'भावप्रगल्भता' ठीक-ठीक वाच्य नहीं ही है। नवोढा के भावोद्रेक में मान, अमर्ष और कोप का बिल्कुल स्थान ही नहीं हैं। मुग्धावस्था की ऋजुता में कोप स्वभावतः आता ही नहीं, अगर आया भी तो वह टिकता नहीं।

अनुक्रमणिका

दम्पत्योः क्षनकैरपाङ्गवलनात्
मिश्रीभवच्चक्षुषोः
भग्नो मानकलिः सहासरभस –
व्यावृत्त कण्ठग्रहम् ॥ अ. श. २३.

—किसी विषय पर उत्तर–प्रत्युत्तर हो जाने से पति-पत्नी दोनों एक दूसरे से नाराज हैं और दोनों एक ही आसन पर एक दूसरे की ओर पीठ किये चुपचाप पड़े हैं। दोनों में कोई एक दूसरे का अनुनय करे ऐसा विचार दोनों के मनमें बार-बार आता है, पर 'मैं ही पहले क्यों बोलूँ' यह झूठा अभिमान दोनों को परे शान किये हुए है। धीरे–धीरे दोनों की दृष्टि एक दूसरे की ओर पड़ने लगी। दोनों अपने को 'निश्चिंत' ही दिखाने में प्रयत्नशील थे फिर भी दोनों एक दूसरे को बार-बार देखते जरूर। ऐसा होते-होते दोनों की आँखें एक दूसरे से मिल जातीं। इस तरह धीरे-धीरे दोनों का मान-कलह भग्न हो गया और दोनों ने ही एक दूसरे को दृढ़ आलिंगन में बाँध लिया।

यहाँ विप्रलंभ और संभोग दोनों ही शृंगार रसों का सुन्दर मिलान हो गया है। प्रणय-कोप के कारण यहाँ विप्रलंभ का निर्माण हो गया है पर इसी अवस्था में दोनों का 'रति-भाव' कायम था। कारण, अनुनय करने का विचार दोनों के मन में आता था पर 'मैं जीतूँ ये हारें' का मधुर भाव उन्हें मिलने नहीं देता। फिर भी आँखों के मिलते ही वह अभिमान टूट गया और उनका मन मिल गया। दृष्टि-मिलन से प्रकट होनेवाला हास्य मनोमिलन का द्योतक है। और इसके बाद होनेवाला आलिंगन मनोमिलन का शारीरिक अनुभव है। अतः इसका अर्थ यह निकलता है कि मन का मिलाप न होनेपर चुम्बनालिंगन भी निरर्थक है।

किसी दूसरे प्रसंग में अमरु का नायक अपना अनुभव प्रकट करते हुए कहता है– 'मैंने उसके वस्त्र का स्पर्श किया, उसने जरा भी गुस्से का भाव नही दिखलाया, मैंने उसका चुम्बन किया उस वक्त भी उसने इसका विरोध नहीं किया; फिर मैंने उसको आलिंगन में लेना चाहा तो उसने अपना शरीर तनिक भी नहीं खिसकाया, उलटे मेरी बाहों में अपने को ढकेल दिया। वस्तुतः अपना क्रोध प्रकट करने के लिए यही विपरीत उपाय उसने शोध निकाला था।' यहाँ शारीरिक भोगदृष्टि से चुम्बना-लिंगनादि हुए, तो भी ये शृंगार का संभोगांश नहीं' क्योंकि यहाँ मन की संयुक्त अवस्था ही नहीं हैं, कोपवश उसका मन की वियुक्त हो गया है– यही नायक ने अनुभव किया। सारांश यह कि शृंगार में संभोग और विप्रसंग मे दोनों अंश मानसिक अवस्था से सम्बद्ध हैं। रतिभाव शरीर की सहावस्था से सम्बद्ध नहीं हैं। यह तो बिल्कुल मन की संयुक्तावस्था पर निर्भर करता है। मन की संयुक्तावस्था में अनुभव प्राप्त अनिवार्य सुख ही रतिभाव का बीज है। ऐसे सुख से ही मुनिवर वात्स्यायन ने—"आभिमानिक संप्रत्यय" की संज्ञा दी है, अर्थतः उनके अनुसार काम आभिमानिक संप्रत्यय में निहित है।

यही कारण है कि, अभिलाष, मान और प्रवास ये सभी विप्रलंभ के हेतु होते हैं। इससे कुमारी के संबंध में 'अभिलाष-विप्रलंभ' ही संभव है; मान और प्रवास के कारण होनेवाला विप्रलंभ नहीं। पति-पत्नी के बीच ही सर्वत्र वास्तविक विप्रलंभ संभव होता है। मान में प्रणय-कोप और ईर्ष्या-कोप दोनों ही होते हैं। इनके उदाहरण दिये जा चुके हैं अभिलाष-विप्रलंभ अनुनय से खत्म हो जाता है, इस से यह अल्पकालिक ही होता है। हाँ, केवल प्रवास-विप्रलंभ वैसा नहीं होता। प्रवास-विप्रलंभ में पति-पत्नी दोनों के रतिभाव और उनकी कर्तव्यबुद्धि इन दोनों की परीक्षा होती है; ये दोनों इस कसौटी से उतर गये तो उनके पुनर्मिलन से उनके संपूर्ण जीवन में नवीनता आविष्कृत हो जाती है—नयापन आ जाता है।

अमरु जिस काल में हुए थे उस समय प्रवाह की कल्पना इस वक्त के प्रवास से नहीं की जा सकती। आज के प्रवास में विरह की तीव्रता पहले जैसी नहीं होती। पति-पत्नी आज कितनी भी दूर रहें, तो निदान पत्रों द्वारा भेट-मुलाकात हो ही जाती है; टेलीफोन की व्यवस्था से परस्पर बातचीत भी हो सकती है। पुराने जमाने में ऐसा कोई साधन नहीं था। पति एक बार प्रवास में गये, तो फिर लौटकर आने पर ही दोनों मिल पाते थे, इस से प्रवास का प्रसंग दम्पति के जी-जान का प्रसंग होता था। "कं सौख्यं ननु चाप्रवासगमनम् — कौन-सा सुख है इसमें? प्रवास का प्रसंग मत आवे।" भर्तृहरिने इसीलिए यह कहा है।

ऐसा भी प्रवास यस देना नहीं करना शक्य नहीं है। संसार सुख का है जरूर, लेकिन पैसे के बिना वह नहीं चलनेका। पैसा कमाने के लिए दूर देश जाना ही पड़ता है और वह भी तरुणों को ही। वात्स्यायन-कथित 'अर्थ और काम' का भाव समवाय-प्रसंग उसी समय समझना पड़ता है। जो कर्तव्यहीन होता है वह ऐसे समय में अर्थ-पराङ्मुख हो जाता है। पर जो कर्तव्यपरायण पति-पत्नी हैं वे ऐसे समय प्रेम और धीरता से एक-दूसरे को समझाते-बुझाते हैं। ऐसे विरह में उनकी प्रीति की ही परीक्षा होती है।

अमरु ने प्रवास-विप्रलंभ के अत्यंत भाव-पूर्ण चित्र अंकित किये हैं। पतिने पत्नी को अपने प्रवास की बात कही। पत्नी अभी मुग्धा





नहीं थी, तारुण्य के प्रगल्भ अवस्था में ही थी। जो कुछ भी कारण हो, लेकिन प्रवास रोकना उसको योग्य नहीं मालूम हुआ अतः उसने कहा

गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो
गन्तासि केयं त्वरा
द्वित्राण्येव दिनानि तिष्ठतु भवान्
पश्यामि यावन्मुखम्
संसारे घटिकाप्रणाल विकलद्-
वारा समे जीविते
को जानाति पुनस्त्वया सह मम
स्याद्वा न वा सङ्गमः

—जाने का निश्चय है तो आप जायेंगे ही लेकिन अभी क्या जल्दी पड़ी है? अभी दो-तीन दिन यहीं रहें कि तबतक मैं आपकी मूर्ति अपनी आँखों में संजो कर रख लूँ। संसार में तो हमारा आना-जाना पानी के बहाव जैसा ही तो है। कौन जाने आप आयेंगे तब तक मैं जीवित रहूँगी या नहीं! और हमारा संगम हो सकेगा या नहीं!

मन की ऐसी अवस्था में उसने तीन दिनों का ही आग्रह-विनय किया। पति भी उत्तर में ही सांत्वना देते हुये विश्वासपूर्वक कहता है :—

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरी पुनः
चिन्ता त्वया मत्कृते
नो कार्या कृशासि ...?

—प्रवास में जानेवाले फिर वापस नहीं आते—ऐसा कहीं होता है? मेरी तनिक भी चिंता न करो, रानी! मेरे जाने के पहले ही तू कितनी कृश हो गयी...?

भरी हुई आँखों से एक भी अश्रु न गिरे (निपत्पीताश्रुना) ऐसी ही स्थिति में उसने पति को सप्रेम विदाई दी। वह भी अपनी राह में चलने लगा। जबतक वह दिखाई देता, तबतक उसकी दृष्टि उसके साथ गयी, फिर वह लौट आयी। ... कितने दिन बीते बिना किसी रोग के वह कृश होने लगी। पड़ोस की एक सखी को उसे देख चिंता होने लगी। उसकी यह अवस्था देख कर उस पड़ोसिन की आँखें भर आतीं। पर स्वयं वह विरहिणी ही उस पड़ोसिन से कहती है :—

यास्यामीति समुद्यतस्य गदितम्
विस्रब्धमाकर्णितम्
गच्छन् दूरमुपस्थितो मुहुरसौ
व्यावृत्य तिष्ठन्नपि।
तच्छून्ये पुनरस्थितास्मि भवने
प्राणास्त एते दृढा
सख्यस्तिष्ठत जीवितव्यसनिनी
दम्भादहं रोदिमि॥
अ. श. ८९

—तुमने तो देखा ही कि जब उनके विदेश जाने की बात पक्की हो गयी और उन्होंने मुझसे कहा 'कि मैं अमुक दिन प्रवास करने वाला हूँ,' तो मैं स्तब्ध होकर वह बात सुन ली। जाते हुए भी वे मुड़-मुड़ कर मुझे देख रहे थे, तो भी मैंने उनकी ओर नहीं ताका और न लौटने का इशारा किया। इस तरह मैंने उनकी उपेक्षा ही की। उनके जाने के बाद भी मैं इस सूने घर में आराम से रह रही हूँ। तुम यह सब नहीं देखती? सखी, धीरज रखो मेरे, प्राण बड़े कठोर हैं। वे जीने की अभिलाषा रखते हैं। मैं रोती हूँ जरूर, पर वह तो मेरा दंभ है या यों कहो कि मैं दिखावे के लिए ही रोती हूँ!

और उधर दूर देश में पति की भी क्या अवस्था थी? अमरु के शब्दों में यह भी सुन लीजिये:—

देशैरन्तरिता शतैश्च सरिता-
मुर्वीभृतां काननैः
यत्नेनापि न याति लोचनपथम्
कान्तेति जानन्नपि।
उद्ग्रीवश्चरणावरुद्धवसुधः
प्रोन्मृज्य सास्रे दृशौ
तामाशां पथिकस्तथापि किमपि—
ध्यायन् पुनर्वीक्षते॥
अ. श. ९९

— मेरे ओर प्रिया के बीच कितने देश हैं, सैकड़ों नदियाँ ओर पर्वतों के बीच जंगल बिखरे हुए हैं, ये सब उसे दिख रहे हैं। कितना भी प्रयत्न किया कि प्रिया नयनों से किसी तरह दूर हो जाये पर उसके लिए यह सम्भव नहीं हो सका, उस समय वह पथिक बीच में ही ठहर जाता, कंधोंको ऊँचा करता और किसी तरह चिंतन करता हुआ अपनी अश्रुपूर्ण दृष्टि उसी ओर फेर देता।



नीतिज्ञ वह व्यक्ति है जो स्त्री के जन्म-दिवस को तो स्मरण रखता है, किन्तु उसकी उम्र को भुला देता है।

ये दिवस भी बीत गये। एक दिन प्रातः काल ही वह बिना खबर दिये ही घर आ पहुँचा। माता-पिता, बड़े भाई सभी उसके पास गये ओर उसे निरखते रहे। कुछ समय बाद उसकी प्रियाने भी उसकी ओर देखा, उसे अपनी प्रिया की आँखों में जलबिन्दुएँ भी दिखायी पड़ीं और उसका दीर्घ निःश्वास भी सुनायी पड़ा। ये अश्रु मानो आज तक प्रदीप्त विरहाग्नि पर पड़ी हुई पहली से तथा वही उसने निकली हुई पहली धूमलेखा यह निःश्वास हो उसे ऐसा ही लगा।—

तन्वङ्ग्या गुरुसन्निधौ नयनयोः
यद्वारि संस्तम्भितम्
तेनान्तर्गलितेन मन्मथशिखी
सिक्तो वियोगद्भवः।
मन्ये तस्य निरस्यमानकिरण—
स्त्वैषा मुखेनोद्गता
श्वासायासमाकुलाभसरणि—
व्याजेन धूमावली॥
अ. श. ९६

रात में वह शय्यागृह में गया। उसे पहले के एक प्रसंग का स्मरण हो गया। विवाह के बाद इस शय्यागृह में पहली बार उसने प्रवेश किया था, तो उस गृह के द्वार पर नीलकमल की वंदनमाला [तोरण] लगी हुई की, वहाँ फूलों को सज कर पुष्पशय्या बनायी गई थी और चारों ओर फूल बिखेरे गये थे; सेज के पास आते ही उसे अर्घ्य दिया गया था। पहली रात को उसका मंगलमय स्वागत ठीक इसी तरह हुआ था। वह सब कुछ आज उसे फिर दिखायी पड़ा। आज भी उसका स्वागत किया गया पर ... सब कुछ आज दूसरे ढंग से था। अमरु के शब्दों में—





अनुक्रमणिका

आज का अवसर खुशी का है।
आमोद-प्रमोद से घर गूँज उठा है।
अपने भविष्य को भी उसी भाँति
सुखमय बनाने के लिए
आज ही जीवन-बीमा कराइए।



लाइफ़ इन्श्योरन्स कॉर्पोरेशन ऑफ़ इण्डिया

अनुक्रमणिका

दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता
दृष्ट्यैव नेन्दीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो
नो कुन्दजात्यादिभिः।
दत्तः स्वेदमुचा पयोधरभरे-
णार्घ्यं न कुम्भाम्भसा
स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतः
स्तन्व्या कृतं मंगलम् ॥

अ. श. ४५

आज भी उसे वन्दनमालिका दिखी, पर वह नीलकमल की नहीं होकर नेत्रकमलों की मादक दृष्टियों की बनी थी, आज भी फूल बिखेरे गये थे, पर वे जुही–कुंद वगैरः के नहीं बल्कि मंद हास्य के थे। आज भी उसे अर्घ दिया गया, पर कुंभजल से नहीं अपितु स्तन तक आती हुई स्वेदबिन्दुओं से। इस तरह जब वह शय्यागृह में गया तब अपने अंग-प्रत्यंग से उसकी प्राणेश्वरी प्रियतमा ने स्वागत किया। पहली रात की ही भाँति आज की वह 'वासकसज्जा' थी। पर आज का प्रकार दूसरी तरह का था।

और, उसके बाहुपाश में आते ही वह विचारने लगा :—

अंगानामतिमानवं कुत इदम्
कस्मादकस्मादिदम्
मुग्धे पाण्डुकपोल मानलमिति
प्राणेश्वरे पृच्छति
तन्व्या सर्वमिदं स्वभावत इति
व्याहृत्य पक्ष्मांतर—
व्यापी बाष्पभरस्तयावलितया
निःश्वस्य मुक्तोऽन्यतः ॥

अ. श. ५०

—प्रियतमे, तुम इतनी दुबली क्यों हो गयी हो? यह मुखड़ा और ये गाल इतने फीके क्यों पड़ गये? वह बोली 'आप यह क्या कह रहे हैं, मैं तो पहले से ही ऐसी ही हूँ।' यह कहकर उसने अपना मान तो बचाया पर उसी समय उसकी पपनियों से अश्रु और होंठों से निःश्वास प्रवाहित हो रहे थे।

और तब अमरु अपनी ही प्रतिभा से आंतरिक स्थिति का वर्णन इन शब्दों में कर रहे हैं :—

चिरविरहिणोरत्युत्कण्ठा श्लथी कृतगात्रयोः
नवमिव जगज्जातं भूयश्चिरामभिनन्दतोः।
कथमिव दिने दीर्घे याते निशा मधिरूढयोः
प्रसरति कथा बह्वी यूयोर्यथा न तथा रतिः।

अ. श. ४८

—उन्होंने दीर्घकालीन विरह भोगा था, उत्कंठा से उनसी देह विकल हो गयी थी, आज कितने दिनों बाद मिलकर वे आनन्दका अनुभव कर रहे थे, उनका संसार आज नवीन हो गया है—उन्हें ऐसा ही लग रहा था। सारा दिन तो उन्होंने महाकाल जैसा बिताया तब कहीं रात को वे मिले थे। सारी रात तो उन्होंने तरह–तरह की बातों में बितादी और यही उनका वास्तविक रतिविलास था।..."अविरत गतयामा रात्रि-रेवविरंसीत्—रात बीती पर बातें नहीं पूरी हुईं"— भवभूति ने उत्तररामचरितम् में राम के मुँह से भी यही बात कहलवायी है। अमरु का भी अभिप्राय वही लगता है।

विवाहित दम्पति के प्रेममय जीवन का भावरम्य चित्रण अपने शृंगारिक पद्यों में कविवर अमरुने किया है! विविध रूपों की विविधता के साथ जीवन की यह मधुरिम छटा अमरुने अपने मनोरम काव्य-चित्र में अंकित कर दिया है। उपरिलिखित पद्य तो बानगी है! उसके वैचित्र्य का आस्वादन करने के लिए अमरु की सभी पुस्तकें देखनी होंगी।

ये मुक्तक बारह सौ साल पहले के हैं! उस समय का गृह-जीवन आज से भिन्न था फिर भी दाम्पत्य-प्रेम के विविध भाव आज भी उसी तरह वर्तमान हैं। इसीलिए अमरु के पद्यों में से बारह शतक पहले का प्रणय रसिकों के प्रणय में आज भी वैसा ही ताजापन लायेगा—प्रस्तुत लेख से लेखक का यही विश्वास है। ★

रूपा :— **वीरेन्द्र मोहन**

आज के दशावतार : ४ **नृसिंहावतार**



जन मत का नरसिंह, बाँटने आया है आह्लाद
द्वैभाषिक का उदर विदारा, मग्न हुआ प्रह्लाद ॥





अनुक्रमणिका





कुणाल की आँखें

सुनिये तात, इस कुणाल पक्षी की आँखों ने तक्षशिला की भूमि के नीचे दबे हुए कारागार में एक अस्थिपंजर देखा है, जिसके शरीर के समस्त कोमल अवशेषों को घृणित कीटों ने कभी का चाट लिया है। ......

आनंदप्रकाश जैन

सुदूर उत्तरवर्त्ती हिमाच्छादित प्रदेशों में एक पक्षी होता है कुणाल, दयामयी प्रकृति के अप्रतिम सौंदर्य का पान करने के लिए विधात्री ने नेत्रों के रूप में मानो उसे दो प्यालियों का वरदान दिया है। उन प्यालियों में जो नैसर्गिक रस होता है वह पाहन पर गिर जाए तो उसे पिघला दे–मगर यों वह गिरता नहीं, क्योंकि वह इतना सुचिक्कण, इतना परमुखापेक्षी होता है कि इस विस्तृत संसृति के दृश्य हरदम उस में झांकते रहते हैं।

परम प्रतापी महाराज अशोकवर्द्धन के पुत्र कुणाल के नीलाभ नेत्रों में भी तक्षशिला–प्रवास के समय कुछ विचित्र दृश्यों ने अपनी स्थायी आकृति अंकित कर दी थी। पाटलिपुत्र से लगभग एक मास की अवधि पर स्थित इस सीमांत प्रदेश में जो भयानक विद्रोह उठ खड़ा हुआ था वह एकदम पहली बार नहीं उठा था। इस से पहले भी, आर्यपुत्र सुमन, कुमार कुणाल के ताया, के समय में वह उत्तरवर्त्ती तुमुल नाद प्रदेशों की सीमाएं लांघकर मौर्य साम्राज्य के केन्द्र पाटलिपुत्र तक पहुँचा था। तब परम भट्टारक, देवानांप्रिय, प्रियदर्शी अशोक की नसों में यौवन का रक्त उबल रहा था। वह स्वयं उस विद्रोह को दबाने के लिए तक्षशिला गये थे। जैसे

अनुक्रमणिका

भभकती आग को कंबल से ढाककर किसी विराट् दानव ने पैरों से रौंद दिया हो। जब महाराज अशोक वहाँ से लौटे थे, तो विद्रोह के चिह्नस्वरूप तक्षशिला के चप्पे-चप्पे पर छाई-राख मात्र दृष्टिगोचर होती थी...और सब से विचित्र बात आर्यपुत्र सुमन का लोप ? हाँ लोप। उनका भौतिक शरीर न किसी ने फूँका था, न किसीने दबाया था, न वह हिंसक नभचरों का आहार ही बना था ! तो फिर उस शरीर का क्या हुआ था ? क्या हुआ था मौर्य राजवंश की उस अभागी मिट्टी का ?

जो हुआ था वह कुणाल की पुतलियों में अंकित था। यही नहीं था। और भी बहुत कुछ अंकित था। महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण को लगभग तीन सौ वर्ष बीत चुके थे। आज बौद्ध धर्म प्रियदर्शी अशोक की छत्रछाया के नीचे फूल रहा था, फल रहा था, कुलांचें भर रहा था। लगता था कि उस अद्भुत महात्मा का करुणा से उठा हुआ हाथ प्रत्येक पीड़ित जन को सांत्वना प्रदान कर रहा था। इन तीन सौ वर्षों में वह हाथ किंचित्मात्र भी तो नहीं थका था—कैसे थकता ? दिन दूनी रात चौगुनी पीड़ितों की संख्या जो बढ़ती जा रही थी। चारों ओर अहिंसा का अखंड साम्राज्य था किंतु ऐसा लगता था कि हिंसा की देवी ने कोई अदृश्य बाना पहन लिया था—और यों वह और भी अधिक क्रूर हो उठी थी। अब लोग शस्त्र से नहीं मरते थे। धीरे-धीरे उनके तन से वस्त्र लोप हो जाते थे, खलिहान के खलिहान मानों भूसी बन जाते थे, शरीर असमय में ही रोगी और जर्जर हो जाता था। काल द्वार पर खड़ा रहता था—रोग, शोक, जरा, मृत्यु, भगवान् बुद्ध के ये चार दीक्षक इस शांतिपूर्ण साम्राज्य में हर स्थान पर डोल रहे थे—और वह करुणापूर्ण हस्त निरंतर विराट् आकार धारण करता जा रहा था—बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि...।

इस विराग-नाद की पृष्ठभूमि में वीणा की झंकारों के बीच एक दिगंतव्यापी रुदन की ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी। किंतु यह असह्य है, असह्य है, असह्य है...

कुमार ने नेत्र खोल कर बिस्टर पर पड़े-पड़े ही देखा। वही नन्हा-सा दीपक कोने में जल रहा था, किंतु उस की ज्योति उद्दीप्त थी। उस ज्योति का प्रकाश एक नारी-मूर्ति के बाएं पक्ष पर पड़ कर मानो उसे एक पाषाण-प्रतिमा का रूप दे रहा था। इस प्रतिमा के कपोलों पर दो सच्चे मोती प्रकाश से प्रदीप्त हुए ढुढ़कने की तैयारी कर रहे थे।

" गोपा ! " कुणाल ने पुकारा।

वह तत्पर गोपा, जो कुमार के मुंह से अपना नाम सुनने की प्रतीक्षा में चौबीस घंटे एक पैर से खड़ी रह सकती थी, जो प्रत्युत्तर में 'आज्ञा दें, कुमार', 'दासी उपस्थित है, कुमार' कह कर अपनी चंचल आत्मा का प्रत्येक प्रकोष्ठ कुमार के वचन सुनने के लिए खोल देती थी—वही दासी गोपा आज मौन थी। पर एकदम मौन तो नहीं, क्यों कि वह रो रही थी और कुमार के पुकारते ही उस का रुदन बांध तोड़कर ठाटें मार चला...

" गोपा ! " कुणाल ने फिर उसी स्वर में पुकारा।

" कुमार ! " एक अंतर्भेदी धीमे आर्त्तनाद के साथ गोपा मानो उमड़ कर आगे बढ़ी और भूमि पैर एकदम पसर कर उस ने कुमार के चरणों को दोनों हाथों से स्पर्श किया, फिर उन्हीं पर गिर कर उस ने अपने रुदन के प्रवाह को अबाध छोड़ दिया।

कुणाल उठ बैठा। नेत्र दयार्द्र कर पूछा, " किसी अभागे ने तुम्हें अकल्पनीय कष्ट दिया प्रतीत होता है। किंतु किसी भी स्थिति में आर्यपुत्र कुणाल की सब से प्रिय दासी को इस प्रकार विचलित होना शोभा नहीं देता...गोपा ! "

" ओह ! आर्यपुत्र ! " सिर उठा कर अपना अश्रुप्लावित मुख कुमार की ओर करती हुई, उन आंसुओं की अपारदर्शिता के पीछे से व्यर्थ ही कुणाल के मुख का निहोरा करने के प्रयत्न में वह भावभीगे बैनों से बोल उठी, " आर्यपुत्र, पाटलिपुत्र से समाचार आया है..."

" क्या समाचार आया है ? " कुणाल ने आशंका के उद्वेग से पूछा।

" देवी, तिष्यरक्षिता परिणय-बंधन से बंध गयी ... " रोते-रोते दासी गोपा ने निवेदन किया।

" क्या ! ! " कुमार ने दासी के दोनों कंधों को बलपूर्वक पकड़ कर सीधे कर दिये, फिर पीठ की ओर झुका कर उस के मुख को दीपक के द्वंद्वपूर्ण प्रकाश से निरावृत्त करते हुए अपने विशाल नेत्रों से उस के नेत्रों में झांका। एक अव्यक्त वेदना दासी के होंठों को विस्तार देती, कपोलों पर उष्णता का उबाल लाती, मोती के दानों की लुढ़काती हुई मानो कुणाल पक्षी की निःसहायता पर आर्त्तनाद कर उठी।

" तो तुम सच कह रही हो ? यह परिहास नहीं है ? मैं देख रहा था, समझ रहा था कि तुम बहुत दिनों से एक अत्यंत मुखर परिहास की योजना मेरे विरुद्ध बना रही थी। मगर मैं तुम्हें हर बार कठोरता से वर्जित कर देता था। आज वही तो ले कर नहीं आयी हो ? "

दासी ने नेत्र बंद कर लिये। उस के हृदय में कुमार के प्रति अटूट श्रद्धा थी। कुमार की सेवा छोड़ कर उस ने विवाह नहीं

अनुक्रमणिका

किया था। पर्वत के शिखर और सागर के नितल का अंतर लांघ कर उस का मन न-जाने कब से क्षितिज पर अटका शैल-शिखर को देख रहा था और देखे ही जा रहा था। कुमार उस के मुंह से ऐसा परिहास सुनने की आशंका करते थे, यह जान कर उस के दांतों ने निचले होंठ को कस कर जकड़ लिया।

"कौन है वह अभागा, जिसे मागधी युवराज का खड्ग भारी पड़ रहा है?" कुणाल ने सहसा ही सरोष पूछा।

"नहीं, नहीं," गोपाने आँखें बंद किये-किये मागधी युवराज के हाथों में अपने को निढाल छोड़ते हुए कहा–"आर्यपुत्र, वह जो भी है आप के लिए पूज्य है, सम्मान्य है–क्यों कि वह और कोई नहीं, स्वयं प्रियदर्शी हैं..."

सहसा ही पलंग की पाटी से दासी का सिर टकराया। कुमार ने अकस्मात् उस के कंधों को निरालंब छोड़ दिया था। दोनो ही के सम्मुख भावनाओं का उद्दाम झंझावात आलोड़ित कर भौतिक परिस्थितियों की बंधनकारी दिशाओं ने अपने पट फैला दिये।

"प्रियदर्शी!!!" आश्चर्य से कुणाल के स्वर-तंतुओं से यह शब्द निकला, "प्रियदर्शी!"

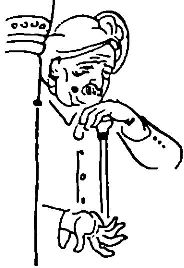
कुमार ने विस्तर त्याग दिया। गोपा संभल कर खड़ी हो गई– आशंका से हृदय की धकधक के सुनती हुई। उस के कपोल अब भी गीले थे, किंतु नेत्रों का जल सूख गया था। आशंका की अग्नि ने सब सोख लिया था।

कुणाल ने कहा, "गोपा, सेनापति अरिदमन को सूचना पहुंचाओ। जहां भी हो, जिस स्थिति में भी हो हमें तुरंत उनकी आवश्यकता है।"

तब गोपा सहसा ही एकदम सचेत और क्रियाशील हो उठी। सेनापति को आने में अधिक देर नहीं लगी। जब उन्होंने सुना कि तुरंत कुमार के निजी अंगरक्षकों का दल तैयार करना हैं और वह बहुत थोड़े-से भटों को ले कर ब्रह्मवेला में पाटलिपुत्र के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं, तो उन के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। हात जोड़ कर उन्होंने निवेदन किया :

"कुमार की इच्छा शिरोधार्य, किंतु इस उद्दंड सेवक को थोड़ा-सा विपरीत विचार प्रकट करने के लिए क्षमा करें, कुमार तक्षशिला की स्थिति इस समय कुमार के प्रस्थान के अनुकुल नहीं है। कुमार अच्छी तरह जानते हैं कि धम्म (धर्माधिकारी) महामात्र बोधिगुप्त तथा महास्थविर विशालबाहु स्थानीय राजनीति में घुटनों तक पांव धंसाए बैठे हैं। कुमार के अभिन्न सखा सुबाहु भी इस समय तक्षशिला में नहीं हैं। तक्षशिला का श्रेष्ठीवर्ग नगर-श्रेष्ठी धनदत्त पर राजद्रोह का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी उन के बंदी होने से असंतुष्ट हैं। ऐसी स्थिति में केवल कुछ अंगरक्षकों को साथ ले कर इतने लंबे मार्ग पर लगभग एक मास विताना कुमार के निकट शुभचिन्तकों के लिए असीम भय का कारण हो सकता है।"

कुणाल ने गंभीर भाव से सेनापति अरिदमन के कंधे पर अपना हाथ रखा और बोला, "सेनापति, आप आयु में मुझ से बड़े हैं और मैंने सदा आप को अपने पिता के समान समझा है। आप की निजी देखरेख में मैंने शस्त्र-विद्या सीखी है–और यह भी सीखा है कि हमें विपत्ति आने पर अपने ऊपर विश्वास रखना



अपने हाथकी कमाई का भरोसा रखो, औलाद का नहीं — मसल है कि एक बाप दस बेटोंका पालन कर सकता है पर दस बेटे एक बापका पालन नहीं कर सकते।

चाहिए। हम जानते हैं कि तक्षशिला में, नहीं, बल्कि समस्त मौर्य साम्राज्य में क्या हो रहा है। हम ने बहुत कुछ देखा है और बहुत कुछ सुना है। किंतु अब बात केवल देखने-सुनने से आगे बढ गई है। कुछ ऐसा हो गया है कि हमें अभी, इसी समय पाटलिपुत्र में होना चाहिये था। हमें जाने दीजिए। अमात्यों की सलाह से आप हमारी अनुपस्थिति में नगर की रक्षा करें, किंतु यदि किसी समय किसी गंभीर स्थिति में आप की अमात्यों पर विश्वास न हो, तो आप अपने सैनिक धर्म का पालन करें।"

सेनापति अरिदमन ने बार-बार आग्रह कर के कार्य की रूपरेखा जाननी चाही, किंतु उस की गुरुता के अतिरिक्त उन्हें कुछ पता नहीं चला। स्वामीभक्ति में वह व्यक्ति अद्वितीय था। अतः उस ने आज्ञा का पालन किया...और इस से भी अधिक मन-ही-मन कुछ निश्चय किया।

सुबह पौ फटते ही जिस समय आर्यपुत्र कुणाल का छोटा-सा सार्थ तक्षशिला से प्रयाण को उद्यत हुआ, तो गोपा कक्ष के द्वार पर यात्रा के लिए सन्नद्ध खड़ी थी। उसके सब वस्त्र कसे हुए थे। कुणाल ने ठिठक कर पूछा, "हमें तो ऐसा स्मरण नहीं होता कि तुम ने हम से कहीं जाने के लिए अनुमति ली है।"

"आप को कैसे स्मरण होगा, कुमार?" गोपा ने कहा, "स्वर्गीय महादेवी (कुणाल की माता) ने महाप्रस्थान के समय जब दासी के कंधों पर आर्यपुत्र की देखभाल का पूर्ण भार डाला था, तब कुमार वहाँ कहाँ उपस्थित थे? कुमार औपचारिक आज्ञा देना चाहते हैं, ते अवश्य दें—गोपा पाटलिपुत्र जा रही है।"

एक क्षण के लिए— किंतु केवल एक क्षण के लिए कुणाल के नेत्र गोपा के नेत्रों से मिलकर स्थिर हो गया। फिर एकदम पलकें नीची कर उन्होंने कहा, "चलो गोपा, तुम्हे आज्ञा की आवश्यकता नहीं।"

गोपा प्रसन्न हो गयी। यदि वह नारी है, तो कुमार के क्षणिक रूप से स्थिर वे नेत्र उसे सदा याद रहेंगे। उन नेत्रों में चाहे गोपा का भ्रम ही हो, किंतु कुमार अब विधुर हैं क्या वह नहीं जानती? जब नहीं थे; तब यह दृष्टि एक बार देखी थी— किंतु द्रष्टव्य जो थी वह अपने पीछे दो चिह्न छोड़कर कभी की जीवन हार चुकी थी।

सेना का एक प्रमुख अंग, आमात्यों का दल, महामात्र बोधिगुप्त तथा उनके निकट अनुचर आर्यपुत्र कुणाल के सार्थ को पाटलिपुत्र से बाहर विदा कर आये। किंतु वापस आते ही सेनापति अरिदमन ने तक्षशिला के समस्त मुखद्वार बंद करा दिये और सैनिक घोषणा कर दी—

"तक्षशिला के मुखद्वार आज से एक मास तक के लिए समस्त यातायात के लिए बंद रहेंगे तथा सैनिक कुंजी महासेनापति अरिदमन के हाथ में होगी।"

यह कुंज एक मास तक किसी को भी नहीं मिली —प्रधानामात्य गुणभद्र को भी नहीं— और तक्षशिला की सुदीर्घ प्राचीर इस बीच कड़े सैनिक प्रहर में रही।

* * *

पाटलिपुत्र के महामंत्री, अग्रामात्य राधागुप्त आगे हाथ किए चुपचाप प्रियदर्शी के सम्मुख दृष्टि नत किए खड़े थे और प्रियदर्शी उस एकांत कक्ष में एक उन्मक्त ठहाका लगा रहे थे... वही, जो कभी-कभी केवल अग्रामात्य के सम्मुख फूटता था। प्रियदर्शी कह रहे थे :—

"अग्रामात्य, भला यह संभव है? हमारा पुत्र हमारे दर्शन करने के लिए पांच सौ योजन लांघकर आये और ड्योढ़ी पर टिक जाये! मालूम होता है हमारा पुत्र राजनीति सीख गया है!"

अग्रामात्य चौंके, चौंकने की ही बात थी। वह अच्छी तरह जानते थे कि असीम सहनशील प्रियदर्शी महाराज अशोकवर्द्धन केवल एक ही स्थान पर सब से अधिक असहनशील थे;वह किसी का राजनीतिज्ञ होना सहन नहीं कर सकते। राजनीतिज्ञता से उन्हें हिंसा की गंध आती है। राजनीतिज्ञ बड़ी जल्दी प्रतिस्पर्धी हो जाता है। यही कारण था कि उन्होंने अपने किसी सहोदर-सतोदर को शेष नहीं छोड़ा था। यही कारण है कि उन्होंने स्वयं अपने पुत्र-पुत्रियों को यहां तक कि अपने जामाता को या तो कश्मीर जैसे सुदूर प्रदेश में फेंक दिया था या बौद्ध श्रमण बन जाने पर विवश किया था...और अब उनका पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा बौद्ध प्रचारकों के रूप में लंका को प्रस्थान करने वाले थे। अपने आकर्षक नेत्रों के कारण किस प्रकार कुणाल उनके हृदय से नहीं निकल सका था यह उस महान् अहिंसक सम्राट् के मानस की एक अनबूझ पहेली थी।

"अग्रामात्य", प्रियदर्शी ने शांत स्वर में कहा, "हमारे मन में एक प्रश्न उठा है—क्या कभी कोई पुत्र अपने पिता से इतना विमुख हो सकता है?"

"यह अकल्पनीय है, देव," अग्रामात्य ने कहा।

"तो फिर कुणाल...कुणाल...!" सहसा प्रियदर्शी की दृष्टि द्वार की ओर अटकी रह गयी कुणाल स्थिर नेत्रों से उनकी ओर देखता हुआ निश्चल खड़ा था- द्वार के बीचोबीच।

"कुणाल!" प्रियदर्शी ने फिर आश्चर्यसूचक स्वर में कहा।

दृष्टि को स्थिरप्राय रखकर कुणाल ने दो पग आगे बढ़ाये। "सेवा में दास का प्रणाम अर्पित है, परम भट्टारक।"

"ओह! ओह! तक्षशिला से अचानक आये हो – कुशल तो है वहां? शांति और अहिंसा तो स्थापित हो गयी है न तक्षशिला में?

"प्रियदर्शी मौर्य साम्राज्य की गुप्तचर शक्ति के प्रति अनास्था प्रकट कर रहे हैं," कुणाल ने उत्तर दिया। "सेवक को विश्वास है कि प्रियदर्शी तक्षशिला की स्थिति से दास की अपेक्षा अधिक अवगत हैं।"

"ओह ! सो हम जानते हैं। हमें जानना ही चाहिये। तक्षशिला में जो प्रयत्न तुम ने किया है, पुत्र, उसकी मात्र सराहना ही की जा सकती है...मात्र सराहना ही की जा सकती है।"

"किंतु महामाहिम सम्राट् की सेवा में उन का एक तुच्छ प्रतिनिधि जो प्रतिवेदन प्रस्तुत करना चाहता है, वह कीत गुप्तचरों का काम नहीं।" कुणाल ने कहा। "क्या परम भट्टारक इस के लिए अनुमति देंगे ?"

"ओह ! लगता है हमारे लिए पग-पग पर विस्मय है। किंतु ध्यान रखो, वत्स, हमें तुम से केवल एक ही प्रतिवेदन सुनने की आशा है...और वह है प्रेम का प्रतिवेदन। हमसे कहो कि तक्षशिला में सर्वत्र प्रेम और शांति की धाराएं प्रवाहित हो रही हैं। हमसे कहो कि तुम हमारे लिए उस स्नेह की अमूल्य भेंट लाये हो, जिस से हम इतने दिनों वंचित रहे। हमसे कहो वत्स, कि तक्षशिला में अभिधर्म की अबाध दुंदुभि बज रही है।"

"नहीं, तात, " कुणाल ने कहा – "यह प्रत्याशा आप अपने उस पुत्र से न कीजिये, जो इस विशाल मौर्य साम्राज्य के राजपरिवार में अकेला कांटों की तरह चुभने वाले राजसी वस्त्रों में घूम रहा है। इस आशा को फलीभूत करने के लिए आप ने धम्म महामात्रों की नियुक्ति कर रखी है और ये महामात्र स्वयं उपराजों और साम्राज्य के प्रतिनिधियों से भि अधिक शक्ति रखते हैं सम्राट्, इस दीन सेवक से कुछ अप्रिय, कर्णकटु तथ्य सुनने का कष्ट करें, तो दास अनुग्रहीत होगा।"

अग्रामात्य ने चौंक कर युवराज की ओर देखा। जिनके नेत्र अब भी महाशक्तिशाली अहिंसक सम्राट् के ऊपर स्थिर थे। प्रियदर्शी के सहसा उन नेत्रों से टकराये और जैसे बलात् नते हो गये फिर उन्होंने विहंस कर अपने व्यक्तित्व का पार्श्व-भाग दोनों उपस्थित राजपुरुषों की ओर करके कहा, "असंतोष वत्स, किसी प्रकार का असंतोष तुम्हें त्रास दे रहा है। यह जान कर हमें दुःख हुआ। मौर्य साम्राज्य का भावी सत्ताधारी किसी अचिंत्य चिंतन से कष्ट पा रहा है और उस कारण को मिटाने के लिए हमारे अंतर का स्नेह प्रति पल उमड़ रहा है।"

"उन स्नेहों को अपने अंतर में ही रोकने का कष्ट करें, तात, क्योंकि असमय बाहर आकर उसे स्वयं कष्ट होगा...और धैर्य से सुनें कि सम्राट् के इस अकिंचन प्रतिनिधि ने तक्षशिला में क्या देखा...

"क्या हमें यह सिद्ध करना होगा कि हम अच्छे श्रोता हैं ?" फिर एक बार विहंस कर प्रियदर्शी ने कहा– "वास्तव में हम उत्सुक हैं कि हमारे समस्त आंतरिक स्नेह को एक ओर रख कर हमारा कुणाल पक्षी हमें क्या दिखाने जा रहा है... निश्चय ही हम उत्सुक हैं, प्रिय कुणाल।"

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

अग्रामात्य राधागुप्त सतर्क हो गये। आज मौर्य साम्राज्य के इतिहास में एक अनहोना वार्त्तालाप होने जा रहा है। उत्तर–पश्चिम में कम्बोज सीमांत से दक्षिण में पेनार नदी तक, पूर्व में बंगाल से पश्चिम में अरब सागर तक फैले मौर्य साम्राज्य के केन्द्रीय राजभवन के एक निजी प्रकोष्ठ में वर्त्तमान और भविष्य के बीच एक तुमुल झंझावात चल रहा था।

"सुनिये, तात, इस कुणाल पक्षी की आंखोंने तक्षशिला की भूमि के नीचे दबे हुए कारागार में एक अस्थिपंजर देखा है, जिसके शरीर के समस्त कोमल अवशेषों को घृणित कीटों ने कभी का चाट लिया है, इस अस्थिपंजर की अस्थियों का आकार-प्रकार मागधी था ... मागधियों में भी राज्य–परिवार से संबंध रखना प्रतीत होता था, क्योंकि उस के गले के स्थान पर जो मेरुदंड था उसमें राजपरिवार का चक्र स्वर्ण की मेखला में बंधा अब तक सुरक्षित रुप से किसी समय बज उठने की प्रतीक्षा में पड़ा था ... कुछ लोग कहते हैं कि तक्षशिला में राजपरिवार के मात्र दो जनों ने पिछले तीस वर्ष की अवधि में पदार्पण किया था – जिन में से एक स्वयं पूज्य तातश्री हैं।"

सम्राट् अशोक का मुख सहसा ही विवर्ण गया। मुद्रा कठोर हो गयी। कड़े स्वर में उन्होंने कहा, "और दूसरा व्यक्ति सुमन था, जिसे राजद्रोह के अपराध में तुम्हारे तातश्री ने कठोर दंड दिया था। नेत्र विस्फारित कर के इस तथ्य के चिह्नों को देखने की आवश्यकता नहीं थी, वत्स! यह तो एक बार जिज्ञासा प्रकट करने पर राजपरिवार का प्रमुख लिपिकार सहज ही तुम्हें बता सकता था।"

"किंतु दुर्भाग्य से राजपरिवार का प्रमुख लिपिकार इस दुर्घटना को लिपिबद्ध करना आवश्यक नहीं समझता था और उस के बाद शिलालेखों और स्तंभलेखों को उत्कीर्ण कराने में ही वह इतना व्यस्त हो गया कि कभी इस छोटी-सी घटना की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया, तात! उसने केवल यह बताया कि अभिधर्म के शासनदायक बन जाने पर तातश्री प्रियदर्शी को इस दुर्घटना पर भारी पश्चात्ताप हुआ था।"

"सो तक्षशिला से युवराज के आने पर उन के दर्शन करने का सब से पहला सौभाग्य अग्रलिपिकार को मिला!" मुस्करा कर प्रियदर्शीने कहा। और क्या-क्या देखा वत्स, तुम ने तक्षशिला में?" देवनांप्रिय ने एक बार कनखियों से कुणाल के विस्तीर्ण नेत्र-पटल पर दृष्टिपात किया।

"और, तातश्री, मैंने तक्षशिला में देखा कि वहाँ का सामान्य जन बौद्ध धर्म से अपार घृणा करता है। क्योंकि इस महान् धर्म ने उन्हें अत्याचारियों का विरुद्ध निरस्त कर दिया है, क्योंकि उन

के अबोध बालक-बालिकाओं को असमय में ही राजप्रश्रय को प्रलोभन दे कर, सिर मूंड कर संघ में सम्मिलित कर लिया जाता है और ये बालक-बालिकाएं जब बड़े हो जाते हैं, तो उन के बीच अभिधर्म की छत्रछाया के नीचे निराश प्रणय का दुःसाहसिक नृत्य होता है...''

इस समय अग्रामात्य राधागुप्त ने स्थिति को सम करने के उद्देश्य से कहा, "यह सच है, महामहिम इस प्रकार के समाचार प्रायः ही अन्य संघों से भी आते रहते है। संघ खुले आम राजनीतिक प्रश्रय का दुरुपयोग कर रहा है।''

"यहां प्रश्न यह नहीं है, अग्रामात्य'' प्रियदर्शी ने कहा, 'प्रश्न यह है कि मौर्य साम्राज्य के सम्मान्य युवराज जिस अदृश्य दर्शन का उद्घोष करना चाहते हैं वह अभी स्पष्ट नहीं हुआ।' सुनाओ युवराज, और क्या देखा ?''

"महामहिम मगध-सम्राट्, मेरे पूज्य तातश्री, मैंने देखा कि अहिंसा और शांति का जो धर्म-चक्र साम्राज्य में...''

प्रियदर्शी ने बीच में ही टोका, "तक्षशिला में...''

"निश्चय ही तक्षशिला जैसे सीमांत प्रदेश में, देव,'' कुणाल ने कहा। "किंतु जिस की प्रतिच्छाया मौर्य साम्राज्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, वही धर्म-चक्र सामान्य जन से उस का अन्न-वस्त्र छीनने में उन श्रेष्ठियों की प्रति पल सहायता करता रहता है जो इस शांति और अहिंसा का पूर्ण उपयोग अपने लाभ-शुभ के लिए निर्ममता के साथ करते हैं। बौद्ध संघों में वैरागियों की संख्या-बढ़ रही है। हर बीतनेवाले एक पल में साम्राज्य का एक जन सांसारिक सुखों को अप्राप्य जान कर संघ में इसलिए प्रवेश करता है कि केवल कुछ शब्दों को रट लेने से वहाँ उसे उन सुखों का आभास तो कम-से-कम मिल ही जाता है। जो लोग किन्हीं कारणों से श्रमण नहीं बन पाते उनके मनों में सतत विद्रोह की भावना सुलग रही है और वहाँ एक ऐसी विराट् हिंसा का विकास हो रहा है, जो एक दिन निर्धूम अग्नि की तीव्र ज्योति बन कर समस्त मौर्य साम्राज्य को पलक मारते लील जाएगी।''

"तुम्हारी दृष्टि पर्याप्त दार्शनिक हो गयी है, धर्मविवर्द्धन!'' प्रियदर्शी ने इस बार घूम कर कुणाल की ओर विनोदपूर्ण मुद्रा से कहा।

कांसे की मूर्ति की तरह कुणाल का मुख विवर्ण हो उठा और उस पर तीखी चिकनाई झलक उठी। तिक्त स्वर में उस ने कहा, "इसलिए, तातश्री, कि अहिंसा की ओर वैरागियों के इस विशाल साम्राज्य में कुछ विचित्र विरोधाभास दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ एक बासठ वर्ष का वृद्ध सत्ताधारी बीस वर्ष की एक अबोध बालिका से बलात् विवाह कर सकता है और बौद्ध संघों का शासनदायक बन कर करोड़ों जनों के लिए नर-नारी के स्वभाविक प्रेम को वासना का खेल बता कर उन्हें प्राकृतिक सुख के पारस्परिक आदान-प्रदान से वंचित कर सकता है...''

"कुणाल!'' सहसा सम्राट् अशोक के नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी, "तुम सीमा से बाहर जा रहे हो, पुत्र।''

"तातश्री'' कुणाल ने उसी भांति प्रियदर्शी के नेत्रों में अपने तीखे नेत्र डालते हुए कहा, "वह सीमा को जानबूझ कर प्रवंचना से, छल से तोड़ चुके हैं। स्वर्गीया मातश्री की जो प्रिय दासी प्रियदर्शी की पुत्रवधू बनने की कामना रखती थी, वही उस पुत्र को कुछ समय के लिए राजधानी से दूर रख कर उस की माता के पद पर प्रतिष्ठित कर दी जाये, मौर्य साम्राज्य की वर्तमान अहिंसक नीति की इस से बड़ी विडंबना और क्या हो सकती थी?''

सहसा ही महान् सम्राट् के प्रज्वलित नेत्रों में शांति छा गयी। होटों पर मुसकराहट खेल गयी, उन्होंने अत्यंत विनम्र शब्दों में कहा, "तुम ने सुना, अग्रामात्य? आज हमारा पुत्र कुणाल हमारे सामने खड़ा है। उस की पितृभक्ति पर सारे पाटलिपुत्र को गर्व है और हमें भी है। हमे आज कितनी प्रसन्नता हो रही है, कितना हर्ष है कि समस्त जम्बू द्वीप मे जिस सम्राट् के सम्मुख सिंह भी नतमस्तक हो कर चलते हैं, उसी के सम्मुख वह अपना विद्रोही हृदय खोल कर रख रहा है। किंतु, वत्स, यह गर्हित आरोप जिस भ्रम के कारण उत्पन्न हुआ है वह मौर्य साम्राज्य के युवराज के उपयुक्त नहीं। महादेवी तिष्यरक्षिता स्वयं तुम्हें इसका उत्तर देंगी।'' यह कह कर प्रियदर्शी ने अग्रामात्य को संकेत किया, "महादेवी की उपस्थिति आवश्यक है, अग्रामात्य, आप देख रहे हैं न?''

अग्रामात्य शिर नत कर कक्ष से बाहर गये। प्रियदर्शी ने फिर वातायन के पार कुछ क्षणों तक देखा। फिर वह बोले, "वत्स, हमें यह जानकर दुःख हुआ कि तुम विवाह-संस्था को वृद्धावस्था व

युवावस्था से जोड़ते ही। राजाओं और सम्राटों का यह दुर्भाग्य है कि बिना वृद्ध हुए उन की समझ में यह बात नहीं आती कि उन के लिए युवावस्था में विवाह करना अशुभ होता है। विवाह एक आध्यात्मिक संबंध है, जिसका संबंध वासना से नहीं, आयु की गंभीरता से होना चाहिए।"

कुणाल के नेत्रों की दृष्टि और भी तीव्र हो गयी। उसी समय अग्रामात्य राधागुप्त ने कक्ष में प्रवेश कर कहा, "महादेवी स्वयं इसी ओर आ रही थीं, देव, सेवक को आज्ञा दें..."

"आप ठहरिये, अग्रामात्य...हम महादेवी तिष्यरक्षिता का अभिनंदन करते हैं..."

कुणाल ने द्वार की ओर देखा। तिष्यरक्षिता सम्राट् को प्रणाम कर रही थी। जब सिर उठा कर वह सीधी हुई, तो कुणाल को लगा कि एक शुभ्र ज्योत्स्ना कक्ष में फैल गयी है। नितांत श्वेत परिधानों में, हल्के अलंकारों को धारण किये तिष्यरक्षिता मुख पर असीम गंभीरता का भाव धारण किए, सशंक दृष्टि से सम्राट् की ओर देख रही थीं। उसी समय उस की दृष्टि कुणाल पर पड़ी ओर सहसा ही आतंकित-सी हो कर वह एक पग पीछे हट गयी, मुँह से शब्द निकला, 'हा!..' और बायां हाथ खुले मुख को ढांकने के लिए ऊपर उठा। उँगलियों ने एक मोड़ लिया और हाथ की पीठ ने मुख को ढांक लिया।

प्रियदर्शी मुस्कराए। स्वर को यथासाध्य साध कर उन्हों ने कहा, "महादेवी आशंका न करें युवराज अमनी मातृश्री के दर्शन करना चाहते थे। हमें खेद है कि यह सौभाग्य इन्हें सुदूर सीमांत में व्यस्त रहने के कारण पहले नहीं मिल सका। किंतु युवराज को अनजाने ही कुछ भ्रम हो गया है। उन्हें संदेह है कि महादेवी को इस राजपरिणय के लिए विवश किया गया। क्या महादेवी इस अमंगलकारी संदेह का निवारण करने का कष्ट करेंगी?"

कातर दृष्टि से तिष्यरक्षिता ने मानो सम्राट् की ओर देखा। ओर जब उस की दृष्टि कुणाल के नेत्रों से मिली, तो उस के नेत्रों में नीर की एक हल्की परत थी। फिर सहसा ही वे नेत्र मुंद गये; कुछ क्षणों तक प्रतीत हुआ कि एक प्रस्तर-प्रतिमा, जिसे किसी कलाकार ने जीवन भर परिश्रम कर के तराशा हो, निर्लेप खड़ी थी किंतु उसी समय प्रतिमा ढहने लगी। आश्चर्य नहीं कि कांड गंभीर हो उठता यदि कुणाल ने लपक कर उस अचेत शरीर को थाम न लिया होता।

अग्रामात्य फिर द्वार से बाहर गये और दो दासियों ने तत्क्षण कक्ष में प्रवेश किया। कुणाल दिग्मूढ़ था। एक आतंकित नारी की चेतना का यह प्रतिवाद किस के प्रति था? लांछन के प्रति था...या परिस्थितियों के प्रति? किंतु कुणाल ने देखा—उस अचेतनावस्था में उस नारी का मुख कितना त्रस्त, कितना निर्दोष लगता था।

दासियों ने महादेवी का शरीर संभाल लिया और उन्हें सावधानी से कक्ष से बाहर ले गयी।

"तुम ने देखा, वत्स? महादेवी लांछन को सहन नहीं कर सकीं" प्रियदर्शी ने कहा,

"हां, मैं ने देखा," युवराज ने कहा, "अहिंसा का यह आतंक निश्चय ही दर्शनीय था! इस दर्शन का प्रतिफल भी सुंदर था। मूर्च्छा! प्रियदर्शी के साम्राज्य में यह प्रतिफल सर्वत्र दृष्टिगोचर रहा है। विचार के क्षेत्र में, आहार के क्षेत्र में, सुरक्षा और प्रहार के क्षेत्र में, नर-नारी के जीवनदायी स्वाभाविक संघर्षों में, और कहाँ-कहाँ नहीं! लगता है प्रियदर्शी ने अपने लिए जो साम्राज्य खड़ा किया था, वह केवल प्रियदर्शी का प्रतिबिंब बन गया है जो प्रियदर्शी के हटते ही लीन हो जाएगा।"

"युवराज!" सहसा कठोर स्वर में परम भट्टारक ने कहा, "याद रखो, सहन-शक्ति की एक सीमा होती है तुम्हारे मुख से विद्रोह के स्वर निकल रहे हैं"

"केवल स्वर ही निकल रहे हैं, तातश्री, क्योंकि तात ने मुझ दीन राजपुत्र को न श्रमण बनने पर विवश किया, न चाचा विताशोक की भांति किसी हत्यारे के खड्ग के नीचे मुझे सात दिन तक एक आमोद-प्रमोद से पूर्ण महल में रखा, केवल एक सुदूर प्रदेश में ही फेंक देना चाहा, जहाँ से भाग आया हूँ...अपने तात का स्नेह पाने के लिए...और इस स्नेह के संस्कारों ने मुझे विद्रोह के योग्य नहीं छोड़ा। नहीं, तात, आप मेरे लिए पूज्य हैं, कुणाल के लिए पूज्य हैं। कुणाल जिस दिन विद्रोही होगा उस दिन सब से पहले अपने जीवन का होम देगा।"

सम्राट् की दृष्टि राजपुत्र की दृष्टि से फिर एक बार मिली। किंतु इस बार दोनों ही दृष्टियों में वह तेज नहीं था। कुणाल ने प्रणाम किया और समुचित सम्मान प्रदर्शित करता हुआ कक्ष से बाहर निकल गया।

* * *

पाटलिपुत्र से बाहर, सोन के दूसरे किनारे पर, जब कुणाल अपने बड़े भाई महेन्द्र तथा बहन संघमित्रा के संभवतः अंतिम दर्शन कर वापस लौट रहा था, तो संध्या हो चुकी थी, साथ में कुछ अंगरक्षक तथा गोपा थी, तब एक अश्वारोही पाटलिपुत्र की दिशा से दौड़ता हुआ उन की ओर आता दिखायी दिया। एक कुंज के किनारे इन लोगों की मुठभेड़ हुई।

"कौन, अग्रामात्य जी?" गोपा ने अपनी बारीक आवाज में विस्मय प्रकट किया।

कुणाल का यह छोटा-सा दल ठहर गया। अग्रामात्य राधागुप्त ने अश्व से उतर कर कुमार की अभ्यर्थना की और कहा, "ठहरिए,






अनुक्रमणिका

पाटलिपुत्र में आप का प्रवेश वर्जित है। आइए, इस कुंज में चलें न।"

कुणाल और आमात्यप्रवर कुंज में गये। एक एकांत स्थान पर ठहर कर कुणाल ने कहा, "क्या तातश्री ने मुझे देशनिकाला दे दिया है?"

"बात बहुत गुप्त है," राधागुप्त ने कहा, "इसीलिए मुझे यहाँ आना पड़ा। पाटलिपुत्र में आप का जाना वर्जित नहीं है, किंतु बहुत संभव है वहाँ से कभी आप का निकलना संभव नहीं, और बहुत संभव है कि हम सब को आप के अस्तित्व से ही वंचित हो जाना पड़े।"

"देखिए, अग्रामात्यजी, आप प्रियदर्शी पर आरोप लगा रहे हैं!" कुणाल ने कहा।

"प्रिय कुणाल, इन राजसी बातों को यहीं छोड़ो। तुम प्रियदर्शी को इतना नहीं जानते, जितना मैं जानता हूँ। अशोक ने कभी किसी को क्षमा नहीं किया, जब उन्हें चंडाशोक कहाँ जाता था, तब भी नहीं – और जब धर्माशोक कहाँ जाने लगा उस के बाद भी नहीं। केवल शत्रु पर प्रहार करने का ढंग बदल गया था और उस ढंग ने अब तक खासा काम दिया है। किंतु साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती जा रही है और मौर्य साम्राज्य के स्तंभ अहिंसा की इस नीति से असंतुष्ट हैं। जहाँ–तहाँ से विद्रोह के समाचार आ रहे हैं, किंतु प्रियदर्शी जिस नीति का स्वाद इतने दिनों तक चख चुके है उसे छोड़ने को प्रस्तुत नहीं। साम्राज्य का समस्त वाणिज्य, व्यवसाय, दूरवर्ति संबंध क्षीण हो रहे हैं और जो कुछ शेष है वह केवल प्रियदर्शी के उस व्यक्तित्व की चारों ओर केन्द्रित है, जो उन की सत्ता ने अब तक स्थापित किया है। यहां अपराधी को अब मौत की सजा तक नहीं सुनायी जाती, किंतु किसी न किसी बहाने, किसी विचित्र कारण से उस का समस्त परिवार अपयश और मृत्यु की भेंट हो जाता है। राजधानी के पांच सौ आमात्य एक बड़ी क्रांति के लिए तुले बैठे हैं। यदि आप इस का नेतृत्व नहीं संभालेंगे तो वह क्रांति व्यर्थ के रक्तपात और अव्यवस्थित विद्रोह में बदल जाएगी।"

"तो बात यहाँ तक बढ़ गयी है" कुणाल ने आश्चर्य प्रकट किया। "बहुत दिनों से लग रहा था कि यह हो कर रहेगा। किंतु, अग्रामात्यजी, कुणाल सब कुछ हो सकता है, पितृद्रोही नहीं हो सकता। मेरा खड्ग अपने पिता का रक्त पान नहीं कर सकता।"

राधागुप्त के मुख पर सहसा सफेदी-सी पुत गयी...अपने को संभाल कर कहा, "यदि आप ने इस क्रांति का नेतृत्व नहीं किया, तभी यह पितृद्रोह होगा। प्रियदर्शी इस संघर्ष में बिना विरोधियों के व्यवस्थित नेतृत्व के मारे जा सकते हैं।"

कुणाल सहम गया। करुण भाव से बोला, "अग्रामात्यजी, एक ऐसे पुत्र से आप ऐसी आशा कैसे कर सकते हैं, जिसने अपना समस्त जीवन केवल अपने पिता के आदर्शों का पालन करने में बिताया हो! यदि मुझे राजद्रोह करना होता, तो मैं तक्षशिला में सेनापति अरिदमन तथा अपने अन्य शूरवीर साथियों को छोड़ कर न आता। मुझे क्षमा करें, अग्रामात्यजी। यदि पाटलिपुत्र में आप

पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव-मात्र के लिए करुणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है।



मेरा जाना उचित नहीं समझते, तो मेरा ही वहाँ क्या रखा है? मैं यहां से तक्षशिला जा रहा हूँ। आप लोग जो उचित हो, करें। किंतु यह वचन देना होगा कि तातश्री के शरीर को कोई हानि नहीं पहुंचेगी।"

राधागुप्त ने कुछ क्षणों तक सोचा, फिर कहा, "अच्छा, तो ऐसा ही होगा। किंतु संप्रति और दशरथ? क्या आप अपने पुत्रों को भी इस के लिए वर्जित करेंगे?"

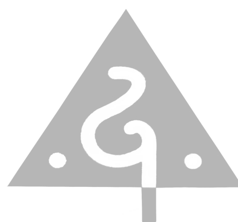
"मैं ऐसा नहीं समझ रहा हूँ कि मेरा पाटलिपुत्र में कुछ रहा गया है" क्षितिज की लाली को देखते हुए कुणाल ने अत्यंत खिन्न भाव से कहा। "संप्रति या दशरथ, या फिर तातश्री ही, जो भी पाटलिपुत्र में केन्द्रीय सत्ता का स्वामी होगा, मैं तक्षशिला के उपराज के पद से उस के सामने इस जीवनमें सदा अपना शिर नत करूँगा। मुझे सत्ता नहीं चाहिए, केवल एक शांत जीवन ही मैं जीना चाहता हूँ। कभी संप्रति और दशरथ के हृदय में अपने इस अभागे तात का प्यार उमड़े, तो उन्हें तक्षशिला भेजिए। मैं एक बार उन्हें फिर देख कर अपने नेत्र शीतल करूँगा, जिनके भीतर लगता है कोई अग्नि जल रही है। पाटलिपुत्र जा रहा था केवल इसीलिए कि मैं उन्हें एक बार अपने हृदय से चिपटाना चाहता था, मगर आप कहते हैं तो नहीं जाऊँगा।"

राधागुप्त ने कुणाल को अपनी छाती से लगा लिया, आँखें डबडबा आयीं उन्होंने कहा, "मैं जानता हूँ, वत्स। मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ। स्नेह के अतिरिक्त तेरे मन में और कोई तत्त्व नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि इस समय तक्षशिला का मार्ग सुरक्षित नहीं है और साथ में बहुत कम अनुचर हैं। फिर भी, अब कोई चारा भी नहीं है विदा, पुत्र, तेरा कुशल समाचार जानने को हम पाटलिपुत्र के वासी बेचैन रहेंगे।

कुमार के सीधे तक्षशिला चले जाने का समाचार जब प्रियदर्शी को मिला, तो उन्हें अत्यंत दुःख हुआ। अग्रामात्य राधागुप्त को बुला कर उन्होंने मालूम किया कि कब उनका पुत्र उन जैसे स्नेहशील पिता को यों त्याग कर गया। पता चला पंद्रह दिन हो चुके थे। तब प्रियदर्शी ने एक आज्ञा-पत्र धम्म महामात्र बोधिगुप्त के नाम लिखने के लिए कहा:

"लिखो, अग्रामात्य, धम्म महामात्र को लिखो कि प्रियदर्शी को अपने पुत्र के बिना मिले चले जाने पर अत्यंत दुःख हुआ है और इस दुःख से प्रियदर्शी का हृदय फटा जा रहा है। किंतु देवानांप्रिय सम्राट् अशोक को विश्वास है कि शीघ्र ही कुणाल को अपनी भूल ज्ञात होगी और अपने पिता से द्रोह करने का पश्चात्ताप होगा...





अनुक्रमणिका

और लिखो, अग्रामात्य, कि प्रियदर्शी की हार्दिक कामना है कि कुमार को उचित शिक्षा दी जाये...बिना किसी तरह की पीड़ा पहुँचाये...उचित शिक्षा दी जाये। क्या लिखा ?"

"...कुमार अधीयताम्," अग्रामात्य ने अंतिम शब्द पढ़े।

"हम स्वीकृति देते हैं। राजमुद्रा से अंतिक करो और इस आज्ञा-पत्र महादेवी तिष्यरक्षिता को दिखा कर एक तीव्रगामी संदेश-वाहक को दो। जाने से पहले वह हमारे सामने उपस्थित किया जाये।"

अग्रामात्य ने आज्ञा-पालन के लिए शीश झुकाया। थोड़ी ही देर में एक तीव्रगामी संदेश-वाहक उपस्थित किया गया। उस के हाथ में राजकीय आज्ञा-पत्र था, जो भली प्रकार पक्की राजमुद्रा से अंकित आवेष्टन में बंद था।

"महादेवी ने देखा ?" प्रियदर्शी ने पूछा।

"देखा, परम भट्टारक..." अग्रामात्य ने कहा।

"अब हमें पग-पग पर सावधान होना होगा। भ्रम उत्पन्न होने लगे हैं ! है ना, अग्रामात्य ?"

"सेवक निर्वचन है, देव," अग्रामात्य ने कहा।

"और संदेशवाहक, तुम जल्दी से जल्दी तक्षशिला पहुंचोगे। आज्ञापत्र सीधे धम्म महामात्र बोधिगुप्त के हाथों में जाएगा"

"आज्ञा अक्षरशः पालन होगी, देव !" चपल संदेशवाहक ने कहा।

"ठीक है, अक्षर-अक्षर पालन होगी। कंठस्थ करनी होगी। समझे ? कहना होगा कि प्रियदर्शी उन से बहुत अधिक असंतुष्ट हैं। बहुत अधिक कहना कि अपने विशाल साम्राज्य में सुखशांति बनाये रखने की चिंता हमें दग्ध कर रही है। और अंतिम रूप से, खूब जोर दे कर कहना कि चिता और चिंता में केवल एक बिंदी का... और यही धम्म महामात्र नहीं चाहते कि प्रियदर्शी चिता में दग्ध हो, तो उन्हें स्वयं यह चिंता का भार लेना होगा और हमारे आज्ञा-पत्र के एक एक अक्षर को ध्यान से देखना होगा कि कहीं से यह छोटी-सी काजल की बिंदी लोप तो नहीं हो रही है। तुम ने हमारा संदेश कंठस्थ तो कर लिया न?"

"सेवक को सम्राट् की सेवा करते हुए आयु बीत गयी है, देव।" संदेश-वाहक ने उत्तर दिया।

किंतु प्रियदर्शी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने अपने कथन को उसी के मुख से दो बार सुना और फिर अग्रामात्य की ओर देख मानो संकोच से हँस पड़े। "ये सांसारिक संबंध बड़े भावुक होते हैं, अग्रामात्य !"

अग्रामात्य भी इस भावुकता को समझ रहे थे...कहा, "सेवक अवाक् है, देवाधिदेव।"

* * *

फिर कुछ दिन बाद तक्षशिला से एक समाचार आया—सब से पहले अग्रामात्य के हाथों में। यह समाचार कोई पुरुष नहीं, नारी लायी थी। यह नारी थी गोपा। उस के साथ सोलह सैनिक आए थे। उसका वेष अस्त-व्यस्त था। मुख की श्री उड़ी हुई थी। नेत्रों से झर-झर आँसू झर रहे थे। अग्रामात्य उसे देख कर अवाक् रह गये अपने को संजो कर उन्होंने पूछा, "क्यों, गोपा, इतनी दूर से आयी तुम ? कुशल तो है ?"

रोते-रोते गोपा ने कहा, "मैं तो कभी की मर जाती, अग्रामात्य जी, किंतु पापी प्राणों ने मन का साथ न दिया। सोचा पाटलिपुत्र में दीपावली देख कर मरूँगी। इस काष्ठ के राजमहल में घी के दीपकों की पंक्तियां सजी होंगी। वह देख कर ही परलोक जाऊँगी पर यहाँ तो बड़ा अंधेरा-सा लग रहा है। क्षमा करना, अग्रामात्यजी कुछ दिनों से मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है...।"

अग्रामात्य की समझ में कुछ नहीं आया। कहीं गोपा विक्षिप्त तो नहीं हो गयी। कड़े स्वर में पूछा—"क्या बात है, गोपा ? सीधे-सीधे क्यों नहीं कहती ? क्या मार्ग में बहुत गरमी पड़ी थी ?"

"इतनी हृदयहीनता, अग्रामात्यजी, इतनी नृशंसता ! सच है, यह इस अहिंसक साम्राज्य में ही संभव हो सकती थी... सुनिये, कान खोल कर सुनिये, अग्रमात्यजी, संभव है आप का भी हृदय शीतल हो। सम्राट् की आज्ञा का पालन हो गया। आर्यपुत्र ने अपनी पितृभक्ति के प्रमाण-स्वरूप आज्ञा का पालन किया है... ओह ! विधाता, अभी नहीं मारेगा क्या ?"

"कोई भयंकर समाचार है, गोपा ? तेरा शरीर तो भला चंगा है न ? क्या किया है आर्यपुत्र ने ?"

"आर्यपुत्र ने सम्राट् की सेवा में अपने शक्तिशाली नेत्रों की ज्योति का उपहार भेजा है..."

"क्या ?" अग्रमात्य माने आकाश से गिरे।

"...और यह आज्ञा-पत्र वापस भेजा है। कहा है, तातश्री की अनुमति ले कर इसे नष्ट कर दिया जाये। आने वाली पीढ़ियों के लिए यह सुरक्षित रहेगा तो अपयश होगा।"

गोपा के बढ़े हुए हाथ से अग्रमात्य ने वही आज्ञा-पत्र ले लिया जो उन्हों ने स्वयं बंद कर के संदेशवाहक को दिया था—दो मास पहले। उसे फिर एक बार पढ़ा—अक्षर अक्षर...और दृष्टि एक स्थान पर अटक गयी।

"...कुमार अंधीयताम् !!!"

यही था वह आज्ञा-पत्र। हाँ, यही तो था। केवल एक छोटे से अक्षर पर एक बिंदी का असर है...उतना ही जितना चिता और चिंता के बीच होता है...पल भर में आंखों के सामने से जैसे कोई काला परदा हट गया हो। कुमार अंधीयताम् (कुमार को अंधा कर दिया जाये !) नहीं, नहीं, यह तो उन्होंने नहीं लिखा था...यह तो नहीं लिखा था...!

वह आगे की ओर झपटे। उन के लपक कर बाहर निकलने से गोपा का शरीर टकराया और वह गिर पड़ी। किंतु अग्रामात्य की कोई सुध नहीं रही थी। घड़ी भर के भीतर भीतर पांच सौ आमात्य पाटलिपुत्र के कोने कोने से एकत्र हो गये। अग्रामात्य की आंखों से भी झर-झर आँसू झर रहे थे, आज्ञा-पत्र उन लोगों के बीच ऊंचा उठा कर वह कह रहे थे, "मुझे क्षमा करना, मित्रों ! मैं मूर्ख हूँ। केवल एक छोटी-सी बिंदी का अर्थ नहीं समझ सका। केवल एक अनुस्वार, और इतना बड़ा अनर्थ... हाय !"

और जिस ने सुना उस के मुंह से निकली एक हाय ! खड्ग खींचे पांच सौ आमात्य... केवल पांच सौ आमात्य... कोई सैनिक

साथ नहीं — प्रियदर्शी, परम भट्टारक, देवानांप्रिय, सम्राट् महामहिम अशोकवर्द्धन के कक्षा में मानो सब से पहले प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगे।

अग्रामात्य सब से आगे थे। अन्य आमात्यों को हाथ के संकेत में रोक कर उन्होंने आज्ञा-पत्र प्रियदर्शी के सम्मुख रख दिया। आश्चर्यचकित-से सम्राट् ने वह आज्ञा-पत्र शांति के साथ पढ़ा। फिर सहसा मानों सब कुछ समझते हुए वह चिल्लाये, " किसने किया सब यह अनर्थ ? ऊपर के आवेष्टन पर राजमुद्रा अंकित होने से पहले यह किस के पास गया था ? "

" मेरे पास गया, " सहसा एक नारी-कंठ सुनाई पड़ा।

सब ने देखा। एक अंतरीय द्वार के बीचोबीच महादेवी तिष्यरक्षिता खड़ी थी। उन के पीछे गोपा थी — उसी वेश में। सब को अपनी ही ओर देखते पा कर महादेवी तिष्यरक्षिताने एक विद्रूपभरी मुसकान प्रदर्शित करते हुए कहा, " मेरे पास यह आज्ञा-पत्र इसलिए भेजा गया था कि मैं इस महान् मौर्य साम्राज्य के शेष अपयश को ओट लूँ। इस उत्तर दायित्व को संभालने के लिए मेरे कंधे बहुत छोटे हैं–किंतु मैं एक नारी हूँ न! मैं ने बहुत समय से इस भार को ओटा है, बहुत सफलतापूर्वक, आप लोग संकोच में न पड़िये। मैं प्रियदर्शी, अपने सम्मान्य पतिदेव को इस कलंक से मुक्त करने की घोषणा करती हूँ। मैं, एक तुच्छ दासी तिष्यरक्षिता उद्घोष करती हूँ कि इस आज्ञा-पत्र के कलंकित ' अ ' पर अनुस्वार मैं ने लगाया था–अपनी आँख के काजल से... ! "

कुछ समझे, कुछ नहीं समझे–किंतु पीछे की ओर से कुछ खड्ग अवश्य खिंच गये। उन्हें देख कर तिष्यरक्षिता फिर हँसी—वही विद्रूपभरी हंसी, कहा, " ठहरिये, अमात्यगण, इतनी जल्दी न कीजिये अपराधी को कुछ समय और जीने का अधिकार दीजिये। फिर आप को कष्ट करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी...क्योंकि जिस दिन नववधू का शृंगार हुआ था उसी दिन मैं ने एक वस्तु किसी ऐसे ही क्षण के लिए सुरक्षित रख छोड़ी थी, मेरे उदर में वह एक घड़ीसे फल रही है, फूल रही है–लगता है कि मेरी धमनियों में एक आग दौड़ रही है जो आप लोगों के अस्त्रों से बहुत तीखी है... "

" देवी ! " गोपा चिल्लाई और झपट कर आगे बढ़ी। किंतु उस की बाहुएँ इतनी सबल नहीं थी, जितनी पक्षी के सतर्क नेत्र होते हैं। नारियों को मूर्च्छित होने का चाव होता है न। सो तिष्य-रक्षिता, मौर्य राजपरिवार की एक भूतपूर्व तुच्छ दासी, उस समय ऐसी मूर्च्छित हुई कि फिर उठी ही नहीं।

वचन देना होगा कि तात के शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचेगी... कुणाल ने कहा था। अग्रामात्य ने माना था।

तो फिर ऐसा उसी क्षण प्रियदर्शी देवानांप्रिय के हाथों से राजदंड छीन लिया गया–संप्रति के पक्ष में...किंतु महादेवी का शव राजभवन के एक एकांत स्थान मे चंदन की लकड़ी से जलाया गया-- कहीं नासमझ लोगों की उच्छ्वासों से अपवित्र न हो जाय, इसलिए।

★



एक दीया जल रहा है !

—ब्रजकिशोर 'नारायण

देहरी पर एक दीया जल रहा है !

घोर तम चारों तरफ , दीया अकेला
कांपती है लौ कि सम्मुख मृत्यु-वेला
आज तक देखी नहीं , ऐसी घटा है
दामिनी की भी भयानक-सी छटा है !
इस तपस्वी पर हिमालय गल रहा है
देहरी पर एक दीया जल रहा है !!

जल-रहा जिस ज्योति के हित, वह अलग है
है तिमिर में स्वयं , पर रुकता न पग है
एक दीया , है हजारों प्राण पागल !
प्राण का उत्सर्ग ही क्या प्यार का फल ?
जल रहा है स्नेह , स्नेही जल रहा है !
देहरी पर एक दीया जल रहा है !!

ज्योति घर में , पर डगर पर है अँधेरा
इसलिए पथ खोजता है अब सबेरा
दीप का कण-कण तपन से कह रहा है —
" तुम सम्भालो , स्वप्न मेरा ढह रहा है !
दर्द को मेरी तरह किसने सहा है ? "
देहरी पर एक दीया जल रहा है !!

बह रही आँधी , तमिस्रा मुस्कुराती
लौ हवा की हर लहर पर लहर जाती
काँपता है दीप थरथर, सोचता है —
" काल अपना ग्रास क्या अब खोजता है ? "
हाय ! उर का नेह उर को छल रहा है !
देहरी पर एक दीया जल रहा है !!





अनुक्रमणिका

हमारे गाँव का तात्या पुजारी दुनिया-भर का सिड़ी था। जरा-जरा-सी बात पर वह चिढ़ उठता और जनेऊ तोड़कर शूद्र बन जाता। चिड़चिड़े मनुष्य को "तात्या पुजारी" कहने का रिवाज आज भी हमारे गाँव में प्रचलित है। तात्या को मरे बहुत साल हो गये, पर गाँव में उसका नाम अमर है।

उन दिनों वह जिंदा था। हनुमानजी के मंदिर से करीब सौ कदम की दूरी पर, दो कमरों का उसका घर था जो बाँसों की कमचियों पर मिट्टी की छाप देकर बना था। उसके परिवार में इने-गिने तीन व्यक्ति थे। तात्या, उसकी पत्नी गीता और पुत्र तुकाराम। तात्या हनुमानजी को जल चढ़ाता और कनेर तथा कपास के पुष्पों से उनकी पूजा करता। रात को मंदिर में दीप जलाता और दिन-भर बैठा-बैठा पलास तथा बरगद के पत्तों की पत्तलें बनाता रहता। गीता हर शनिवार को मंदिर का बरामदा लीपती। गाँव में किसी के घर "हव्य-कव्य" होता, तो उसके घर पत्तलें पहुँचा देती। हनुमानजी के आगे रखी चढ़ोत्री-पैसे, चावल आदि को बटोरकर घर लाती और अपनी गरीब गृहस्थी का सुख और संतोष से संचालन करती। सुबह गाँव में घर-घर बेलपत्री और तुलसी बाँटने काम तुकाराम के जिम्मे था। रोज दिन निकलते ही स्नान करके वह घर से बाहर चल देता। गाँव में करीब सौ-सवा सौ घर थे। उन सब घरों में वह जाता। हर घर में फूल, बेलपत्री और तुलसी की पुड़िया डाल देता। घर की माँ-बहिनें उसे चुटकी-भर चून दे देतीं। चून की टोकनी नौ बजे के भीतर घर में आ जाती। इसी चून की गीता रोटियाँ बनाती। इस तरह तात्या की गृहस्थी चल रही थी। 'न किसी के लेने में और न किसी के देने में,' ऐसा परिवार था वह। तात्या के हाथ में सटेरे की छुँडी ही गड़ जाती, तो उसे नाराज हो जाने के लिए इतना ही बहाना पर्याप्त हो जाता। इस प्रकार दिन में वह कोई सौ बार चिढ़ उठता और तुकाराम तथा गीता को पीट देता। पर उन दोनों को और समूचे गाँव को भी इस बात का अभ्यास हो गया था। वह एक नित्य की ही बात हो गयी थी, इसलिए उसकी ओर कोई कभी कुछ भी ध्यान न दिया करता।

मंदिर के इसी पार अडूसा के पेड़ की ओट में जौंदाल की बहू विस्त्वा नहा रही थी। जवानी से गदराई हुई गोरी लड़की! काले काले खुले बाल गोरी पीठ पर चू रहे थे। काली कजरारी आँखें, सरल नाक, चिबुक पर छोटासा गोदना...और... और...अडूसा के पेड में डोलने वाले वे बेल फल... तुकाराम के अपंग शरीर में बिजली कौंध दी!

बिजली

ग. दि. माडगूळकर



तुकाराम अठारह वर्ष का हो चुका था। पर उसे ककहरा भी नहीं आता था। बेल के पेड़ पर चढ़कर काँटे बचाते हुए केवल त्रिदल ही सफाई से खुटक लेना-बस, यही एक कौशल उसने अपने जीवन में आत्मसात् किया था। एक-दो बार गाँव के कृष्णाजी मास्टर की पाठशाला में वह गया था। वहाँ लड़कों ने उसकी खूब खिल्ली उड़ायी थी। तब से गाँव में पाठशाला की देहलीज ही एक ऐसा स्थान था जहाँ उसके कदम कभी न पड़ते थे। तात्या ने भी इस विषय में कुछ नहीं कहा, क्योंकि तात्या के भी जीवन में शाला और शिक्षा के विषय संभव नहीं हुए थे।



दोपहर विल्कुल धधक रही थी। ग्राम-देव वाले मैदान के कंकड़ भुनकर लाई हो जाएँ, धूप इतनी तेज थी। करील और वेरों की टहनियाँ चित्र-लिखित-सी स्तब्ध थीं। देखते ही आँखों के सामने अंधकार छा जाता और धूप में चित्र-विचित्र रंगों की उल्टी-सीधी रेखायें लहरों उठती थीं। सारा मैदान निर्जन था और बड़ा उदास प्रतीत हो रहा था। ग्राम-देव के मंदिर की टूटी दीवाल की बित्ता भर छाया में देव का भैंसा अंग सिकोड़ कर बैठा था—बाकी सब तरफ सन्नाटा था। गरम कंकड़ों और मिट्टी को खूँदता हुआ दूर से तुकाराम चला आ रहा था। उसके पैरों में कुछ भी न था। सिर पर पलास के पत्तों से भरी एक बड़ी टोकनी थी। किसी थके हुए जानवर की तरह बड़े-बड़े उच्छ्वास भरता हुआ वह गाँव की तरफ आ रहा था। उसकी पीठ पर खासे दो तरबूजों के बराबर कूबड़ था और सीने पर भी उसी तरह का कद्दू के आकार का मांस का एक गोला था। ईश्वर ने ये अनावश्यक उपांग उसे न जाने क्यों दे रखे थे। तुकाराम जब चलता, तो हमेशा ही दबा हुआ-सा चलता। अठारह वर्ष की अवस्था में भी उसकी ऊँचाई चार फुट से अधिक नहीं बढ़ी थी। ये गंदे कूबड़ जब गरम होते, तो तुकाराम के प्राण व्याकुल हो जाते। आज की धूप की चपेट में वह विवशता से फँस गया था। पटेल के घर सत्यनारायण की कथा थी और रात को सौ लोग भोज के लिए आमंत्रित थे। तात्या पुजारी अपनी बकरी बेचने शहर गया था। इसलिए पटेल के घर की पत्तलों की मांग को पूरी करने का काम गीता और तुकाराम पर आ पड़ा था। घर में पलास का एक पत्ता भी शेष न था। गाँव से पाँच मील दूर पलास के पेड़ थे। वहाँ से पत्ते लाने के लिए गीता ने ही तुकाराम को भेजा था। बड़े कष्ट से तुकाराम कदम उठा रहा था। उसे लग रहा था कब जल्दी-से-जल्दी घर आता है। तुकाराम के जी में आया कि पत्तों की टोकनी फेंककर ग्राम-देवता के तालाब के शीतल जल में खूब स्नान करूँ। उसके पैर काँपने लगे थे। मुँह से झाग निकलने लगी थी। पीठ और सीने के कूबड़ तड़कने लगे थे। पर वह रुका नहीं। घर पहुँचने में अगर देर होगी, तो गीता हरिणी की तरह चिन्तित हो जाएगी, पत्तलें समय पर तैयार न हो पाएँगी, पटेल नाराज हो जाएगा और जब तात्या को इसका पता चलेगा, तो वह माँ को जानवर की तरह पीटेंगे और मेरे कूबड़ों पर कोड़े बरसाएँगे। अपने मन को दाबकर तुकाराम ने ग्राम देव के

तालाब का मोह त्याग दिया। चिल्लू-भर पानी भी नहीं पिया उसने। तालाब का चक्कर लगाकर, मैदान में वह किसी ऊँट के गुमे हुए बच्चे की तरह आगे-आगे चलने लगा।

गाँव की सरहद पर प्राथमिक शाला थी। उस वक्त लड़कों की मध्याह्न की छुट्टी थी। इमली तले की खुली जगह में लड़के आजादी से कूद-फाँद रहे थे। उस थोड़े समय में भी कुछ लड़कों ने एक खेल खेलना शुरू कर दिया था। एक लड़का दाहिने हाथ से कान पकड़े बैठा-बैठा ही एक गोली गढ़े तक ले जा रहा था और बाकी के लड़के उसके पीछे-पीछे नाचते और चिल्लाते जा रहे थे।

उन लड़कों में से एक ने आ रहे तुकाराम को देखा और इस शरारत-भरे आनंद से जैसे होली का कोई स्वाँग देखा हो, वह चिल्ला उठा – "ऊँट का बच्चा आया रे! ऊँट का बच्चा आया!"

सब लड़कों की नजरें सरहद की तरफ मुड़ गयीं और क्षणार्ध में बेचारे तुकाराम की अवस्था कुत्तों द्वारा घेर लिये गये भिकारी की तरह दयनीय हो गयी। भौंहें तानकर आवेश पीकर वह चुप रहा। आगे चलने लगा। लड़के उसके पीछे लग गये। उसके कूबड़ टटोलने लगे। पुंगी बनाने के लिए उसकी टोकनी से पत्ते निकालने लगे। तुकाराम को लग रहा था जैसे गश आ रहा है। सिर पर रखी टोकनी-सहित वह गिरने वाला ही था कि इसी समय शाला की घंटी बजी और उसके इर्द-गिर्द एकत्रित हुए भूत सिर पर पैर रखकर पाठशाला की ओर भाग उठे। जाते-जाते एक लड़के ने एक फूटी हुई गोली यों ही तककर तुकाराम की नाक पर मारी। निशाना ठीक लगा। तुकाराम तड़प उठा। मारनेवाला लड़का तालियां पीटता हुआ शाला के दरवाजे की ओर भाग गया और फिर तुकाराम को छुटकारा मिला।

गीता पुत्र की प्रतीक्षा ही कर रही थी। तुकाराम के आते ही वह जल्दी से आगे बढ़ी। उसने पुत्र के सिर से टोकनी उतारी और 'बड़ी तकलीफ हुई मेरे बेटे को,' कहकर उसने तुकाराम का पसीने से भरा चेहरा प्रेम से जब सहलाया, तो पसीने में मिले हुए खून से उसके हाथ लाल और गीले-से हो गये। तुकाराम की नाक से खून बह रहा था।

'क्या हुआ रे?'

तुकाराम कुछ न बोला। नीचे बैठ गया। पीछे की दीवाल से उसने सिर टिका लिया और एक दीर्घ साँस ली। वह तोतला था। बोलते समय उसे बड़ा कष्ट होता एक वाक्य बोलने में वह तीन-चार बार रुकता।

"क्या हुआ रे? क्या कहीं गिर पड़ा?" आँचल से उसके मुँह का खून पोंछते हुए गीता ने घबराकर पूछा।

ग. दि. माडगूळकर :

दीपावली पहली बार आपकी कहानी पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रही है। गत वर्ष आप की गीत-रसवंती पढकर हमारे पाठक प्रसन्न हुए थे। आपने कई चित्रपटों की कहानियाँ लिखी हैं। आप कवि हैं या कहानीकार है यही पाठकों का सवाल है।

"पानी।" - तुकाराम ने सिर्फ इतना ही कहा।

"लाती हूँ।" कहकर गीता अंदर दौड़ गयी। तुकाराम ने साँस छोड़ी। आँखें खूब चौड़ी कीं। बंद मुट्ठी से ओठ की तरफ आयी हुई झाग पोंछी और फिर बड़े कष्ट से उठकर वह खड़ा हुआ। जैसे-तैसे अपने बदन से फटा कुर्ता उसने उतार कर फेंका और उसी पर औंधा पड़कर, फफक-फफककर रोने लगा। रोने में भी उसे बड़ा कष्ट हो रहा था। उल्टी साँस चल रही थी। लग रहा था जैसे प्राणपखेरू अब उड़ा ही चाहते हैं।

जल-जलकर बिल्कुल काले पड़े हुए एक बर्तन के गरम जल से तुकाराम ने स्नान किया। माँ की पुरानी फटी साड़ी के टुकड़े से बदन पोंछा। हाथ पर गोपीचंदन घिसा और माथे पर उसका टीका लगाने के लिए दीवाल पर लगे दर्पण में देखा। बड़ा भयानक चेहरा था उसका! खैरा की बीमारी से सिर के बाल जगह-जगह से गायब हो गये थे। विरल केशों की भौंहें, मिचकनी आँखें, चौड़ी और चपटी नाक, मोटे-मोटे होंठ और इस सारी कुरूपता पर मसों के असंख्य बुंदके। तुकाराम ने मुँह फेर लिया और माथे पर कहीं भी चंदन का टीका लगा लिया। दीवाल पर लगा दर्पण बहुत छोटा था-इतना छोटा जितना कि बैलों की झूल में लगा रहता है। इसलिए तुकाराम को सिर्फ अपने चेहरे की विद्रूपता ही महसूस हो सकी। सीने और पीठ पर विद्रूपता की जो गठरी थी, वह उसकी दृष्टि से छूट गयी। गीता ने उसे पुकारा और उससे कहा-'बेटा, जाकर हनुमानजी को जल चढ़ा आ, फिर थोड़ा-सा खा ले और सो जा। आज बहुत कष्ट हुए हैं तुझे।'

हाथ में जल से भरा एक लोटा, उस लोटे पर ही चंदन का छोटा-सा लौंदा और कपास के फूल लेकर, तुकाराम हनुमानजी का पूजन करने के लिए घर से निकल पड़ा था। मन में सोचता रहा कि मैं भगवान का पूजन किस लिए करूँ? भगवान ने मेरा क्या भला किया है? शरीर को ऐसा अपंग बना दिया है, बाप दुनिया-भर का चिड़-चिड़ा है-भगवान की दयालुता की कथायें उसने मंदिर में होनेवाले पुराणों के प्रवचनों में बहुत सुनी थीं। वे सब झूठी होंगीं। मैंने भगवान का क्या बिगाड़ा है कि जिससे वह शाला के लड़कों से मुझे तंग कराता है। मेरी खिल्ली उड़वाता है। मैं जब पलास के पत्ते लेने जाता हूँ, तो धूप को तेज कर देता है। इसी प्रकार के विचारों में खोया हुआ वह मंदिर की ओर जा रहा था कि अचानक ठिठक गया।

मंदिर के इसी पार काशा जौंदाल का घर था। उस घर का सहन मंदिर की पगडंडी तक पहुँचता था। वह बाड़ से घेर दिया गया था। बाड़ बेरी के काँटों की थी। उसमें से भीतर का सब नजर आता था। अडूसा के पेड़ की ओट में जौंदाल की बहू नहा रही थी। वह विवस्त्रा थी। दोपहर को गाँव में कोई आता-जाता नहीं। इसलिए ऐसे समय कुर्मियों की स्त्रियाँ इसी प्रकार निश्चिंत होकर नहाती हैं। जवानी से गदराई हुई गोरी लड़की! तुकाराम रुका। उसकी उम्र ने उसके अपंग शरीर में बिजली कौंध दी। जौंदाल की बहू खड़ी हो गयी। उसे जोर की साँस सुनाई पड़ी, इसलिए उसने पगडंडी की ओर देखा, तो उसे तुकाराम दिखायी दिया। तुकाराम को मन-ही-मन एक जोर का धक्का लगा। पर उस

अनुक्रमणिका





लड़की के चेहरे का भाव एक रत्ती-भर भी न बदला। मनुष्य देखकर कोई भी शर्मा जाती। पर लड़की की दृष्टि में तुकाराम था जानवर। वह उसकी ओर देखकर तिरस्कार से हँस दी और उसकी तरफ पीठ फेर दी। उसके कालेकाले खुले बालों का गीला टाट गोरी पीठ पर चू रहा था। तुकाराम के शरीर की बिजली सनसना उठी। उसे लगा, जाकर उन गीले केशों में मुँह घुसेड़ दूँ। छाती पर के वे बेल फल ! तुकाराम वहाँ से हिला। उसे उस तरह खड़ा हुआ कोई सयाना आदमी देख लेता, तो वह उसके कूबड़ों को पत्थर से कुचल डालता। मंदिर में जाकर तुकाराम ने हनुमानजी को जल चढ़ाया उनके कुरूप चेहरे पर कहीं भी चंदन का टीका लगा दिया। चंदन पर ही एक-दो फूल चिपका दिये और कुछ समय पहिले के गोरेपन के नशे में ही वह मंदिर की सीढ़ियां उतरा। वह जरा जल्दी चल रहा था। पैर जल रहे हैं; इसकी उसे खबर ही न थी। सोचता रहा, उसका स्नान अभी समाप्त न हुआ होगा, इसलिए जाते-जाते उसे एक बार और थोड़ा-सा देख लूँ। मुझ से कोई शर्माता नहीं, यह एक तरह से अच्छा ही है। कम-से-कम आँखों को भरपूर ठंडक मिल जाती है। उसकी बातों के समान ही उसके विचार भी अस्पष्ट और उसके लिए तापदायक हो रहे थे। वह चल रहा था। जौंदाल के सहन के नजदीक वह पहुँचा। तब गीली नागिन अपनी हरी साड़ी, सूखने के लिए सहन की बाड़ पर फैला रही थी। उसके बाल खुले थे। उसका रसभीना चेहरा तुकाराम की तरफ ही था। काली कजरारी आँखें, सरल नाक, कोमल कपोल, चिबुक पर छोटा-सा गोदना—तुकाराम की आँखें चौंधिया गयीं। उसके केश खुले थे, पर अब उसने चोली पहिन ली थी। उसने थोड़ी आड़ कर ली थी। तुकाराम को रुका हुआ उसने देख लिया। बिल्कुल सहज ही उसने पूछा—'हो गयी पूजा, तुकाराम ?'

तुकाराम ने कष्ट से 'हाँ' कहा और आगे बढ़ गया। उसके शरीर की बिजली भड़क उठी थी। उसे चाहे जहाँ लिये जा रही थी।

— जौंदाल के घर में ऐन दोपहर को उसने गीले केशों में अपना मुँह घुसेड़ा, उसके चेहरे के मसे के निशान बिल्कुल विलुप्त हो गये और रंग स्वच्छ साँवला हो गया। सीने और पीठ के कूबड़ गल गये—तुकाराम और वह गीली नागिन ...

वह घर पहुँचा। गीता पत्तलें बना रही थी। वह उठी। उसने तुकाराम को भोजन परोसा। पर उससे खाया नहीं गया। माँ को लगा; बेटा धूप में आया है। इसी से भूख मर गयी होगी। इसलिए उसके पेट में अन्न नहीं जा रहा है। हाथ धोने के लिए वह बाहर गया। दरवाजे के सामने बेल के पेड़ पर दो बेल-फल चुपचाप लटक रहे थे। उनके आसपास हरे-हरे घने पत्ते लगे थे। तुकाराम के अंगांग में एक तीव्र बिजली तड़पने लगी—'हरी साड़ी—हरी पत्तियाँ... बेल फल... मेरे कूबड़ —'

वह बहुत थक गया था। धूप भी काफी तेज थी। फिर भी उसे नींद न आयी। आँखें बंद कर वह चुपचाप गूदड़ी पर लेट गया था। गीता हँसिये से कुछ काट रही थी। तुकाराम के मन में आया—इसी हँसिये से मेरे कूबड़ बिना जख्मी हुए आहिस्ते से कट जायें। ऐन.

दोपहर को जौंदाल की बाड़ के पार में हरिन की तरह कूद पड़ूँ। गीले केशों में मुँह घुसेड़ दूँ और:—"

वह लगातार करवटें बदल रहा था। बीच में वह उठ कर बैठ गया—

"क्या नींद नहीं आ रही है, तुकाराम?"—गीता ने पूछा।

"नहीं।"

"धूप बड़ी तेज है?"

"हूँ।"

तुकाराम दरवाजे में से सामने देख रहा था। बेल वृक्ष की एक आड़ी शाखा दरवाजे के सामने आ गयी थी। उस शाखा पर दो चिड़ियां थीं। दो बेल फल लटक रहे थे। काले सिरवाली चिड़ियाँ भूरे सिरवाली चिड़िया की पीठ पर बैठ कर, पंख फड़फड़ रही थी। नीचेवाली चिड़िया बड़े लाड़ से चहक रही थी। काले सिरवाली उतरकर उस तरफ जा रही थी। फिर पंख फड़फड़ाती थी। इस तरफ आती थी। फिर दूसरी चिड़िया की पीठ पर बैठ जाती थी। पुनः पंख फड़फड़ाती थी। नीचेवाली चिड़िया बड़े प्रेम से "चूं-चूं-चूं" कर रही थी। चिड़ियों की इस क्रीड़ा में हवा के न बहते हुए भी पत्तों से घिरे वे बेल-फल आहिस्ते-आहिस्ते झूम रहे थे। तुकाराम फिर लेट गया। उसका सारा शरीर जैसे जल रहा था। उसे लग रहा था कि जाऊँ और ग्रामदेव के तालाब में बैठा रहूँ। वह तड़प रहा था। बीच ही में बैल की तरह जोर-जोर से साँस ले रहा था। बाहर धूप चिलचिला रही थी, भीतर आग धधक रही थी। तुकाराम को नींद आना संभव ही न था—वह उसी तरह तड़पता रहा।

धूप उतने ही भयंकर रूप से चिलचिला रही थी। बेल के पेड़ की छाया उस धूप में आड़ी-टेढ़ी तड़प रही थी। तुकाराम पसीने से तर हो गया था। हाँफता हुआ वह घर आया। देखा तो दरवाजे में ताला पड़ा था। पड़ोसी से उसने पूछताछ की। पर गीता किसी के पास ताली भी नहीं रख गयी थी। वह बहुत झल्लाया। उसे लगा पत्थर से कुचल कर, ताला तोड़ दूँ। ताकत होती तो खींच-खींच कर ही वह ताले को तोड़ देता। ताला तोड़ता भी कैसे?... 'टूट जाने से ताले की कीमत व्यर्थ जायगी और तात्या मेरे कूबड़ की अच्छी खबर लेंगे।' ... उसे कुछ नहीं सूझ पड़ता था। इसी समय उसे याद आया कि उसके जनेऊ में भी एक ताली है। वह ताली थी मंदिर के ताले की। झल्लाये हुए तुकाराम ने गुस्से में वही ताली घर के ताले में घुसेड़ दी। गद्य आते तक उस ताली को उसने ताले के अंदर घुसेड़ कर उल्टा-सीधा खूब घुमाया, और कहाँ कैसा खटका जम गया कौन जाने, दरवाजे का ताला चट-से खुल गया। तुकाराम को अत्यानंद हुआ और उसी क्षण उसके मन में आये एक विचार ने उस के सारे आनंद पर पानी फेर दिया। 'ताला कहीं बिगड़ तो नहीं गया?' द्वार खोलना छोड़ कर, वह ताले को ही आँख के पास ले जाकर देखने लगा। इसी समय पीछे से गीता आयी। उसने पुकारा "तुकाराम।"

तुकाराम जाग उठा। गीता घर बुहार रही थी। वह सब पत्तलें बना चुकी थी। उनका बकायदा गट्ठा बांध कर उसने कोने में रख दिया था।

"तुकाराम, उठ बेटा। दिन डूब रहा है। हाथ-मुँह धो ले और ये पत्तलें पटेल के घर दे जा। परोसा मिलेगा, उसे जाकर मैं ले आऊँगी।"

सपने में ताले की जो घटना घटी थी, उसका मतलब तुकाराम की समझ में न आया। उसे नींद अच्छी तरह से नहीं लगी थी, यह जरूर सच था। जौंदाल की बहू का गोरापन ही उसकी नींद में मिश्रित हो गया था। शरीर की बिजली अब तक नाच रही थी, जोर-जोर से हाथ-पाँव पटक रही थी।

वह उठा। उसने मुँह धोया। पत्तलों का गट्ठा उठा कर पटेल के घर चल पड़ा। जाते समय जान बूझ कर ही वह जौंदाल के घर के सहन की तरफ से गुजरा। वह हरी साड़ी सूख गयी थी, पर थी वहीं। पिछवाड़े का द्वार बंद था। अडूसा का पेड़ हवा में डोल रहा था, पर उसमें बेल-फल न थे। उस साड़ी को देखते ही तुकाराम के शरीर में पुनः कोई झटका आया और साथ ही वह आगे बढ़ा। सिर पर रखे पत्तलों के बोझ को तनिक पीछे सरका कर संतुलन ठीक किया और पीछे देखते हुए उसने उस साड़ी को स्पर्श किया। शरीर की बिजली आँखों के सामने से निकल कर उसके मस्तक में घुस पड़ी। सारे शरीर में करेंट दौड़ गया। उसे लगा मैंने जौंदाल की बहू की जंघा में ही चिकोटी काटी है। इस कल्पना से ही वह डर गया। पीछे हटा और पुनः उस साड़ी की ओर मुड़कर देखता हुआ शरीर की बिजली को शरीर ही में बंद करके वह पटेल के घर की ओर रवाना हुआ।

पटेल के मकान के बरामदे में सत्यनारायण की कथा जम रही थी। बहुत से श्रोता एकत्रित थे। तुकाराम सामने के दरवाजे से भीतर नहीं गया। डरता था कि कोई उसकी खिल्ली न उड़ाये। वह पिछवाड़े के द्वार से गया। पिछवाड़े दो नवयौवनाएँ कुएँ पर पानी भर रही थीं। उन दोनों के केश खुले थे। उस में से एक की साड़ी हरी थी। वे दोनों कुछ बातें कर रही थीं। सायंकाल के शीतल प्रकाश में तुकाराम वह देख रहा था। उसके मस्तक की बिजली लट्टू की तरह घूम रही थी। उसके कलेजे को ऊपर की तरफ खींच रही थी। कुएँ से बाल्टी निकाल कर, हरी साड़ीवाली तरुणी उसे दूसरे बर्तन में उँडेल रही थी कि तभी तुकाराम की ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ—

"ईऽऽ," वह डर कर चौंक पड़ी। डरने के बाद वह इतनी चालाकी से हिली, इतनी सुंदरता से लचकी कि तुकाराम को लगा कि जाकर उसे उसी तरह पकड़ रखूँ।

"ओ माँ! ऐसा कैसा आदमी है यह?"—वह शर्मीली युवती किंचित तिरस्कार से और बड़ी अनुकम्पासे बोली—"इसकी पीठ पर यह क्या है जी?"

"वे कूबड़ हैं।"—पटेल की बहू ने अपनी गौनहार से कहा।

"इतने बड़े!"—लजीली बाला ने अपनी कमानदार भौंहें तानते हुए प्रश्न किया।

"भगवान की करनी।"—पटेल की बहू बोली।

"क्या कूबड़ में हड्डियाँ नहीं होतीं?"

"भगवान जाने। चाहो तो जाकर देख लो न!"—बेफिक्री से पटेल की बहू ने कहा।





अनुक्रमणिका

वह लजीली तरुणी ढिटाई से आगे बढ़ी और जिस तरह कोई घोंघे को टटोलते समय मुँह बनावे, उसी तरह मुँह बना कर उसने उसकी पीठ को बेधड़क टटोल कर देखा। उसका स्पर्श होते ही तुकाराम के शरीर में सिहरन दौड़ गयी। शरीर के भीतर का करेंट लगातार शिख से नख तक बेचैनी से लट्टू की तरह गिरगिरा-कर घूमने लगा।

"ये हैं पत्तलें।" इतना ही कह कर वह पिछवाड़े के द्वार से ही झट – बाहर चल दिया।

जिस तरह कोई जलता जुगनू अँधेरे में द्रुत गति से जाता है उसी तरह तुकाराम जा रहा था। उसका मन चिल्ला रहा था – "भगवान की करनी ! – भगवान की करनी मेरे लिए ही ऐसी विद्रूप क्यों ? जौंदाल की बहू को उसने गीली हल्दी जैसा रसमी-नापन दिया, पटेल की बहू को इतना रूप दिया कि उफन रहा है, उस लजीली तरुणी को हरिणी के समान आँखें दीं और मुझे दिये कुबड़ — "

इस प्रकार के विचारों में डूबता–उतराता हुआ ही वह जौंदाल के सहन के पास आया। उस गीली नागिन की साड़ी कंटीली बाड़ पर सूख रही थी। तुकाराम के मस्तक में फिर कोई टीस उठी। अंधेरा धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतर रहा था। जौंदाल के घर के पिछवाड़े का द्वार बंद था। आस-पास कहीं कोई परिंदा पर नहीं मार रहा था। चावड़ी के पीछे खूँटे से बँधा सांड डकार रहा था। दूर कहीं एक गाय सठेरे चबा रही थी। दृढ़ निश्चय करके तुकाराम ने वह साड़ी बाड़ पर से उठा ली, उसे समेट कर, काँख में दबाया और जिंदगी में पहिली बार ही सिर पर पैर रखकर भागा।

गीता मंदिर जा रही थी। उसने तुकाराम से कहा– "आ गया पत्तलें पहुँचा कर ? मैं मंदिर जा रही हूँ। वहाँ दीप जलाऊँगी और वहीं से सीधी पटेल के घर चल दूँगी। रात को वहाँ कीर्तन है। दोपहर का भोग रखा है, उसे तू खा लेना। मुझे लौटने में आधी रात हो जाएगी।"

"हूँ।" तुकाराम ने कहा और द्वार में से झट–से घर के भीतर घुस गया।

उससे खाना नहीं खाया गया। सामनेवाले कमरे में ही उसने किसी लालची की तरह एक टाट बिछाया। उस हरी साडी की चार तहें कीं और फिर उसे भी टाट पर बिछा दिया। दरवाजा भीतर से बंद किया और गरमी से तड़प कर जैसे कोई ग्राम-देवता के ठंडे हौज़ में धीरे-से डुबकी लगावे, उसी तरह उसने इस बिस्तर पर डुबकी लगायी। जौंदाल की बहू का गीला लावण्य, लजीली का कोमल स्पर्श, उसकी भौंहों की कमान, बेल फल का कड़ापन... पके हुए नीम का खट्टा स्वाद–नाना प्रकार की बातों का वह अनुभव ले रहा था। धूप से हैरान हुई चिड़ियां जिस तरह मिट्टी में आनंद से खूब लोटती हैं, पंखों को फड़फड़ाती हैं, उसी तरह वह कर रहा था।

नीम के बोर की सुगंध, गेहूँ की बालियों पर की तर हवा, दिवाली की सुबह–उसकी अनुभूति में ये सब सुख एकत्र हो गये थे। उस बिस्तर पर वह मनमाना लोट रहा था। अपने भारी भरकम शरीर को यथेच्छ पटक रहा था। धीरे-धीरे उसका लोटना बंद हो गया। उसके शरीर की एक-एक नस शिथिल पड़ गयी। पत्तों की ओट के बेल फलों को उसने कसकर दाबा, दबोचा और फेंक दिया। केवल त्रिदल बेल उसने तोड़े-उनका पुलिंदा सीने से लगाये वह लौटा-उसे गहरी नींद लग गयी।

सुबह चावड़ी पर बात फैली। जौंदाल की बहू की साड़ी चोरी चली गयी। गाँव के रखवाले खोज करने लगे। गीली नागिन ने तुकाराम पर ही शक किया। बापू रामोशी तात्या पुजारी के घर आया। उस समय भी तुकाराम गहरी नींद में सो रहा था। बाजार से लौटा हुआ तात्या पुजारी बकरी की बिक्री के चालीस रुपये गिनकर गीता को दे रहा था।

"तात्याजी !"— रामोशी ने पुकारा।

"क्या है ?"

"तुकाराम कहाँ है ?"

"सो रहा है अभी तक। क्यों, क्या काम है?"– गीताने पूछा।

"पटेल ने बुलाया है।"– रामोशी बोला।

"तो मैं जाता हूँ न ?"– तात्या पुजारी बोला।

"नहीं। आप की जरूरत नहीं। तुकाराम से ही काम है।"

"यह कूबड़ा अभी तक क्यों सोया है ? तुक्या, तुक्या – अबे, अब उठ न – ए तुक्या–"–तात्या की कर्कश पुकार से तुकाराम जागा।

दरवाजे से भीतर आ रही मीठी धूप उसे ठंड के दिनों की गरमाहट जैसी सुखद प्रतीत हो रही थी। उसने उठकर अंगड़ाई ली—

"जा। जल्दी हाथ – मुँह धोकर तैयार हो जा। तुझे पटेल ने बुलाया है।" तात्या चिल्लाया।

तुकाराम चुपचाप उठा।

देहलीज के पास बैठते हुए एकदम चौंककर बापू रामोशी चिल्ला पड़ा–" यही तो है वह साड़ी।"

"मतलब ?"– तात्या ने पूछा।

"जौंदाल की बहू की यह साड़ी चुराई है तुम्हारे बेटे ने।"– बिस्तर से बापू रामोशी ने वह साड़ी उठा ली।

सिड़ी तात्या का संतुलन एक क्षण में खो गया। भीतर जा रहे तुकाराम को उसने हाथ पकड़कर पीछे खींचा और मुँह से उसे लाखों गालियाँ सुनते हुए उसे इतना पीटा कि अंत में वह गिर पड़ा। तुकाराम एक शब्द भी न बोला। कष्ट से सिसक-सिसककर वह बड़ा करुण रुदन कर रहा था। कुम्भार जिस तरह मिट्टी को कुचलता है, उसी तरह तात्या उसे कुचल रहा था।

जख्मी गिद्ध की तरह तुकाराम चावड़ी के कोने में निश्चेष्ट पड़ा था। पटेल गीता से जबाब तलब कर रहे थे। उन्हें भी तुकाराम पर दया हो आयी थी। असली माल मिल गया था। तुकाराम अचेत था। गीता के लिए कुछ कहने को मुँह ही न था।

"गीताजी तुम्हारे बेटे ने यह कैसे किया ?"– पटेल ने पूछा।

रो - रोकर गीता की आँखें फूल गयी थीं। माथे पर हाथ पीटकर अपराधी की आवाज में वह बोली –" भगवान की करनी ?" ★

रूपा :— **रा. र. सर्वटे**





अनुक्रमणिका

नदी माँ का उत्सव

अनन्तकुमार 'पाषाण'

पात्र :

चित्राक्षी **कमलाक्षी**	तपस्वी पिता की मातृहीन पुत्रियाँ।
वृद्ध तपस्वी :	उनका पिता।
महाकवि जयदेव	
स्थल :	नदी का तट।

[नदी के तट पर एक-से वस्त्र पहिने दो बहनें। पीछे दूर एक लट्ठों का झोंपड़ा दिख रहा है। नदी के प्रवाह का स्वर आद्योपान्त अनवरत है।]

चित्राक्षी —

नदी का जन्मदिवस अज्ञात रहा है और रहेगा ;
प्रथम कब हुई प्रवाहित धार,
गले से उठी गमक गुंजार,
भला निश्चित यह कौन कहेगा !

करा सैकत-बाला का जन्म
विजन में दाई हुई विलीन,
उच्च गिरि-शिखरों से अवदात
नया जन्मा शिशु हाय, हठात्
फेंक क्यों दिया ! फेंक क्यों दिया !
धरा ने मैला आँचल खोल
त्यक्त कन्या को झेल लिया —
नदी को नव व्यक्तित्व दिया !
मगर क्यों पाहन परुष सँवार
गात को दिया नया आकार
शैल-कन्या प्रकटी बन धार — भेद यह भेद रहेगा।

कमलाक्षी —

श्रेणियाँ शैलों की हो भीत
देखती रहीं निपट निर्वाक् निठुर अन्याय,
चाय की उपत्यका गतिभ्रष्ट
धूप में धँसी विवश असहाय, उठी चीत्कार !
कँपा कासार,
गूँजा कान्तार,
शेष रह गया मौन निरुपाय।

चित्राक्षी —

विक्त गत शैशव मातृविहीन
सालता एकमात्र एकान्त,
प्राप्ति में ईश्वर की तल्लीन
पिता थे मौन तपस्यालीन —
मात्र हम दो बहनें औ ' वन औ ' सरित —
मात्र हम दो बहनें औ वन औ ' नदी —
अथक अविराम प्रवाह !

कमलाक्षी —

बीस वर्षों का लम्बा काल !
गये कैसे आ-आ कर साल !
मात्र हम दो बहनें औ ' विजन
और यह नदी हमारी मात !
मात्र हम दो बहनें औ ' रात और आघात —
एक सुख था—थे साथ !

चित्राक्षी —

कूल पर जिसके आतप-क्रान्त
रुके पद धूरि-धूसरित श्रान्त—

कमलाक्षी —

केतकी के काले कान्तार
सदा स्वागत करते थे शान्त—

चित्राक्षी —

बिछा कर कोमल शाद्वल-तल्प
ओस से भींजी प्रति मध्याह्न —

कमलाक्षी —

सुनाती रही लोरियाँ जो कि —
" बुलाती है राधा ओ कान्ह ! "

दोनों —

उस नदी माँ का उत्सव आज —
नहीं यदि जन्म-दिवस है ज्ञात
प्रति दिवस जन्म-दिवस हो जाय —
जन्म नित नूतन माता पाय !

कमलाक्षी —

कई दिन से इस कानन-बीच
बज रहा है संगीत विचित्र,
घुँघरुओं की किलकारी - गूँज
पवन में हो जाती है लीन.....
और फिर जैसे मधु का हृदय निचोड़
अचानक उठते बोल !

चित्राक्षी —

अचानक तरु की छाया काट
महावर के खिंचते आभास,
धूप में जल का चल प्रतिबिम्ब
परस अनजाने गौर उरोज
सिहर थम जाता ज्यों कि हठात् —

कमलाक्षी —

शिशिर के शिर पर रख कर पैर
विपिन पर चढ़ आया मधुमास !
धरा के पुलक उठे हैं रोम
हो गयी मृदुतट मृदुतम घास !

चित्राक्षी —

घूमता जैसे उत्सव-क्रान्त
व्यक्तियों का मधु-भ्रान्त समूह ;—
सकल वसुधा है ज्यों मधुचक्र,
गगन व्याकुल गन्धों का व्यूह —

कमलाक्षी —

बहन, देखो कदम्ब की छाँह
वृद्ध जो स्वप्न-निरत आसीन,
कृष्णमृग जिन के तन से मुक्त
अभय पा खुजलाते हैं सींग !
प्रथम ही बार उन्हें अवलोक
उमड़ती श्रद्धा बन कर स्नेह —

चित्राक्षी —

इसी वन में कुछ दिन हो गेह
मिले सेवा का कुछ सौभाग्य —
पिताजी आयें कबतक लौट
न जाने ! — कौन करे कुछ बात !

कमलाक्षी —

पितृवत् हैं, हम दोनों साथ
चलेंगी इनसे करने बात !
[आगे बढ़कर वृद्ध को प्रणाम करती हैं।]

दोनों —

देव, स्वागत ! स्वीकार प्रणाम
करें। दें हमको आशीर्वाद !

वृद्ध —

पुत्रियों, सुनो शीघ्र-से-शीघ्र
कृष्ण की मुरली का तुम नाद

चित्राक्षी —

कृष्ण की मुरली ! परिचय देव,
स्वयं का देने का उपकार


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



अनुक्रमणिका

वृद्ध —

पुत्रियों, मैं हूँ कवि जयदेव !
उस नदी के तट होगा रास,
इसी में मैं भी लेने भाग
यहाँ आया हूँ ले मधुमास !

चित्राक्षी —

किन्तु इस वन का चयन हठात्
किया क्यों मुरलीधर ने आज ?

जयदेव —

पुत्रियों, एक माह से मौन
ध्यान में मनमोहन के लीन
तुम्हारे पिता, सरित के कूल
हो गये श्याम – रूप तल्लीन !

कमलाक्षी —

आज किरणों का बन्दनवार
धार कर तिथि के मंगल – द्वार
खुल गये – दिशा-दिशा में दूर
दूर तक उठती जयजयकार !
पिता का फलीभूत तप शुद्ध,
नदी माँ का पावन त्यौहार,
आज देखे हमने जयदेव —
रास की उठने को रणकार —
हर्ष रे हर्ष, हर्ष आकाश,
हर्ष कान्तार, भूमि उन्मत्त
खान में हीरे की अज्ञात
मिले चिन्तामणि – प्रभा प्रमत्त !

चित्राक्षी —

देव, है क्षम्य बाल – अपराध —
सुनाते अपना नूतन गीत —
आपकी सुन पाती सन्तान
सृष्टि का निरुपम मधु – संगीत !

जयदेव — सुनो —

(गीत)

वेत्र – वनों में विकल विहरता विरह – विचल वातास,
मधुकर – मण्डित मधुर माधवी, मलय – निलय मधु मास।
उन्मुख उर न विमुख होगा,
रुदन रुका तो दुख होगा।
कंचुकि – कुण्ठित कलित कठोर उरोज–शिखर रोमांचित,
मन्मथ–मथित महार्णव मन का, मात्र हलाहल संचित
उन्मुख उर न विमुख होगा
रुदन रुका तो दुख होगा।
कमल–क्रान्त कालिन्दी कलकल, शोक – श्याम जल छलछल,
विषमय विस्मय, वात–विकम्पित वेणु– विकल वन पलपल।
उन्मुख उर न विमुख होगा
रुदन रुका तो दुख होगा।

चित्राक्षी —

देव, मानों सन्धियाँ सब
देह की इस खुल रही हैं —
गागरें आनन्द की ज्यों
शिराओं में ढुल रही हैं।
आज जाना सब अजाना हो रहा है !
काल–अहि निज गुंजलक में सो रहा है !
तन सिहरता है अकारण,
नीर दृग में छलछलाता—
"मृत्तिका–गृह छोड़ आओ !"
कह मुझे कोई बुलाता !
[जैसे स्वप्न में कुछ स्मरण-सा करते हुए]
मृत्तिका–गृह के शिखर पर
केश सर्पिणी–झूलती थी—
तनिक नीचे वङ्क–भ्रू के

आज के दशावतार : ५ वामनावतार



वामन प्रभु 'श्रीपाद' धनिक जनका करते उद्धार।
तीन पगों से नापतौल का है बलि से व्यापार॥

सुशोभित थे तने तोरण—
अर्द्धविकसित जलज दो–दो
हँसे कर मणि–दीप धारण–
बीच में चुपचाप बैठा
कीर लोलुप देखता था–
पक्व विम्बाफल मनोहर
रसातुर जो खुल रहे थे
कलश मंगल के भरे थे,
जघन कदली के खड़े थे
मृत्तिका–गृह में मनोहर
साज सुन्दर सज रहे थे !
छोड़ कर गृह जा रही है
वधू पिय के साथ बहना !
पिता लौटें तो पिता से
धीर हो सब बात कहना !

[गिर जाती है]

नेपथ्य में एक गीत —

चल पुत्री, तेरे रँगूँ हाथ—
द्वारे आये हैं प्राणनाथ !
है सजा हुआ घोड़ा दुवार,
बाँधे सेहरा उसका सवार,
पूछा करती थी बार–बार—
कब आयेंगे साजन हमार !
सौ बातों की अब एक बात–
हैं खड़े द्वार पर प्राणनाथ !

[गीत धीरे–धीरे विलीन हो जाता है]

कमलाक्षी —

आज माँ ने गाया है गीत !
किन्तु यह कैसा है अन्याय—
भगिनियाँ सदा रहीं जो साथ,
हो गयीं विलग आज निरुपाय !

जयदेव —

तुम्हारी थी तन में आसक्ति,
बहिन में थी अतिशय अनुरक्ति—
विभाजित थी ममता की घाट

[मंच पर एक अन्य अतिशय वृद्ध तपस्वी आकर कमलाक्षी की पीठ थपथपाता है ।]

कमलाक्षी — पिता !

[वृद्ध से लिपट जाती है ।]

वृद्ध —

अकेला मुझ को वन में छोड़,
चली जायेगी नाता तोड़ ?
असाधारण है यह अनुभूति—
और हम हैं साधारण व्यक्ति !

[जयदेव से]–

देव, चित्राक्षी को ले साथ
जाइये, अतिशय हुआ विलम्ब–
रास का मण्डल हो बेचैन
आप की तकता होगा राह
और फिर उत्सव होगा आज,
रचेगा रसमय रुचिर विवाह !

जयदेव — [पृथ्वी पर पड़ी चित्राक्षी से]

उठो पुत्री, चल कर शृंगार
बहुत करना होगा निशि पास !
स्वयं भगवान करेंगे मुग्ध
तुम्हारा सुन्दर कच–विन्यास !

[चित्राक्षी उठती है । जयदेव उसका हाथ पकड़ कर एक ओर को ले जाते हैं । वह चुपचाप जाती है ।]

कमलाक्षी — (अधीर स्वर में)–

अहे चित्राक्षी ! चित्राक्षी !
अरी ओ, चित्राक्षी निष्ठुरे ! !

[चित्राक्षी बिना पीछे देखे चली जाती है ।]

वृद्ध —

नहीं सुन सकती कभी पुकार
वहाँ है सकल पथों का अन्त !
मूक है भाषा, विजड़ित कण्ठ,
किन्तु अभिव्यक्ति असीम अनन्त !
विश्व के सकल स्वरों को रुद्ध
सर्वथा होते हैं जब कान—
अचानक तब होती है श्रव्य
मनोहर मुरली की मधु–तान !

कमलाक्षी — [रुक कर नदी को देखते हुए]–

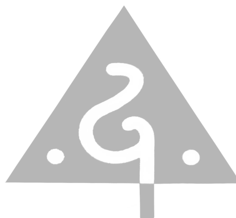
आज नदी माँ, आज मदी माँ,
जब कि तुम्हारा उत्सव था माँ !....

[वृद्ध के कन्धे पर सिर रख कर फूट–फूट कर रो पड़ती है ।]

य व नि का

अनुक्रमणिका







मैं तो पसीने से तर-बतर था। और दरवाज़े पर खड़ी थी एक सुंदर रमणी! उसे देखते ही मेरे हाथ से अमोघ शस्त्र गिर पड़े। और ... हाय! वह रमणी तुरंत पीछे मुड़ी और मैं अवाक् होकर देखता ही रहा....

बिना बुलाया दोस्त!

वसंत सबनीस

मेरा मित्र मनू माने घूस के समान चूहेपर बड़ी कविता लिखकर मुझे सुनाता है। वह चूहे जैसा ही कब मेरे घर में आता है इसका मुझे पता नहीं लगता और मैं विवश हो जाता हूँ। चूहे पर लिखी उसकी कविताएँ सुनते ही मेरी आँखों के सामने अनगिनत चूहे दौड़ने लगते हैं। काले चूहे, भूरे चूहे, चितकबरे चूहे, छोटे चूहे, बड़े चूहे, पतले चूहे, मोटे चूहे...... और मुझे सभी चूहों का स्मरण होता है...।

वैसे तो चूहों के साथ मेरा कुछ निकटतम संबंध है यह बात सही है। मैं उन्हें मारता हूँ, घरसे निकाल देता हूँ फिर भी मैं बिल्ली जैसा उनका बैरी नहीं हूँ, यह मेरे घर का कोई भी चूहा कह सकेगा। मैं उन्हें खाता नहीं इसका उन्हें विश्वास है। सच कहिये तो खाने के संबंध में इन चूहों ने ही मुझे हरा दिया है। चूहों ने मेरी कौन-सी चीज नहीं खायी है? मेरा खाना खाया, दाना खाया, कपड़े खाये, नोट खाये, गद्दियाँ खायीं, तकिया खाया और मेरे गाँवके घरमें रखी खल्ली भी अपने बापदादाओं की जायजाद समझ कर खायी हैं। वास्तव में चूहों ने इतने अपराध किये हैं और मेरी चीजें नुकसान की हैं कि उन्हें किसी तरह क्षमा नहीं करनी चाहिए। फिर भी मुझे उन पर चिढ़ नहीं आती। मैं जरा उदारता से ही उनके साथ बरताव करता हूँ। इसीलिए मेरे घरमें बिल्ली नहीं बिचरती। क्योंकि चूहे के बहाने घरमें प्रवेश करनेवाली बिल्ली, बिमारी खत्म होने पर भी दवाई पिलाते रहनेवाले वैद्य के जैसे महँगी होती जाती है।

मुझे बार-बार लगता है कि चूहेका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली होगा।—क्यों कि मानवसे प्रभावित हो चूहे को मानव जैसा बरताव करते मैंने कहीं भी नहीं देखा। लेकिन मैंने कई मानवों को चूहे जैसा बरताव करते देखा है। औरों की बात छोड़ दीजिए मेरे जीवन में आयी स्त्रियाँ — बेशक उनकी संख्या चूहों की अपेक्षा में अत्यल्प है — चूहे जैसी धीरे-धीरे मेरे जीवनमें आयीं, चूहे जैसी टिमटिमाती आँखोंसे गरदन हिला कर ताकती रहीं और देखते-देखते मेरा हृदय और जिन्दगी कुतर कर चूहे जैसी खिसक गयीं। फ़र्क केवल इतना है कि उनके द्वारा कुतरे गये हृदय और जीवन को मैं रफू करके फिर एक बार उपयोगमें ला सका लेकिन चूहों द्वारा कुतरे हुए कपड़े व नोट मैं फिर उपयोग में न ला सका।

वैसे वे स्त्रियाँ चली गयीं और साथ-साथ उनकी यादें भी नष्ट हुईं। पर चूहे मुझे कभी छोड़ कर नहीं गये। मैंने निवासस्थान बदले, गाँव बदले लेकिन उनके साथ-साथ चूहे भी बदले। वे तो शाप जैसे मेरा पीछा कर रहे हैं। जहाँ चूहा नहीं है ऐसा निवासस्थान खोज कर मैं गया जरूर, पर वहाँ जाते ही चार-छः दिनों के भीतर ही बिलकुल नजदीकी रिश्तेदार की हैसियत से चूहे उस घर में अपना निवासस्थान बना लेते हैं! ऐसा कई बार हुआ है। आज तक प्रायः सभी निवासस्थानों में मैंने अपने किराये के साथ चूहोंका भी किराया चुकाया है! वैसे तो कई चूहे मेरे

वसंत सबनीस :

आप मराठी भाषा के एक कवि एवं विनोदी लेखक हैं। विनोद-पूर्ण लेख लिखने वाले मराठी भाषा के जो इने-गिने लेखक हैं उनमें आप अव्वल हैं। इस वर्ष पहली बार आप दीपावली में लिख रहे हैं।

घरमें रहते नहीं थे। फिर भी रातको मानो अपनी ड्यूटी मान कर यथा समय झरोखे से प्रवेश पा लेते थे। नये निवासस्थान में काफी समय तक चूहेका अस्तित्व महसूस नहीं होता। लेकिन एक दिन रसोई – घर के बरतनों के शेल्फ से कोई सटक जाता है। आभास तो साये का होता है लेकिन मैं आँखें मूँद कर भी जान जाता हूँ कि यह चूहा ही है। अब तो चूहों की 'पगध्वनि' तक पहचान लेने को मैं अभ्यस्त हो गया हूँ! इसी से तनिक भी हलचल होते ही मैं चूहे की आहट बता देता हूँ इतनी जानकारी के बाद भी मुझे माफ कीजिये कि, चूहे की गंध से मैं अब तक परिचित नहीं हूँ! — कौन जाने, भविष्य में शायद उस से भी परिचित हो जाऊँ! थोड़े ही दिन में उनकी संख्या बढ़ने लगती है! और उसके बाद पतीली में, बटलोही में, डिब्बे में, डिब्बे के पीछे चूहे दिखायी देते हैं। चूहे की दौड़ – धूप के बजाय बीवी की दौड़– धूप ज्यादा होने लगती है। गालियों के पत्थरों से हट नहीं जाने पर बेलन से निकाल दिया जाता है फिरभी चूहा टस-से-मस नहीं होता। तब बेचना हाथ में पकड़ कर गुस्से में मेरे पास आती है और मैं झट समझ लेता हूँ कि अब चूहा-कर्तव्य की वेला आगयी है। मैं बिलकुल शांतिसे चूहोंको निहारताहूँ। उनकी संख्याका अंदाजा लगा लेता हूँ। क्योंकि उनकी संख्या केवल दो होने पर भी वे इतनी चपलता से चारों ओर दौड़ते हैं कि दस चूहों का आभास हो जाता है। सभी चूहे अफ्रीकी आदमी जैसे एकरुप दिखायी देते हैं इसलिए एकही चूहा बारबार गिना जाता है।

जानकार कहते हैं कि कहानी लिखने के लिए अब तंत्र की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन चूहा मारने के लिए तंत्र अब भी अत्यंत आवश्यक हैं। मैं तो अपना एक विशेष तंत्र उपयोग में लाता हूँ। चूहों की संख्या का अनुमान करता हुआ मैं शांतिपूर्वक उठ कर खड़ा होता हूँ, एक हाथ में जूता और दूसरे में उल्टा झाड़ू लेकर मैं चुप्पीसे अपनी जगह पर बुत के समान बैठ जाता हूँ। चूहा कोने में जाते ही उसे तिरछे जूते से घायल करता और बादमें झाड़ू से पीटता हूँ। इस तंत्र से चूहे की अपेक्षा झाड़ू अधिक संख्यासे नष्ट हो गये यह एक अलग बात है। लेकिन चूहे मारने का नशा चढ़ते ही झाड़ू तो किस झाड़ की पत्ती यह भावना पैदा होती है। कई बार एक ही चूहे ने मेरे दो चार झाड़ू नष्ट किये हैं। मैं हार जाता हूँ लेकिन हटता नहीं। मैं खामोश बैठकर चूहे की हलचल ध्यानपूर्वक देख लेता हूँ। पहले हमले में चूहा मिलता नहीं है। केवल उसके आने-जाने के मार्ग का पता चलता है। चूहा प्रायः सीधा मार्ग छोड़ता नहीं है। जिस मार्ग से वह घर में प्रवेश पाता है उसी मार्ग से वह बाहर आता है। घेरे जाने पर ही वह दूसरा रास्ता ढूँढ निकालता है। उस के दौड़ने के तरीके





से पता चलता है कि वह मार्ग से अभ्यस्त है या नहीं। आदी चूहा ही पूर्वनिश्चित फासलेको लाँघ कर घर के बाहर भाग जाता है। लेकिन नया चूहा बावलापन से टेढ़े–मेढ़े रास्ते से दौड़ता है–जैसी-तैसी जगह में छिपना चाहता है या चढ़ने की कोशिश करता है और बावलापन से मुहब्बत करनेवाले अधपके जवान जैसा झट मिल जाता है।

चूहे के अक्लकी एक त्रुटि यह है कि वह अपनी पूँछ अक्सर भूल जाता है। बड़ी अक्लमंदी से वह बिलकुल छोटी जगह में अपना पूरा शरीर छिपा लेता है पर उसकी पूँछ अस्त–व्यस्त लटक रही है, यह बात तो उसके ध्यान में आती ही नहीं। उसकी चपलता सुंदर रमणी की आँखों को शर्माती है। मुहब्बत के धोखेबाज खेल खेलनेवाली रमणियाँ, चूहे से हीं चंचलता सीख लें!

चूहा जब तक मेरे समीप नहीं आता मैं उस पर हमला नहीं करता। और जब मैं इस पर चढ़ाई करता हूँ तब उसे आघात पहुँचता है ऐसी बात नहीं है। जीवन में कई बार मैं निशाने चूका हूँ इसलिए यदि चूहे का निशाना भी गलत निकले तो कुछ असंगत नहीं होगा। मैं तो खास लक्ष्य पर दृष्टि केंद्रित करके जूता फेंकता हूँ, तो भी चूहा कहीं खिसक जाता हैं और मेरा चेहरा उतर जाता है!



आदमी और चूहा दोनों में क्या नासमझी हैं यह तो मैं नहीं जानता हूँ। लेकिन मेरे मनमें तो चूहों के बारे में कई तरह की नासमझी थी–एक तो यह नासमझी थी कि चूहा निर्बुद्ध होता है! लेकिन चूहा तो बिलकुल चालाक है। इतना ही नहीं वह तो बदमाश है। जब वह किसी मौके की जगह में छिप जाता है तब हाथ-पाँव मारने पर भी अपनी जगह छोड़ वह बाहर नहीं आता। अंततः हमारा विश्वास बढ़ता है कि वह उस जगह पर होगा ही नहीं और हम उसका पीछा छोड़ देते हैं। और वह उसी जगह में छिपकर मजा चखता है।

अभिनय के बारे में तो वह मशहूर नटनियों को भी हरा देगा। जब वह आदमी के हाथ में आता है और जब उसे लगता है कि अब मुक्ति के लिए कोई चारा नहीं तब वह अत्यंत छोटे आघात से भी झट नीचे गिर जाता है और मरनेका ऐसा बहाना करता है कि उसे मारनेवाला वहीं मारना बंद कर देता है। वह शायद जानता होगा कि मरे हुए को मारना आदमी आनुचित मानता है। मैंने एक ही आघात से चूहे को मार डाला इसी घमंड में आदमी खुशी से फूल कर गाफ़िल हो जाता है यह भी उसे चूहे को ज्ञात है। इसलिए वह उस समय इतनी उत्कृष्ट तो मर जाता है कि असली नट भी रंगमंच पर इतनी कुशलतासे मरने का अभिनय नहीं कर पायेगा! अंत में तुम्हारी इस घमंड भरी गफ़लत का फ़ायदा उठाकर वह खिसक जाता है।

आदमी ज्यादा-से-ज्यादा बिल तक दौड़ सकता है यह तत्त्व भी वह भली भाँति जानता है। इसलिए किस हद तक वह आदमी अपना पीछा करेगा इसका भी उसे ज्ञान होता है। यही सब ध्यान में रख कर ही वह अपने पैंतरे तय कर लेता है। आप तो अलमारी के नीचे से उसे ढकोसने रहते या अपनी सारी ताकत लगाकर लकड़ी ठूँसते रहते हैं और वह हौले से अलमारी के ऊपर बैठकर चुप्पी साधे आपकी ओर देखता रहता है और आपको मूर्ख बनाता है। और आप के आघात करनेके पहले ही वह आपके पाँवों के बीच से ही खिसक जाता है।

मेरी शादीके कुछ ही दिन बीते थे। यहीं समझिये कि अभी बरतनों में चूल्हे की पूरी कालिख भी नहीं थी।... शायद रविवार की दोपहरिया थी। ठीक उसी समय चार चूहे मेरे घरमें घुस पड़े। इस नयी गिरस्ती का पूरा कर्ता-धर्ता मै ही हूँ और यहाँ मेरा सम्पूर्ण स्वामित्व है इस बात का गर्व मेरे सुविकसित मन में एकदम ताजा था। अतः इन अनधिकार प्रवेश करनेवाले चूहों पर हमला करना अत्यन्त आवश्यक था। किस से कहना और किसकी सुनना, अपनी बहादुरी जोर मारने लगी और तुरत मैंने पने अत्यस्त दाहिने हाथ में उलटा झाड़ और बायें हाथ में जूता लेकर मैदानेजंग में खड़ा हो गया। काफी समय तक लड़ाई हुई। घर के तीनों कमरों में मैंने और चूहों ने पूरा उत्पात मचाया। पर एक भी चूहे को चोट लगी हो ऐसा नहीं दिखायी देता था। दौड़-धूप के इस सिलसिले में चारों चूहों की गति-विधि पर एक साथ ध्यान देने के लिए लिए सेनानी का समर-चातुर्य सम्पूर्ण होना अत्यावश्यक है। मैं तो पसीने से तर-बतर हो चुका था। बाहरवाले कमरे में यह गोरिला–युद्ध शुरू हुआ था कि इतने में किसीने दरवाजा खटखटाया। पड़ोस के शैतान बच्चे इस समय जय-पराजय के मध्यकाल में ही पूरी गड़बड़ी मचाना शुरू कर देंगे इस विचार से मुझे जोरका गुस्सा आया। हाथ मे जूता और झाड़ू पकड़ कर मैंने दरवाजा खोला। दरवाजे पर एक सुन्दर रमणी खड़ी थी। उस समय मैं केवल एक हाफपैंट और गंजी पहने हुए था तथा पूरी देह पसीने से भींगी हुई थी। और, हाथों में था अमोघ शस्त्र। उसने मेरी ओर इतनी तीक्ष्ण दृष्टि से देखा कि मेरे हाथसे जूता और झाड़ू गिर पड़े। चूहे के जैसा ही अंग चुरा कर मैं दरवाजे पर खड़ा हो गया। और मेरे कुछ पूछने के पहले ही वह रमणी तुरत पीछे मुड़ पड़ी, मैं तो अवाक् होकर देखता ही रह गया। चूहों पर ऐसा गुस्सा आया कि अगर एक भी दुष्ट चूहा पकड़ में आये तो कच्चे चबा जाने की कोशिश करता! इस वक्त तो मेरी हालत 'भई गति सांप–छुछुन्दर केरी' की कहावत को चरितार्थ कर देने लायक थी। सच कहिये तो चूहे को निकाल डालने का यह अद्भुत विचार पर मनमें आना मेरे जीवन में प्रथम और अंतिम





प्रसंग था ! बाद में तो मुझे पता चला कि वह 'बिना बुलाये आ कर चली जानेवाली' रमणी तो मेरी पत्नी की प्रिय सहेली थी और हमारा नया संसार देखने के लिए खास तौर से आयी थी ! लेकिन उसने मेरे बारे में, मेरे संसार के बारे में और मेरी पत्नी की भवितव्यता के सम्बंधमें अपनी एक भयानक राय बना ली होगी इसमें कोई शक नहीं। क्यों कि बादमें मैंने सुना कि मेरे बारे में उसने किसी से कहा था कि, 'मेरा दिमाग नॉर्मल नहीं है।' लेकिन अबतो मुझे दुख सिर्फ इस बात का है कि उस रमणी की नासमझी मैं अब तक नहीं हटा सका। उसी दिनसे मैं दिन में चूहों की छेड़छाड़ नहीं करता। दिन में मैंने युद्धबंदी घोषित कर दी है।



चूहों के लिए मेरे मनमें प्यार है। इसका कारण यह है कि चूहे के शिकार में विनोद काफी मात्रा में होता है। चूहे के शिकार जैसा हास्यपूर्ण शिकार और दूसरा नहीं है।... कभी मेरे यहाँ एक मेहमान आये थे सचमुच बेचारे थे बहुत हीं अधिक सज्जन, तिकड़मबादी होकर अपने को सज्जन घोषित करने वाले सज्जन नहीं ! एक दिन वे खाना खाने के बाद जरा आराम कर रहे थे कि बाहर वाले कमरे में मुझे आते समय दरवाजे के पीछे एक चूहे का बच्चा चुलबुलाता दिखायी पड़ा। मैं ने ऐसे ही दरवाजा हिलाया। नतीजा यह हुआ कि चूहे का एक बच्चा बाहरी कमरे में भाग पड़ा। नया-सा लगता था इसलिए जरा हलचल करते ही इतस्ततः दौड़ने लगा और झट मेहमान के पाजामे में घुस गया। मेहमान कुर्सी पर से कूदे और जोर से चिल्लाने लगे — 'भई क्या है ?... भई क्या है ? चिल्लाते चिल्लाते पाजामा झटकाने लगे। तबतक वह बच्चा पाजामे के एक छोर से अंदर घुसकर दूसरे से निकल पड़ा और जमीन पर कूद कर भाग गया। आज भी उस घटना का स्मरण होते ही मैं हँसी से लोटपोट होता हूँ।

बिलकुल सीधे आदमी भी जब चूहे का पीछा करने लगते हैं तब उनकी सूरत रमणी का पीछा करनेवाले प्रेमीकी जैसी दिखायी देती हैं। चूहे का शिकार खेलने में सिर्फ विनोद है इतना ही नहीं, इसका तो शिकार देखने में भी एक प्रकार का मजा है। चूहे को मारते समय आदमी भी चूहे जैसा बर्ताव करता है। वह दौड़ता है, भागता है कूदता है, असबाब पर चढ़ता है, मानो मुहब्बत करनेवाले प्रेमी जैसा स्वच्छन्द बनता है !

हमारे पड़ोस में 'बाद' जगोबा नामक सज्जन रहते थे। उस महोदय का नाम तो जगोबा कुलकर्णी था लेकिन हर बात के बारे में 'बाद' शब्द अंतमें जोड़ने की उन्हें आदत थी। मान लीजिये आपने पूछा — "क्यों जगोबा, चाय तो पियेंगे न ?"

जगोबाजी झट बोलेंगे — "नहीं – नहीं – जी ! आज चाय से हम 'बाद' हैं !"

"क्यों जी, जगोबा ! आज छुट्टी ली हैं ?"

"हाँ... हाँ ...... आज तो दफ्तर 'बाद' है !"

इस लिए गली के सभी लोग उसे 'बाद' जगोबा पुकारते। कुटुंब के नाम पर केवल दो ही व्यक्ति – पति और पत्नी। बच्चे तो 'बाद' थे। कई दिन जगोबा के घरमें रातको दौड़ – धूप की आवाज सुनायी देती। हमें तो कुछ पता न चलता कि आखिर बात क्या है ? केवल शब्द कान पर आ पटकते – 'चकमा दीजिए' 'चकमा दीजिए' और अंतमें जगोबाकी चिल्लाहट – 'बाद' सुनायी देती। मेरी समझमें कुछ न आता। क्या ये पति-पत्नी रातको खेल खेलते हैं ? भला, रातको उनको घरमें हम कैसे जा पायेंगे ? उनका किस प्रकार का खेल चला होगा कौन जाते ! इस मामले का पता लगाने का तब मैंने अपनी पत्नीके सामने प्रकट किया। लेकिन पत्नी के मना करने पर मैं स्वयं 'बाद' हो गया। अंतमें एक रात जगोबाजी धड़ाम आवाज करते दरवाजा खोलकर बाहर आये और 'बाद' 'बाद' चिल्लाते हमारे दरवाजे तक आकर दरवाजा लकडी से पीटने लगे। मैं दरवाजा खोलकर देखने लगा, तो सामने धोती का निचला हिस्सा कमर के पास खोंस कर पसीने से तर-ब-तर शरीर से हाथमें लकड़ी पकड़कर जगोबाजी खड़े हैं।

"क्यों भई जगोबा ! आखिर हुआ क्या ?"

"चूहे को 'बाद' करनेवाला था लेकिन कहीं खिसक गया। ये राक्षस हमें काफी परेशान करते हैं।"

"मतलब रोज रात आपके यहाँ जो दौड़-धूप चलती हैं..."

"हाँ हाँ...वहतो चूहे को बाद करनेके लिए ही चलती हैं... भला आप क्या समझ बैठे, मेरी पत्नीको 'बाद' करने के लिए चलती होगी ?"

"नहीं...नहीं भई ! लेकिन आपकी देवीजी तो कहती रहती हैं चकमा दीजिए... चकमा दीजिए..."

"वह तो मेरे लिए सूचना होती है और चकमा दो चूहेको...ना और किसीको...समझे न ? आखिर चूहा मारना कुछ मामूली बात है ? उसे चकमा देना होता है, घात में ताकना, सोने का बहाना करना पड़ता है..."

"अरे भई, चूहादान क्यों नहीं उपयोग में लाते ?"

"छोड़ो यार ! चूहादान क्या करेगा खाक ! उससे क्या चूहे बाद होते हैं ? भैया, ये तो अणुयुग के चूहे हैं, तुम्हारे त्रेता युग के चूहादान में थोड़े ही मिलनेवाले हैं ? इसलिए उन्हें बाद करने का यही एक मार्ग है।"

"लेकिन यह कितने दिन चलेगा ?"

"मैं और चूहे जीवित हैं वहाँ तक ! दोनों में से एक बाद होते ही काम पूरा ! माफ कीजिएगा...इससे आपकी नींद तो बाद हुई होगी ! खैर, आप सो जाइए... हमारा तो यही रिवाज..."

इतनेमें श्रीमती जगोबा दरवाजे में आकर बोली..."अजी सुना ! और दो मोटे चूहे पलंग के नीचे हैं।"

बाद जगोबा तीर के समान दौडा। मैं भी उसके पीछे गया। पलंग पर गद्दी रखी हुई थीं कि गद्दी पर पलंग यह बताना कठिन है; ट्रंक, रद्दी, कबाट, बालटी, डब्बे आदि सभी चीजें स्थानभ्रष्ट होकर इधर-उधर बिखुरी हुई थी। उन्हीं के बीच बड़ी चालाकी के साथ खूब तेजी से जगोबा अपने कदम रख रहा था। कभी पलंग पर कभी ट्रंक पर और कभी कबाट पर वह चढ़ जाता, नीचे ऊपर चारों ओर देखता फिर 'बाद' कहते हुए डंडा मारता और फिर खुद ही 'ना, अभी बाद नहीं' का उत्तर दे देता था। आखीर में, जगोबा जब पलंग के नीचे खड़ा था, 'बाद' कहते हुए देख रहा था उसी समय दो चूहों ने पलंग पर चढ कर जगोबा के कंधे पर से कुदक्की मारी और पौबारह हो गये। जगोबा भी 'बाद' होकर पतंग के नीचे से सरकता हुआ बाहर आ गया।

उसके बाद भी जगोबा की यह 'बाद' क्रीड़ा बहुत दिनों तक चालू रही।

ये, ठीक तरह से देखिये तो आदमी और चूहे का सम्बन्ध भाईचारे का है और इस बात को कोई अमान्य नहीं कर सकता। चूहा आदमी के घर में बिल बनाता है और आदमी चूहे के बिल के पास घर बांधता है। इसलिए मनुष्य के जीवन में, निदान गृहस्थ जीवन में चूहे का निश्चित स्थान है। यही तो कारण है कि जीवन के साथ ही वह काव्य में भी घुस आया है। मनू माने का कहना है कि मराठी कविता में चूहे बहुत ज्यादा हो गये हैं तब भी मुझे वे नहीं दिखायी देते। लेकिन मनू जोरदार शब्दों में कहता है कि, मरे हुए टीपे में वे चूहे मर न जायँ इसलिए अपने बिल उन्होंने कविता में बना दिये हैं। उनके मतानुसार मराठी कविता में सोया हुआ चूहापन बहुत ज्यादा मात्रा में है। (यह कहते ही मेरे श्रीखंड में से जूहा निकल रहा हो ऐसा माल्रूम हुआ।) लेकिन वह मुझे अट्टहास के साथ यह दिखा भी देता है और कहता है, एक बात तो यह है कि चूहों की विपुल पैदायशी का गुण कविता ने ले लिया है। दूसरी बात यह है कि आजकल भी कविता की कोई पंक्ति अधूरी लगती है और आगे की पंक्तियाँ चूहों द्वारा कुतरी हुई-सी दिखायी पड़ती हैं! तीसरी बात यह है कि कविता की पहली पंक्ति पढ़कर यह बात समझ में नहीं आती कि यह कविता अपनी समझ में आयेगी कि नहीं और वह कविता चूहे की ही तरह अर्थ ओर आशय के साथ ही आँखों के सामने से गुजर जाती है—आपही कहिये कि यह चूहे का गुण है कि नहीं? कविता का मुख्य आशय छिपाकर कहीं एकाध सार्थक पंक्ति और मध्यभाग में वेणी की पुछल्ली की तरह झूलते हुए चलने की हुनर मराठी कविता ने किस से सीख ली है? यह नहीं माल्रूम होता।

मनू माने को अपनी गर्दन हिलाने के बजाय और कोई उत्तर नहीं दे सकता। वह कहता है कि सुप्त मूषकता (सोये हुए चूहे का भाव) कवितामें नहीं चाहिये। सीधे ढंग से बड़े चूहे को ही आने दिया जाय। वह तेरे चूहा निकालनेवाले यहाँ मौजूद हैं। यह कह उसने अपनी कविता निकाली और सुनाने लगा:—

> किसी का तो बना देवर—मैं किसी का धीर हूँ
> कुछ कहा करते कि मैं तो पागलों का पीर हूँ
> बात सच्ची है मुझे मालूम भाई, मैं नहीं देवर किसी का
> नहीं हूँ मैं धीर चाहे वीर अथवा तीर बिल्कुल
> खीर-भोजी भीरु हूँ मैं, एक पगला मूस, केवल मूस हूँ मैं
> और मेरे लोचनों में वेदना का नीर केवल॥

मनू माने के इस काव्य-विधान को मैंने मान्यता दी कि अब आगे कविता सुनाने का कष्ट न उठावें। और तब मेरे मन में यह बात आने लगी कि चूहे से अपेक्षाकृत हम भी किसी तरह भी भिन्न नहीं हैं। चूहेदानी में कैद हो जाने पर चूहे को बिल्ली से सुरक्षित होने के आनन्द का अनुभव होता है कि नहीं यह मुझे नहीं माल्रूम। पर हम तो नौकरी के पिंजरे में रह कर सुरक्षितता का आनंद लूटते हैं। चूहे को पिंजरे में कैद होने का अर्थ ज्ञात रहता है; पर हमें भी यह बात माल्रूम है फिर भी हम उसे दूर नहीं रख सकते, यह जानकर ही कदाचित् चूहे का उपद्रव होते हुए भी मैं उसे चार-आठ दिनों तक उसे बंदरख कर उसके हृदय में अपनी सहानुभूति व्यक्त करता हूँ

और, जब मैं मन की आँखों से यह देखता हूँ तो मन को धक्का लगता है। कारण, उसी समय मुझे एक चूहा दिखायी देता है। डरपोक हो कर भी अपने प्राण का संकट देख कर पलायन करने वाले अस्थिर न-जाने कितने चूहों को मैंने इस धरातल पर मार डाला है, कितनों को भगा दिया है फिर भी क्या इस चूहे को मैं नहीं भगा सकता? इसी विचार-प्रवाह में मुझे अचानक मनू का (अर्थात् हमारा मित्र मनू माने-जो अभीतक विस्तृत था) स्मरण आगया और साथ ही उसकी कविता की अंतिम पंक्ति भी सुनायी पड़ने लगी —

> मूस, केवल मूस मैं हूँ
> और मेरे लोचनों में वेदना का नीर केवल। ★

रूपा:— **नाना वाडेकर**

यदि किसी नारी को प्राणदण्ड भी मिलता हो तो प्रथम वह अपने श्रृंगार-प्रसाधन के लिए कुछ क्षणों की याचना करेगी।





कवित्व का स्पर्श व्यष्टि से लेकर समष्टि तक फैला हुआ माना जाता है। और ऋग्वेद में काव्य एवं कवि की बड़ी अर्थ-गर्भित व्याख्या है।



ऋग्वेद में कविधर्म का तात्त्विक निरूपण

रतनलाल जोशी

वैदिक वाङ्मय में कवित्व एवं देवत्व एकरूपात्मक हैं। कवित्व को देवताओं का गुण-वैशिष्ट्य स्वीकार किया गया है! ऋग्वेद से लेकर उपनिषद्-साहित्य तक का अध्ययन स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर देता है कि आर्य-संस्कृति में कवित्व की परिधि कला के पाश्चात्य-अर्धा बिन्दु तक ही सीमित नहीं थी—उसका मानक्षेत्र अत्यंत विस्तृत था। देवत्व की सीमा जिस प्रकार अनंत है, वैसे ही कवित्व का स्पर्श भी व्यष्टि से लेकर विराट् तक फैला हुआ माना जाता था। वेदों में कवित्व को देवत्व का जो प्रतिरूपक माना है उसका केन्द्रस्थ अभिप्राय यही है कि कवित्व अंतःकरण की दिव्यता का अविच्छिन्न धर्म स्वीकार किया जाता था। वेदों के सभी देवताओं में कवित्व-शक्ति की अंतःस्फूर्ति है। मनुष्यों में भी कवित्व-प्रेरणा के प्रमाण मिलते हैं, लेकिन इस प्रेरणा का अवतरण उसी मनुष्य के अंतःकरण में हो सकता है जो आध्यात्मिक उत्कर्ष के स्तर पर देवताओं के समान दिव्य हो गया हो। 'साहित्य-दर्पण' तक इस शर्त को पूरी-पूरी मान्यता दी जाती प्रतीत होती है। बाद के संस्कृत कवियों और हिन्दी के कवियों ने अपने आचरण में इस शर्त की पूर्ति नहीं की। भक्ति-काल का उदय इस दिक् भ्रांति की प्रतिक्रिया थी जिसमें तुलसी ने कवित्व एवं देवत्व को फिर पर्यायवाची बना दिया था।

वेदोक्त 'तम आसीतमसा गूढ़म्' सूक्त के अनुसार इस दृश्य संसार की उत्पत्ति ऐसे अंधकार में से हुई है जो स्वयं अंधकाराच्छादित था। यह अंधकार 'असत्' का प्रतीक है। इस 'असत्' को वेदों में रात्रि की संज्ञा भी है—'रात्रि जगतो निवेशनीम्' अर्थात् ऐसी रात्रि जो जगत् के समस्त अव्यक्त पदार्थों को अपने अंधकारमय हृदय में धारण किये हुए है। हमारे सारे त्रिगुणात्मक संसार के ऊपर इस 'रात्रि' का प्रसार है। इस रात्रि के भीतर जो 'द्यौ' है उससे 'उषा' की उत्पत्ति होती है जो 'सूर्य' को अंधकार से मुक्त करती है। यह 'सूर्य' ग्रहण के प्रगाढ़ आवरण में निरुपाय पड़ा हुआ था। 'असत्' से 'सत्' और 'अव्यक्त' से 'व्यक्त' की ओर प्रगति की ओर भी अधिक स्पष्ट करने के लिये इस रूप को काफी लम्बा बनाया गया है। सारा 'देवासुर संग्राम' सत्-असत् के ही पारस्परिक संघर्ष का विराट् रूपक है। प्रकाश या 'सत्' एवं अंधकार अथवा 'असत्' की निराकार शक्तियों के बीच जो संग्राम अहर्निश अनंतकाल से चल रहा है देवासुर-संग्राम के रूपक द्वारा उसे ही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। देव-प्रकाश-रूपिणी शक्तियों के व्यंजक हैं तथा असुर अंधकार की शक्तियों के अधिपति माने गये है। वेदों में असुरों को 'दस्यु' या 'पणि' भी कहा गया है। 'पणि' कर्मेंद्रियों अथवा जड़ भौतिक सत्ता का उद्बोधक माना जा सकता है। दूसरे शब्दो में, 'पणि' असत् की ही शक्तियाँ हैं।

प्रकाश अथवा सत् की खोज करनेवाले व्यक्तियों को वेदों में 'आर्य' भी कहा गया है। 'देव' और 'आर्य' कहीं-कहीं पर्यायवाची है तथा कहीं-कहीं दोनों की दो अलग अलग श्रेणियाँ हैं। 'देव' एवं 'आर्य' पणियों से पूरा-पूरा वैभिन्य रखते है। आर्य ब्रह्म आदि शब्द का गायक है, देवता भी शब्द में आनंद प्राप्त करते हैं तथा शब्द को धारण करते हैं। इनके विपरीत 'असुर' 'ब्रह्मद्विष' अर्थात् शब्द से द्वेष करनेवाले हैं। असुरों के पास दिव्य प्राणशक्ति अथवा मुख नहीं है जिससे वे अपने को व्यक्त कर सकें। असुर 'आमन्यमाना' भी हैं अर्थात् उनमें शब्द-सन्निहित सत्य को मनोमय करने की प्रकृत शक्ति भी नहीं है। उनके प्रतिकूल आर्य 'मन्यमाना' ही नहीं हैं वरन् धीर, मनीषी एवं कवि भी हैं। आर्यों की भांति देव भी द्रष्टा—ज्ञान को धारण करने वाले 'प्रथमो मनोताधिय, काव्य' अर्थात् अत्यंत उत्कृष्ट विचारक हैं। आर्यों के जीवन का चरम लक्ष्य देवत्व का साक्षात्कार घोषित किया गया है – वे यज्ञ, शब्द एवं विचार द्वारा अपने भीतर के अचेतन देवत्व को अपने व्यक्तित्व को प्रकाशमान करने की साधना करते हैं। उनके विपरीत असुर 'देवद्विष' अर्थात् देवत्व के विरोधी होते हैं और वे देवत्व के मार्ग में सदैव 'देवनिद'—देवत्व के बाधक—बन कर

जीवन के विकास को रोकते हैं। वेदों में उन्हें इसीलिये 'अवृध'—विकास-विरोधी—भी कहा है; देवासुर-विरोधी भी कहा है। देवासुर-संग्राम का रहस्य इन पंक्तियों से और भी स्पष्ट हो जाता है।

नीचे के श्लोकों से सुरासुर या सत्–असत् का यह रूपक और भी स्पष्ट हो जाता है।

" न्यक्रतून ग्रथिनो मृध्रवाच
पणिरश्रद्धा अवृधा अयज्ञान्
प्रप्रतान दस्यूरग्निर्विवाय पूर्व-
श्चकारापरां अयज्यून्।
ऋग्वेद ७–६–३

जो असुर या पणि कुटिलता की ग्रंथियां उत्पन्न करने वाले होते हैं, जिनमें कर्म करने का संकल्प नहीं होता, जो वाणी को विकृत करते रहते हैं, जो श्रद्धाविहीन हैं और विकास जिन्हें प्रिय नहीं होता, उन्हें उस महान् अग्नि ने बहुत दूर भगा दिया है।"

तत्पश्चात् अग्नि ने प्रकाश को भी बंधन से मुक्त किया " यो अपाचीने तमसि मदन्ति प्राचीश्चकार नृतम शचीत्रि "।

अर्थात्, " जो उपायें निम्नतम अंधकार के स्तरों से दबी हुई थीं, अग्नि ने अपनी शक्तियों से उन्हें सर्वोच्च दिशा में प्रेरित कर दिया।"

इससे भी आगे बढ़ कर " यो देल्यो अनमयद् वधस्नैर्यो आर्यपत्नीरुषसश्चकार।"

अर्थात्, " उसने अपने आघातों से उस दीवारों को धराशायी कर दिया जो सीमित करने वाली थीं और फिर उसने उन उपाओं को आर्य की पत्नी अर्थात् सहचारिणी बना दिया।

सत्यानुभूति को व्यक्त करने वाला यह बहुत ही उत्कृष्ट रूपक वैदिक ऋषियों की वाणी द्वारा वर्णित हुआ है।

वैदिक वाङ्मय के अनुसार मानवीय सृष्टि-परंपरा में अग्नि का स्थान बीजरूपात्मक है। वेदों में 'अग्नि' शब्द का प्रयोग अत्यंत विस्तृत अर्थ-परिधि में हुआ है। ऋग्वेदानुसार 'अग्नि' ही मानवीय सृष्टि-परम्परा का आदि मानव है। मानव-विकास की परम्परा का प्रारम्भ करने के लिये ही अग्नि की उत्पत्ति की गई है। अग्नि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे वाणी के दिव्य वरदान के साथ ममत्व का प्रसाद भी मिला था। ये दोनों वरदान मानव-सृष्टि के विकास की प्रगति में बड़े महत्वपूर्ण हैं क्योंकि सारी मानवीय संस्कृति के मूल प्राचीर और प्रेरणायें ये दो वरदान ही हैं। ममत्व जीवन की केन्द्रीभूत प्रेरणा है–व्यष्टि और समष्टि के रूप और अरूप की मूल प्रेरक शक्ति है। नाश और विकास के दो दूरस्थ किनारों को जोड़ने वाला सेतु वस्तुतः यह ममत्व ही है। वाणी ममत्व की व्यंजक शक्ति है। वाणी ही ममत्व को रूप देती है–मूर्त करती है। यही कारण कि वेदों में वाणी को मनुष्य की संचालिका–शक्ति एवं शासनकर्त्री बताया है। आज हम स्पष्ट देख रहे हैं कि वर्तमान संसार में वाणी की शक्ति कितनी महान एवं व्यापक है। मानव और वाणी के सम्बधों के विषय में भी वेदों में बड़ी सतर्कता दिखलाई है। वाणी को मानव की अर्धांगिनी मानते हुये ही सारे विकास-क्रम की भूमिका रची गयी हैं। मानव और वाणी के बीच इस प्रकार का श्रद्धा-सूचक सम्बंध स्थापित करके वेदों ने वाणी की पिथगामिता और स्वेच्छाचारिता काफी नियंत्रित कर दी है। वाणी के संयम एवं माधुर्य के विषय में भी ऋग्वेद में बड़ा प्रेरक निर्देश है। मेधातिथि ऋषि ने अग्नि को आदर्श राजदूत के रूप में चित्रित किया है–' अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् अग्नि ही मनुष्य एवं देवताओं के बीच का सेतु अथवा माध्यम है। यज्ञभूमि पर–पृथ्वी पर देवताओं को अवतरित करने वाला अग्नि ही है। यह अग्नि ' विश्व-वेद ' है, अर्थात् सब प्रकार के ज्ञान एवं विवेक से संपन्न है। उसे ' होता '। यज्ञार्थ देवताओं को आमंत्रित करने वाला। भी बनाया गया है। अग्नि सूक्तों में तो कवि की वाणी की प्रथम एवं अंतिम परिभाषा तक बना दी है।

मधुमंतं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु न कवे।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥
नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उपह्वये।
मधुजिह्व हविष्कृतम ॥ ३ ॥
ऋ १–३१–२–३

अर्थात्, हे शरीर को पतित न करने वाले कवि अग्ने। हमारे माधुर्य-युक्त यज्ञ—सत्कर्म—को तू देवों के अर्पण कर दे।२।

हे मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, सत्र के प्रिय मधुभाषी अग्ने, मैं तेरा आह्वान करता हूं।३।

यहां कवि को 'मधुमंत', 'मधुजिह्व' एवं सर्वप्रिय कहा है। कवि-कर्तव्य एवं कवि-वाणी का जो रूप यहां निर्धारित किया है उसके प्रकाश में यदि आज हम अपने काव्य-सृजन को देख सकें तो कितना अच्छा हो।

व्यष्टि 'अग्नि' जब समष्टि बनता है तब वह 'वैश्वानर' नाम से विभूषित हो जाता है। आदिमानव 'अग्नि' की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद में यह प्रमाण पाया जाता है—

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्न हुषस्य विश्पतिं।
इलाम कृण्वन्न हुषस्य शासनी पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते॥ ऋ. १–३१–११

"हे अग्ने! तू मनुष्यों में नरपति रूप है। तू प्रथम मनुष्य है एवं देवों ने तुझे मानवपरम्परा के लिये बनाया है। मनुष्यों पर शासन करने के लिये तुझे वाणी दी गई है और वंश-विस्तार के लिये ममत्व दिया गया है।"

ममत्व और वाणी का काव्य के साथ सम्बंध काफी स्पष्ट है। ममत्व जीवन मूलभूत रसोद्रेक-स्रोत है। जीवन की सारी इच्छायें ममत्व-रूपी जलाशय की ही असंख्य तरंगे हैं। ममत्व की विराट् परिधि में ही इस नामरूपात्मक जीवन-चक्र की अविराम आवृत्तियां होती रहती हैं। जीव की सबसे बड़ी विशेषता यह ममत्व ही है। जीव और ब्रह्म के बीच जो अभेद्य आवरण है वह वस्तुत ममत्व-प्रसूत ही है। ममत्व पतित होकर जब मोह में परिणत हो जाता है तब वह गुण के बजाय अवगुण बन जाता है। फलतः व्यक्ति अपने भीतर एक भ्रांति मूलक द्वैत का पोषण करने लगता है। यह द्वैत ही क्षय है, मृत्यु है और नैतिक पतन का अनंत-अथाह गर्त है।

वेदों में अग्नि को जहां आदिमानव निरूपित किया है, वहां उसे प्रथम कवि भी माना है! कवि होने के साथ-साथ अग्नि लोक-कल्याण का प्रतीक भी है। उसका कवित्व मनुष्यत्व का ही प्रेरक रूपान्तर है। एक ओर वह देवत्व के स्तर का स्पर्श करता है तथा दूसरी ओर मनुष्यत्व के ठोस धरातल पर स्तंभ की भांति अमर ज्योति का प्रतीक बना रहता है।

त्वमग्नो प्रथमो अंगिरस्तमः कविर्देवानां परिभूषसि व्रतं।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयु कतिधा चिदायवे॥—ऋ० १-३१-२

अर्थात्, हे अग्ने! तू ही अंगिरसों में आदि कवि है और तू ही देवों की मर्यादा का

विभूषित करने वाला है। तू ही समस्त भूत प्राणियोंका को अपने बुद्धि के आलोक से प्रकाशित करता है। पुरुषार्थों का निर्माता और मनुष्य–मात्र का कल्याण करने वाला भी अंततः तू ही है।''

अग्नि जब आदिमानव है तो आदिश्रष्टा भी वही है। मनुंष्य की उत्पत्ति के विषय में वेदों की बार–बार प्रतिध्वनि यही है कि वह अपने मूल रूप में श्रष्टा है, सृजन–शक्ति उसके अंतः करण की मूल शक्ति है। वह मशीन नहीं है, निर्माण या फैक्टरी का उत्पादन नहीं है जैसा कि वह आज बनता जा रहा है। इस श्रष्टा को वाणी का प्रसाद मिला है। अतः कवित्व उसकी अंतर्भूत प्रकृति है जिसे वह देवत्व की सिद्धि में नियोजित करता है।

अमृतरूपिणी अग्नि की वंश-परम्परा में उत्पन्न मनुष्य के भीतर भी अमरत्व है। वंशानुगत संस्कारों के सात पैतृक धर्म का समावेश भी स्वाभाविक रूप से मनुष्य में होना ही चाहिये। ऋग्वेद के आठवें मंडल में अग्नि धीपु प्रथमग्निम्। बुद्धि में अग्नि की ज्योति की प्रतिष्ठा मानी गई है। बुद्धि के मूल में जिस अग्नि के निवास का वर्णन किया गया है उसे हम गीता की शब्दावली में 'ज्ञानाग्नि' कह सकते हैं जो 'चित्' स्वरूपिणी है और 'सत्', 'चित्' स्व 'आनंद' के संयोग में यही अग्नि आत्मा की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। कठोपनिषद् में इस बुद्धि-अनुप्राणित अग्नि को अपने अंतिम विश्लेषण में 'आत्मा' मान लिया गया है।

इंद्रियेभ्य परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मन,
मनसस्तु पराबुद्धि बुद्धेरात्मा महान् पर।
कठ० ३–१०

अर्थात्, इंद्रियों से परे अर्थ है, अर्थों से मरे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे यह महान् आत्मा है।

ऋग्वेद के अग्नि सूक्तों में इस अग्नि की विशद व्याख्या मिलती है! इनमें अग्नि के अनेक विशेषणो में एक विशेषण 'कविक्रतु' भी है 'क्रतु' का अर्थ, 'सृजन शक्ति है। अर्थात् अग्नि को ऐसा कवि माना गया है जिसमें सृजन-शक्ति भी है, जो अपनी भावनाओं में प्रसुप्त मूक नहीं है–जो अपने आपको व्यक्त कर सकता है। अर्थात् आत्मा का निवास प्रत्येक प्राणी में रहता है लेकिन प्रत्येक प्राणी में कवि-प्रतिभा नहीं होती। मेधातिथि ऋषि द्वारा रचित मंत्रो में तीन देवियों का भी विवरण आता है। जिसकी उपासना का कई रूपों में आग्रह किया जाता है। इन देवियों का माता के रूप में सम्बोधित किया गया है। वे ये हैं :–

इला सरस्वती मही तिस्त्रो देवीर्मयोभुव बर्हि सीदन्त्वस्त्रिध। – ऋ१-१३-१

भूमि, सरस्वती और वाणी ये तीन मंगलदात्री देवियां अपनी अमर प्रभा में यहां आसन-प्रतिष्ठित होवो।

मातृभूमि, मातृसंस्कृति और भारती की उपासना के प्रसंगों से हमारा सारा वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। अथर्व वेद का 'मातृभूमि सूक्त' तो इस विषय का अत्यंत उत्कृष्ट एवं प्रेरक प्रसंग है। सरस्वती ही वस्तुतः संस्कृति की प्रतीक मानी जाती है। सरस्वती ही संस्कृति की जन्मदात्री तथा उसके विभिन्न अंग-प्रत्यंगों की पोषक है। कला और साहित्य संस्कृति के प्राण–स्त्रोत हैं। उनका विकास ही किसी राष्ट्र या जाति के उत्कर्ष का बैरोमीटर है। लेकिन संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों के साथ सम्बंध बनाये रखनेवाली सबसे प्रबल एवं सजीव कड़ी है।

अनादिकालीन मानवीय सभ्यता के साथ आज हमारा जो सम्बन्ध इतना प्रगमय एवं अविच्छिन्न प्रतीत होता है उसका मूलभूत कारण यही है कि हम सरस्वती के आश्रय एवं स्फूर्ति से संस्कृति के प्राण–प्रवाह को अटूट बनाये रखने का सदैव प्रयास किया करते हैं। इस क्षेत्र में कवि ही हमारा प्रतिनिधि और मार्गदर्शक होता है। कवि जहां मर्त्य और अमर्त्य की दूरी का निराकरण करता है, वहां वह अतीत और वर्तमान के दूरस्थ छोरों को भी एक प्रवाह से क्रमबद्ध बनाये रखता है। इसीलिये 'सरस्वती का वरद पुत्र' कहा जाता है। यह अंतर-रहित वैभिन्यहीन समन्वय ही भारतीय संस्कृति की जन्मगत प्रेरणा है। हमारी संस्कृति की सारी विशाल इमारत इसी प्राचीर पर आधारित है। ऋग्वेद के दिव्य स्तोत्रों से लेकर गांधीजी के कर्मदर्शन तक समन्वय की यही भावना अमर प्राण–प्रवाह की भाँति अक्षुण्ण चली आई है। सरस्वती की भाँति भारती अथवा वाणी की उपासना का भी हमारे यहां काफी सशक्त आग्रह मिलता है। अव्यक्त को व्यक्त करने के लिये वाणी का आश्रय लेना ही पड़ता है। वाणी की अपेक्षा में अभिव्यक्त का अन्य कोई माध्यम आज तक सफल नहीं हो सका है। वेदों में तो वाणी के विषय में काफी लिखा गया है। अग्नि सूक्तों में ही वाणी को ऐसा रथ कहा गया है जिसमें बैठ कर अग्नि देवताओं को बुलाने जाता है और उन्हें यज्ञभूमि अर्थात् मर्त्यलोक में लाता है। कवि और वाणी का सम्बन्ध और दोनों का वैयक्तिक एवं सामूहिक महत्व इस रूपक के द्वारा और भी स्पष्ट हो जाता है कवि वाणी के आश्रय से देवत्व को, अमरत्व को मानवीय कर्मभूमि पर अवतरित करता है। यज्ञभूमि में देवताओं को बुलाने का उद्देश भी कितना महान् है। इस यज्ञभूमि में जो यज्ञ चल रहा है उसका लक्ष भौतिक वैभव की प्राप्ति नहीं हैं। यश और महत्व का उपार्जन भी नहीं है। उसका उद्देश्य है ''अमृतस्य चक्षाणं'' अमृत के दर्शन!

कवि और कलाकार भूत, वर्तमान और भविष्य को एक रस–प्रवाह से परस्पर जोड़ने

को जा साधना करते हैं, ऋग्वेद में उसकी भी बड़ी अर्थगर्भित व्याख्या है। नीचे उद्धृत श्लोक में कला एवं साहित्य के अनंत आलोक का बड़ा उत्कृष्ट वर्णन है।

अग्निनाग्नि समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड् जुहुवास्य ॥

भावार्थ—"एक अग्नि के द्वारा अन्य अग्नियों की प्रदीप्ति होती है। कवि, गृहपति और अह्वान करने वाले तेजस्वी तरुण की अग्नि अर्थात् बुद्धि को यह अग्नि ही प्रतिक्षण प्रदीप्त करता है।"

यहां एक आलोक के द्वारा दूसरे आलोक के प्रज्वलित होने का प्रसंग है। दीप से दीप जलाये जाने का विवरण है। इस आलोक विनिमय का अवलम्ब या माध्यम भी अग्नि ही है। अग्नि ही मानवीय सभ्यता के प्रथम सृजन से हमारे आज तक के विकास को ज्योति-प्रवाह बन कर जोड़ता आया है। संस्कृति-स्रोतस्विनी अपने मूल उद्गम से अग्रसर होकर आज जिस लम्बे मार्ग को पीछे छोड़ चुकी है वह अग्नि – ज्ञानाग्नि – ही उसमें प्राण-प्रवाह बन कर बहता आता है। इसीलिये कवि को आत्मा की भांति असर माना है। सरस्वती की प्रेरणा – प्रवाह अनंत है। आसुरी शक्तियों के अगणित आक्रमणोंके बावजूद भी इस मंदाकिनी की गति में किसी प्रकार व्यतिक्रम नहीं पड़ता है। प्रमाण के रूप में हम अपनी ही संस्कृति का उदाहरण पेश कर सकते हैं।

ऋग्वेद के आठवें मंडल में जाकर यह ज्योति-आवर्तन की परम्परा और भी स्पष्ट हो जाती है। यहां तो सारे प्रसंग को अन्य प्रसंगों के साथ निरूपित करके वस्तु-स्थिति को और भी सरल कर दिया गया है।

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रेण सन् सता।
सखा सख्य समिध्य से। ८–४३–१४

अर्थात्, 'अग्नि का अग्नि के द्वारा ज्ञानी का ज्ञानी के द्वारा, साधु का साधु के द्वारा. मित्र का मित्र के द्वारा संयोग होता है।

कवि की काव्य-स्फूर्ति का जागरण भी कवि के शब्दों द्वारा होता है। यह स्फूर्ति शरीरों के चोले उतारती हुई अजर-अमर आत्मा की भांति, अनंत-प्रवाहिणी की भांति अक्षुण्ण चली जाती है।

ऋग्वेद में यज्ञ के प्रसंग में जो अग्नि की व्याख्या मिलती है उसका भी पूरा अर्थ स्पष्ट हो जाना चाहिये। 'यज्ञ' यहां रूपकात्मक है जिसका अभिप्राय 'श्रेष्ठ कर्म' ही मानना चाहिये। वेदानुसार तो तो समस्त मानव जीवन ही एक शतसांवत्सरिक यज्ञ है। 'स्वाहा' इस यज्ञ का मूल बिंदु है—यज्ञ की मुख्य क्रिया यही है। 'स्वाहा' का भौतिक तात्पर्य 'समर्पण' होना है। इस प्रकार वेदानुसार मनुष्य का सारा जीवन ही एक समर्पण श्रृंखला है। भारतीय साहित्य एवं कला के भावपक्ष का मूल्यांकन करते इस सत्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिये। हमारे यहां कला की स्फूर्ति की सबसे प्रथम शर्त यही है।

कविता हमारे सबसे अधिक समृद्ध क्षणों की अनुभूति है। जीवन-संघर्ष के सघनतम क्षणों में हमारे अंतःकरण में स्फूर्ति विद्युत् की भांति प्रज्वलित हो उठती है। छंदों का शरीर लेकर वही कविता के रूप में व्यक्त होने लगती हैं। ये समृद्ध क्षण हमारी पूर्णता के क्षण हैं—हमारे सर्वांगीण अथवा सांस्कृतिक विकास के मापदंड भी ये ही क्षण हैं। ऋग्वेद में काव्य एवं कवि की जो मीमांसा मिलती है उसमें इस सत्य की परिपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। कवि को परिपूर्ण मानवता का प्रतीक, गायक एवं स्रष्टा माना जाता है। कवि को अग्नि का रूप देकर उसकी निर्मलता की तो घोषणा की ही है, लेकिन साथ ही प्रकाश देने और अपने सम्पर्क में आनेवाले तत्वों का अपने ही समान ज्योतिर्मय बना देने की शर्त भी पूरी कर दी है। अग्नि से बढ़कर सुंदर एवं सफल रूपक कवि का अन्य कुछ हो ही नहीं सकता था। ऋग्वेद में जीवन को एक महान यज्ञ स्वीकार किया है और इस पृथ्वी को एक विराट् यज्ञशाला के रूप में चित्रित किया है। यज्ञ का अर्थ दिव्य एवं श्रेयस्कर कार्य है। कवि अर्थात् अग्नि को अपने ममत्व के कारण इस यज्ञ का कर्ता। होतारं विश्ववेदसम्। माना है। दूसरे शब्दों में कवि मानव-जीवन की पूर्णता के यज्ञ का पुरोहित है कवि एवं काव्य को इतने ऊंचे स्तर पर आज तक किसी भी संस्कृति ने प्रतिष्ठित नहीं किया है। यह हमारी संस्कृति की एक अन्यंत मौलिक विशेषता है। ★



श्रोता

—भवानीप्रसाद मिश्र

सुघुक शरीर भरा हुआ चेहरा
शरद्–काल के आसमान की तरह
स्वच्छ आंखें
बोलना–चालना उठना–बैठना
मानो एक शोभा से
दूसरी शोभा की ओर गमन !
हँसी मानो अपने से छोटे किसी
व्यक्ति को नमन —
बहुत सोची–समझी शांत हँसी।

किसी को बुलाया
तो स्वर नहीं उठाया, चिल्लाया नहीं
हल्की–सी ताली बजाई
ताली की आवाज़
उसके अंदाज़ से ज़रा ज्यादा हो गई
तो लजाई !

जिसे बुलाया
वह पास आया,
तो शब्द कुछ कहे
वर्ण–वर्ण जिनका
रंगा था, प्रकाशवान था
सुननेवाला ऐसा सावधान
मानो जुही की कलियाँ चुन रहा था
क्योंकि वह शब्द नहीं
समय की वाणी सुन रहा था !



मंज़िल

हाजी अब्दुल सलाम और मीर चन्दानी दोनों दोस्त थे। दोनों ने मिलकर शहर में एक बैंक खोला था। दोनों ने मिलके इस बैंक के जरिये लोगोंको खूब लूटा था। दोनों पकड़े गये और अब दोनों जेल में सजा भुगत रहे थे। मगर दोनों ने इस होशियारी से काम लिया था कि सजा होने पर भी पुलिस रुपया उनसे न उगलवा सकी थी। सत्रह लाख का गबन था, इतनी रक़म कोई आसानी से कैसे दे सकता है, चाहे बरसों की जेल क्यों न हो जाये। इसलिये दोनों बड़े मजे से जेल में रहते थे और रुपये के जोर से जो चाहे करते। असिस्टन्ट जेलर उनका दोस्त बन गया था, वार्डर उनकी मुट्ठी में थे इस लिये दोनों दोस्त जेलमें इस शान से रहते थे जैसे वह जेल में न हों माइकल रोड के किसी बढ़िया फ़्लैट में रहते हों। उनका खाना उम्दा से उम्दा होटल से आता था, स्टेट एक्सप्रेस से कम का वह सिगरेट न पीते थे, रेस जाने को जी चाहता तो सुपरेन्टेन्डेंट जेल की आँख बचाकर रेस भी चले जाते थे। कई बार दिलदार रोडपर जाकर रंडियो का गाना भी सुन आते थे। इन मौकों पर बचाव के लिये दो हट्टे-कट्टे वार्डर भी उनके साथ रहते थे। उन का रुपया चूँकि अब सुरक्षित जगह पर था इसलिये जेल से निकल भागने का ख्याल तक भी उनके दिलमें न आता था।

संभव है यही सोचकर सहकारी जेलर भी उन्हें ढील देता हो। सहकारी जेलर पढ़ा-लिखा आदमी था। अपनी नवजवानी के जमाने में एक कालेज में अर्थशास्त्र का लेक्चरर था। तन्ख्वाह साढ़े तीन सौ रुपये थी। परिवार बड़ा था, इसलिये हमेशा गरीब और चिड़चिड़ा रहता था। क्लास में लड़कों से ऐसा बर्ताव करता था जैसे वह प्रोफेसर न हो, थानेदार हो। लड़के हमेशा उससे परेशान रहते। दो-तीन बार कालेज में उसके विरुद्ध हड़ताल भी हुई। अंग्रेजों का जमाना था, अंग्रेज प्रिन्सिपल था। अँग्रेजों को इस जमाने में हर हड़ताल के पीछे क्रान्तिकारियों का हाथ दिखायी देता था।

इसका फायदा उठाकर सहकारी जेलर कालीचरण ने अपनी उन्नति चाही और अपने प्रिंसिपल के सिफारिश से कालेज की लेक्चररशिप से अपनी बदली

है कहाँ तेरी?

गतवर्ष दीपावली में छपे हुए एक लड़की और हजार दीवाने इस उपन्यास का दूसरा और अंतिम भाग।

...क्यों रोती हो लाची? न जाने कब से, आज से नहीं, शायद सैंकड़ों हज़ारों साल से, मुहब्बत इसी तरह रो रही है...। नाम तो बहुत लेते हैं लोग इन्सानिअत का, मुहब्बत का, खूबसूरती का, भाईचारे का, हुस्न का, पाकीजगी का......मगर किसने इस मुहब्बत के आँसू पोंछे हैं? किसने इन्सानियत को सहारा दिया है? किसने पवित्रता की इज्ज़त की है? किसने सुन्दरता को सजाया है?...

करा जेल के विभाग में आ गया, क्योंकि प्रांत के जेलों का इंचार्ज अंग्रेज उसके प्रिंसिपल का मित्र था। यह विभाग कालीचरण को बहुत पसंद आया; बिल्कुल उसकी तबीयत और स्तभाव के ठीक अनुसार था! फिर यहाँ अंडा, तरकारी, गोश्त, दूध, नौकर-चाकर सब बिना दाम के मिलते थे। अमीर कैदियों की तरफदारी करके वह हर माह खासी रकम ऐंठ लेता था। कालेज के लड़कों से कुछ अपमानित जैसे ट्यूशनों के अतिरिक्त और क्या हासिल हो सकता था? यहाँपर वह बहुत खुश था जैसे अपनों में आ गया हो। यह ठीक है, यहाँ कई बार वह मुअत्तल हुआ, कभी उसकी तरक्की भी हुई, और कभी उसे पदच्युत भी किया गया। मगर यह तो जमाने के उतार चढ़ाव हैं। ऊँची लहरों पर सवार होकर कभी आदमी आगे निकल जाता है, कभी वही लहरें उसे ढकेल कर पछाड़ देती हैं। जमाना एक समुद्र है। उसीमें हमें रहना है, उसीमें डूबना है, इसका गम क्या? कालीचरण सिर्फ इतना बचाव जरूर करता था कि, अपने बॉस अर्थात् सुपरेटेन्डेन्ट जेल के सामने अपने आपको अत्यंत उद्यत और ईमानदार साबित करता था।

सुपरटेन्डेन्ट जेल भी एक पढ़ा-लिखा आदमी था, अगर वह जेलर न होता तो लेखक होता, कवि होता, संगीतज्ञ होता, लीडर होता। अर्थात् वह कुछ ऐसा जरूर होता, जहाँ उसे अपनी बात कहने और मनवाने के तरीके मिल जाते। दर-असल उसका दिल नर्मी और मेहरबानी से भरा हुआ था। वह मनुष्य के लिये कुछ करना चाहता था। उसके दिल में आश्चर्यजनक कल्पनाओं के चक्र थे। वह सेवा करना चाहता था और भला बनना चाहता था और मनुष्य के कष्ट और दर्द का इलाज ढूँढना चाहता था। बचपन ही से उसे चित्रकारी का शौक था; मगर उसके पिता रायबहादुर श्रीगंगा सहाय जेलखाना के डिप्टी इंस्पेक्टर जेनरल थे और यह विभाग एक तरहसे उनका अपना ही था और जमाना अंग्रेजों का था। रायबहादुर की गणना अंग्रेजी सरकार के खास खिदमतगारों के पुत्रों में होती थी, इसलिये उन्होंने यही मुनासिब समझा कि अपने बेटे खूबचन्द को जेल के विभाग में भर्ती कर दिया जाये। यों तो खूबचन्द का इरादा पेरिस में जाकर चित्रकला सीखने का था, मगर रायबहादुर के सामने उसकी एक न चली और वह जेल के विभाग में भर्ती हो गया।

अगर वह जिद्दी और स्वेच्छाचारी होता तो भूखा रह कर चित्रकला को जारी रख सकता था। मगर वह बहुत ही सभ्य आदमी था, इसलिये बोनगाग तो न बन सका, जेलर बन गया। लेकिन उसकी तबीयत की नेकी, दिलकी कविता और भावों की चित्रकला यहाँ भी प्रभाव दिखाये बिना न रह सकी! वह कैदियों से बड़ी नरमी से पेश आता था। अपने कार्य में उस ने बड़ी ढील दे रखी थी। इन्सानों पर भरोसा करना उसके स्वभाव का अंग बन गया था। मनोविनोदी चित्रकला अब भी जारी थी, लेकिन वह नयी चित्रकला से बड़ा परेशान था, जिसमें स्त्रियाँ सरकंडों की तरह कुरूप और दुबली होती जाती हैं और पुरुष गोले की तरह मोटे! उसे लोक-चित्रकला भी पसंद न थी, जिसमें देहातियों का-सा बचकानापन पाया जाता है। इसे पुराने बंगाल स्कूल की चित्रकला बहुत पसंद थी, धीमी-धीमी सुस्त और सोयी हुई चित्रकला, ऊँघता हुआ वातावरण स्वाभाविक ऊँघ के नशे में मदमत्त! बाँस के झुण्डो में अर्ध-दृष्टिगोचर गाँव और नदी के किनारे विचारों मे खोयी हुई एक सुन्दरी! ऐसी प्यारी, ऐसी कोमल! ऐसी कटीली आँखोवाली कि अगर पलट कर कहीं एक निगाह भी डाल दे तो आदमी वहीं ढेर हो जाये! जाने किस देश में ये औरते रहती हैं? क्या खाती हैं? खाती भी हैं कि केवल अपनी सुंदरता को देख-देख कर जीती हैं! और सचमुच ऐसी सर्वांग सुंदर स्त्रियों को खाने की भी क्या जरूरत है, काम करने की भी क्या जरूरत है, हाथ पाँव हिलाने की भी क्या जरूरत है? वह तो एक तस्वीर है, जिसे आदमी सोने के फ्रेम में जड़ा कर देखा करे. और चूँकि बहुत से आदमी ऐसी औरतों के लिये ऐसा ही सोचते हैं, इसलिये बहुत सी औरतें ऐसे ही सोने के एक फ्रेम की इच्छा करती हैं।

खूबचन्द के पास सोने का फ्रेम तो था; मगर वह सर्वांग सुंदर स्त्री उसे आजतक न मिल सकी थी इसलिये जीवन के प्रिय

अनुक्रमणिका







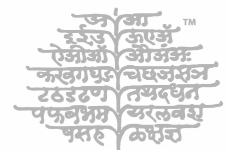
अनुक्रमणिका



राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे संगणकीकृत


दीनानाथ दलाल मेमोरिअल ट्रस्ट

अनुक्रमणिका





पचास वर्ष बीतने पर भी वह कुँवारा था, इसलिये उसके दिलमें आशा की वह लौ भी कम हो गयी थी। कदाचित् उसे वह सम्पूर्ण स्त्री कभी न मिल सकेगी और ज्यों-ज्यों उसके दिल में यह निराशा घर करती जाती वह अपने चित्रों की स्त्री की चित्रकारी कोमल से कोमल साँचों में ढालता जाता। कभी कभी वह उन चित्रों को देख कर



" क्या ये होंठ बोल नहीं सकते ? क्या इन बाहों का मर्मर मेरी बाहों में नहीं आ सकता ? ये लम्बी-लम्बी पलकें मेरे गालों पर गिर जाएँ तो क्या हो भई ...

रो देता, क्या इन में से कोई तस्वीर जिन्दा नहीं हो सकती ? क्या यह होंठ बोल नहीं सकते ? क्या इन बाहों का मर्मर मेरी बाहों में नहीं आ सकता ? ये लम्बी-लम्बी पलकें मेरे गालों पर गिर जायें तो क्या हो ? -तो क्या हो भई ? कोई मनचला इसे यह बताने को तैयार न था कि उस अद्भुत करामात के बाद मुहब्बत होगी, मुहब्बत के बाद संभव है शादी हो, शादी के बाद मुमकिन हैं बच्चे हों, बच्चों के बाद मुमकिन है झगड़े हों और बच्चों और झगड़ों के बाद लम्बे...बहुत वर्षों तक साथ रहने के बाद संभव है वह स्त्री सरकंडे की तरह दुबली या गोले की तरह मोटी हो जाये और उसका स्वप्न सदैव के लिये खंड-खंड हो जाये। शायद इसीलिये उसने शादी न की थी, वह केवल पानी पर तैरते हुए कमल देखना चाहता था, न कि उस कीचड़ को जहाँ से कमल पैदा होता है। न उस परिणाम को जहाँ पर कमल की पत्ती-पत्ती मुरझा जाती है। खूबचन्द शुद्ध रोमानियत-पसन्द इन्सान था और अपने कल्पना के जेलखाने में बन्द था। उसकी तरह बहुत से इन्सान हमेशा किसी न किसी जेलखाने मेंबन्द रहते हैं और अपने आपको स्वतन्त्र समझते हैं। **

जब लाची पहली बार सुपरिटेन्डेन्ट जेल के दफ्तर में लायी गयी तो खूबचंद उसे देख कर भौंचक्का रह गया। यकायक उसे अनुभव हुआ, जैसे वह चित्र जो आजतक उसके मन-मंदिर में छिपा था आज सजीव और जागती हुई सूरत में, उसी के सामने खड़ा था। वह ठंडी, मनभाती सुंदरता, आँखों में वही कटीलापन, चाल में वही अल्हड़ अदा और आसपास के वातावरण से लापरवाह लाची उसके सामने खड़ी थी। कुछ क्षणों तक तो वह उसे भौंचक्का और परेशान देखता रहा, उसका मुँह खुले का खुला रह गया। फिर यकायक उसे अनुभव हुआ कि वह इस कमरे में अकेला नहीं है, उसका स्टेनोग्राफर यहाँ पर था, दो और क्लर्क थे, वार्डर थे, अच्छा खासा मजमा था। खूबचंद ने तुरन्त लाची के चेहरे पर से नजरें हटा कर उसके कागजात पर डालीं। यहाँ पर उसे एक और धक्का लगा—

"तुमने हत्या की है ?" खूबचन्द ने सहसा आश्चर्य से लाची की तरफ देख कर कहा।

"वर्ना मैं यहाँ क्यों आती जी ?" लाची ने उस से पूछा।

"सीधे-सीधे बात करो।" एक वार्डर कठोरता से बोला—"यह सुपरिटेन्डेन्ट जेल हैं !"

"अच्छा ?" लाची ने हाथ के संकेत से अत्यन्त बेपरवाही से खूबचन्द को सलाम किया, जैसे वह अपने माथे से कोई मक्खी हटा रही हो !

"नही नहीं ! ! बात करने दो।" खूबचन्द यकायक नरमी से बोला और उसकी निगाहें कागजात पर झुक गयीं। वह देर तक कागजात को उलट-पलट कर देखता रहा। कुछ क्षणों तक वह लाची के चेहरे की तरफ न देख सका जिसके चेहरे पर व्यंग के चिह्न प्रकट हो चुके थे।

यह तस्वीर बोलती भी है, यकायक खूबचन्दने सोचा, गति-मान भी है, लेकिन सिनेमा की तरह नहीं, जिन्दगी की तरह ! फिर भी उसे जोर का धक्का लगा – क्या इसलिये कि जिस तस्वीर का वह जिस तरह बोलते देखना चाहता था, उस तरह से यह तस्वीर बोल नहीं रही थी। उस की तस्वीर तो शायद उसे टैगोर के गीतों में बुलाती, उमरखय्याम की रुबाइयाँ सुनाती या कीट्स की लेमिया की तरह किसी अनजाने द्वीप को मद्धम-मद्धम सुरों के मीठे संगीत से लबालब करती।

मगर यह कैसा खुर्रासपाट स्वर था उस तस्वीर का। खूबचन्द को अत्यन्त बौद्धिक पीड़ा हुई। उसने जरा कठोर स्वर में पूछा।

आज के दशावतार : ६ परशुरामावतार



'कर्मक्रिया' करती आयी है, पराक्रमी संतान।
परशुराम ने परशु उठाकर किया समिति बलिदान॥





अनुक्रमणिका

"कोई काम जानती हो?"

"बासकिट बुन सकती हूँ, और चटाइयाँ ... और ..."।

वह रुक गई। "और?" खूबचन्दने पूछा।

"और नटों के सब करतब जानती हूँ, एक तने हुए रस्से पर चल सकती हूँ, जलते हुए गोले पर से गुजर सकती हूँ, एक साँस में दस कलाबाजियाँ लगा सकती हूँ।"

किधर गयी वह तस्वीर? वह बासों के सरसराते हुए झुंड, हवा अरमान की खुशबू से महकी हुई और नदी के किनारे गर्दन झुकाये निराश सुन्दरी किसी सोच में डूबी हुई ... यह तो बिल्कुल वही तस्वीर है। मगर कैसी भिन्न! खूबचन्द अन्दर ही अन्दर बलबला उठा। पचास वर्ष से वह जिस तस्वीर को सम्हालता आया था आज वह एक क्षण में टुकड़े-टुकड़े होकर उस के पैरों में पड़ी थी।

"और पंजा भी लड़ा सकती हूँ।" लाचीने अपना हाथ आगे बढ़ाया, और सुपरिन्टेन्डट से पूछा—

"लड़ाओगे?"

कमरे में जितने लोग थे, सब हँस पड़े। मगर दिलदार खाँ पंजाबी वार्डर को बेहद गुस्सा आया और यूँहीं सुपरिन्टेन्डेंट जेल की इज्जत रखने के लिये यह मौका अच्छा था; उसने फौरन् कहा—"साहब की बात जाने दो, पहले हमसे पंजा लड़ाओ!" दिलदार खाँ ने अपना खुरदरा मोटा हाथ लाची की तरफ़ बढ़ाया।

लाची सहम कर पीछे हट गयी, बोली—"तुम्हारा हाथ हम से तगड़ा मालूम होता हैं।"

कमरे में सब लोग फिर हँसने लगे। दिलदार खाँ ने झुक कर व्यंग से कहा—"बस? डर गयी?"

लाची का मुँह लाल हो गया, उसने आगे बढ़ कर दिलदार खाँ की हथेली पर झपट्टा मारा और अपनी उँगलियाँ उसकी उँगलियों में फँसा दीं। दिलदार खाँ ने हाथ से हाथ मिलाकर जोर लगाया। लाची सर से पाँव तक लचक गयी, मगर उसका बाजू टेढ़ा न हुआ। "हरामजादी नटनी!" दिलदार खाँ झल्लाकर बोला और उसने फिर पूरा जोर लगा दिया। "हरामजादा तू! तेरा बाप! पंजा लड़ा, बातें न कर।" लाची गुस्से में होकर बोली। दिलदार खाँ का पूरा जोर लाची के हाथ पर पड़ रहा था मगर लाची ने नटनी के गुर यों ही नहीं सीखे थे, उसने अपने बदन को झुलाकर, इस जोर को सारे बदन पर बाँट लिया, मगर उस का हाथ उसी तरह दिलदार खाँ के हाथ में फँसा रहा।

दिलदार खाँ का चेहरा जो पहले साँवला था, अब गुस्से से काला पड़ता जा रहा था। सहसा लाची उस की आँखों में आँखें डालकर हँसने लगी और बोली, "देख अब मैं अपना हाथ तुझ से छुड़ाती हूँ।"

उसके बाद वह जाने न किस तरह लचकी और क्या हरकत उसने की कि हाथ के एक ही झटके से लाची का पंजा दिलदार खाँ के पंजे से मुक्त हो गया।

कमरे में सब लोग जोर-जोर से हँसने लगे। दिलदार खाँ पंजाबी का हाथ लाची को मारने के लिये ऊपर उठा मगर सुपरिटेन्डन्ट जेल का पीला चेहरा देखकर वहीं रह गया।

"दिलदार यह क्या बेवकूफी है?" खूबचंद ने जरा कठोरता से कहा। फिर स्त्रियों की इंचार्ज जैनाबाई की तरफ देखकर कहने लगा, "जैनाबाई, इसको ले जाओ और छः महीने तक इसको दूसरी स्त्रियों से अलग रखो, बड़ी खतरनाक औरत मालूम होती है।"

"मैं अलग नहीं रहूँगी! मैं अलग नहीं रहूँगी।" सहसा लाची जोर से चीखी। जैनाबाई घबराकर पीछे हट गयी। खूबचंद की आज्ञा से दो तीन वार्डरों ने मिलकर लाची को घेरा और उसे औरतों के सर्कल जेल में पहुँचा आये, जो बड़े जेल के दक्षिणी कोने में था।

* *

रातभर खूबचन्द को नींद नहीं आयी। वह बड़ी देर तक अपने खूबसूरत फ्लैट की मद्धम-मद्धम रोशनियों में दीवारों पर लटकती हुई अपनी तस्वीरों को देखता रहा। उन तस्वीरों से उसे कैसा प्रेम था जेल की कठोर ऊबपन और अत्याचार और अन्याय से भरी हुई दुनिया के बाद यही तस्वीरें उसका सहारा थीं। यही चित्र उसकी स्त्री थी, उसके बच्चे, उसके दोस्त, वर्षों का तपा हुआ प्रेम, उसने इन चित्रों की एक-एक लकीर मे घुला दिया था, लेकिन यह बरसोंकी तस्वीरें आज उसे कैसी अनजान और परायी दिखायी दे रही थीं, जैसे सब कुछ टूट गया था, सब कुछ टुकड़े टुकड़े हो गया था। वह तो इन तस्वीरों को जानता भी न था, ये तस्वीरें वह कैसे बना

सकता था. ये तस्वीरें बिलकुल कृत्रिम थीं, ये तस्वीरें उस की न थीं, ये किसी मूर्ख बुश की निरर्थक गोलाइयाँ...इनमें क्या रखा है ?

बरसों से वह उन तस्वीरों को बुलाने की कोशिश करता रहा मगर ये तस्वीरें कैसे बोलती ? मुर्दा कल्पना की मुर्दा लाशें, उन में आत्मा न थी, फिर ये तस्वीरें कैसे बोलतीं ?

उसे लाची पर बड़ा गुस्सा आया। यकायक उसे महसूस हुआ, जैसे वह बेकार कामों में उलझ कर बूढ़ा हो गया। जैसे वह किसी गलत रास्ते पर चलते–चलते एक अन्धे कुएँ तक जा पहुँचा हो।

उसने एक-एक करके दीवार से सब तस्वीरें उतार लीं। उन्हें फ्रेम से जुदा किया और धीरे-धीरे उन्हें इस तरह फाड़ने लगा, जिस तरह अपनी जिन्दगी के पुराने पन्ने चाक कर रहा हो। आँसू उसकी आँखों से बहने लगे, क्योंकि जिन्दगी के पन्ने कागज के पन्ने तो होते नहीं, वह दो बारा नहीं लिखे जा सकते। ठीक है अब सिर्फ जेलर बनेगा। * *

जैनाबाई जब जवान थी तो अपने शरीर का धंधा करती थी। फिर जब युवापन ढलने लगा तो उसने जेब कतरने की साइड लाइन भी पकड़ ली। अधेड़ उम्र तक पहुँचते – पहुँचते वह महशूर कुटनी बन चुकी थी और उस का काम खूबसूरत औरतों और लड़कियों को फाँसना और उन्हें मशहूर दलालों के यहाँ बेच देना था। इस में उसे खासे पैसे मिल जाते थे, डर भी काफ़ी था। चार – छः बार उसे जेल भी हुई थी, अन्तिम बार जब उसने एक गर्भवती लड़की को फाँसा तो उसके बच्चे का गला घोंट देने के अपराध में जैनाबाई को आजन्म कैद की सजा हुई थी। वह बड़ी मेहरबान आँखवाली, पोपले मुँहवाली, मीठे बोल वाली बूढ़ी औरत थी। उसकी चाल ढाल से हर समय एक अजीब-सी ममता बरसती रहती थी, जिससे वह स्त्रियों के जेल में बहुत पाप्युलर हो गयी थी। चार छः बार जेल काटके अब वह इस वातावरण में रस–बस गयी थी। अब तो यही जेल उसका घर था, यही उसका देश, यही उसकी राजनीति ! वह जेल की औरतों में प्रतिष्ठित थी, तो जेलके हुक्काम भी उसे बहुत पसन्द करते थे। मर्दों की जेल के मशहूर गुण्डे भी उसकी इज्जत करते थे; क्यों कि वह सब काम जानती थी और बहुत ही रोजदारी और दियानतदारी और पूरी सच्चांई से बेईमानी के सब काम पूरे करती थी, जैसा कि हर बिजनेस में होना चाहिये। अफसोस परिस्थितियोंनें उसकी मदद नहीं की, उसे शिक्षा नहीं मिली, और वह एक गरीब हिन्दुस्तानी औरत थी, वर्ना उसमें एक सफल व्यवसायी के तमाम गुण मौजूद थे। अगर उसे उम्र क़ैद न होती तो शायद वह एक दिन लखपती हो जाती।

जैनाबाई बाहर की दुनिया के संदेश औरतों के जेल में पहुँचाती थी। मर्दों के जेल और औरतों के जेल के दर्मियान मेल-जोल भी इसी के द्वारा होता था। चरस और अफ़ीम की आयात भी इसी के जरिये होती थी। जेल में दो तीन औरतें ऐसी थी कि किसी तरह मार्फिया के इन्जेक्शन के बिना न रह सकती थीं, यह काम भी जैनाबाई को सौंपा गया था। उसके अतिरिक्त लोहे की सलाखों के इधर-उधर क्या इश्क नहीं हो सकता ? अर्थात् जेल के लोग क्या औरतों पर नहीं मरते ? क्या वह मर्द नहीं होते ? क्या उनके जज्बात

नहीं होते ? क्या उन जज्बात को आग नहीं लग सकती ? क्या वह सूखी माचिस की तरह भड़क नहीं सकते ? जिन्दगी एक ऐसा गुब्बारा है जिसे एक तरफ़ से दबाओ तो दूसरी तरफ़ से उभर आता है बहुत अधिक दबाओ तो फट जाता है और यह भी एक तरह से बोझ के विरुद्ध प्रोटेस्ट ही है। जिसे समझने के लिये किसी असाधारण बुद्धि की जरुरत नहीं है। मगर जैनाबाई कभी अपने कैदियों पर इतना दबाव नहीं डालती थी। बस उतना ही जितना वह बर्दाश्त कर लें, क्योंकि जो समझदार मुजरिम होते हैं वह अपने पेशे में भी सभ्य इन्सानों की तरह दबाव डालते हैं। बस, उतना ब्लैक मेल करो, जितना दूसरा बर्दाश्त कर सके ! बस उसना घूस लो जितना दूसरा दे सके ! बस उतनी बेइज्जती करो जितनी दूसरा गवारा कर सके ! बस, इतनी धमकी दो जिससे अपना काम निकल सके ! बस उतनी चोरी करो, जिस से दूसरा जिन्दा रह सके ताकि दुबारा उसके घर में चोरी की जा सके—— अपराध और राजनीति में अधिक दूरी नहीं है !

* *

पहले छः महीने बड़े आराम से कटे। लाची का प्रेमी गुल भी बराबर मिलने के लिये आता था। खाना भी भीख माँगे बिना, चोरी किये बगैर, किसी से बे इज्जत हुए बिना मिलता था। परिश्रम भी साधारण था, दूसरी औरतों के लिये कष्टदायक होगा, मगर लाची के लिए बहुत साधारण था। छः माह के लिये जो लाची दूसरे क़ैदियों से अलग रही तो उसके दिल में एक शान्ति, एक संतोष-सा पैदा हो गया। बाहर की हलचल भरी जिन्दगी के बाद जेल की यह जिन्दगी लाची को अत्यन्त शान्तिभरी और सुंदर प्रतीत हुई।

एक दिन जैनाबाई लाची के पास गयी और उस से बोली—

"चल तुझे सुपरिटेन्डेन्ट जेल बुला रहे हैं।"

"क्यों बुलाता है ?"

"मुझे क्या मालूम ?" जैना ने मुस्करा कर कहा—

"तेरे फायदे का कोई काम होगा, चल !" लाची जैनाबाई के साथ हो ली। खूबचन्दने उसका बडी अच्छीतरह स्वागत किया। उस समय सात बज चुके थे, आफिस का समय खत्म हो चुका था।

खूबचन्द ने आफिस से लगी हुई एक कोठरी खाली करवा ली थी और उसे अपने लिये दिन में आराम करने और खाना खाने का कमरा बना लिया था।

यहां पर वह चित्रकारी के सामान भी घर से उठा लाया था। जब लाची उस कमरे में दाखिल हुई तो उसने लकड़ी के ईज़ल पर एक कोरे सफ़ेद काग़ज को टँगे देखा, तो आश्चर्य से बोली—

जिन्दगी एक ऐसा गुब्बारा है जिसे एक तरफ से दबाओ तो दूसरी तरफसे उभर आता है, बहुत अधिक दबाओ तो फट जाता है —



"यह क्या है ?"

"तुम्हारी तस्वीर बनाऊँगा।" खूबचन्द ने अपना इरादा जाहिर किया।

"मेरी तस्वीर ?" लाची आश्चर्य और खुशी के मिले-जुले प्रभावों को जाहिर करने लगी।

खूबचन्द ने सर हिला कर एक कोने में पड़ी हुई गठरी की ओर संकेत किया और बोला—

"वह तुम्हारी चुनरी, क़मीज, वास्कट, घाघरा पड़े हैं। यह जेल के कपड़े उतार कर उन्हें पहन लो और जब पहन लोगी तो मुझे आवाज देना, मैं आफ़िस में बैठता हूँ।"

"बहुत अच्छा !" लाची लपक कर गठरी की तरफ़ बढ़ी।

खूबचन्द और जैनाबाई बाहर आ गये।

बाहर आफ़िस में आकर खूबचन्द ने जैना से कहा—

"अब तुम जाओ।"

जैना ने एक मक्कार मुस्कराहट के साथ खूबचन्द की तरफ़ देखा और फिर झुक कर सलाम किया और मुस्कराते हुए चली गयी।

थोड़ी देर के बाद लाची की आवाज आयी—"अन्दर आ जाओ !"

खूबचन्द अन्दर आ गया। लाची लकड़ी के एक छोटे-से स्टूल पर डफ़ लिये एक अजब बाँकी अदा से खड़ी थी। खूबच... देखते ही बोलीं—

"बस, ऐसी तस्वीर खींच दो !"

"ऐसी ही खीचूँगा।"

खूबचन्द ने ब्रुश सँभाला और रंगों को मिलाना शुरु कर दिया।

"मगर किसी से कहना मत, मैं तुम्हारी तस्वीर बना रहा हूँ।"

"अच्छा नहीं कहूँगी, मगर इस में क्या बुरी बात है ? सभी लोग फोटो लेते हैं। एक दफा एक अंग्रेज ने स्टेशन पर मेरा फोटो लिया था और मुझे पाँच रुपये की बख्शीश भी दी थी, बहुत लोग मेरा फोटो लेते हैं।"

"यह फोटो नहीं है।"





अनुक्रमणिका

"तो क्या है ?"

"तस्वीर है, इसे इस ब्रुश से इस रंग से इस कागज पर बनाते हैं।"

"इस में कितना टाइम लगेगा ?"

"यह तस्वीर दस दिन में भी बन सकती है, दस माह में भी बन सकती है, दस साल भी लग सकते हैं।"

"तो क्या मैं दस साल तक तुम्हारे जेल में रहूँगी ?"

"नहीं, तब मैं तुम्हारे घर आकर तुम्हारी तस्वीर बनाया करूँगा।"

"मेरा तो कोई घर नहीं है।" सहसा लाची उदास हो गयी। "होता अगर तो गुल से मेरी शादी हो जाती !"

"गुल ? — वही पठान जो तुम से मिलने आता है ?" खूबचन्द ने उस से पूछा।

सहसा लाची मुड़ी तो खूबचन्द भी घबरा कर ईज़ल की तरफ़ पलटा। लाची ने हँस कर कहा—"अरे बाबू ! तुमने तो अभी तस्वीर शुरू भी नहीं की ! यह कागज तो कोरा है।"

"अभी मैं तुम्हें समझने की कोशिश कर रहा हूँ !"

"मुझे समझने की कोशिश ? मुझ में क्या है ? मैं तो बस लाची हूँ।"

"यही तो मुश्किल है।"

"क्या ?"

"कुछ भी नहीं !" खूबचन्द जरा कड़वेपन से बोला—

"तुम स्टूल पर चुप खड़ी रहो और अपनी जगह से हिलो नहीं और कोई बात भी मत करो।"

"यह तो बहुत मुश्किल है।"

"मगर इस के बगैर तस्वीर नहीं बन सकती।"

"बहुत अच्छा, अब मैं बिल्कुल चुप रहूँगी !" लाची ने अपने मुँह पर उँगली रखी। खूबचन्द ने उसे पोज दिया और वह उसी पोज में कुछ मिनट मूर्तिवत् खड़ी रही। खूबचन्द ईज़ल पर तस्वीर बनाने लगा।

"हाँ !"

"तुम उससे बहुत प्यार करती हो ?"

"जिन्दगी से ज्यादा चाहती हूँ ... बाबू ! एक बात मानोगे ?" लाची ने यकायक आशाभरे स्वर में पूछा।

"बताओ !"

"गुलको भी जेल में रख दो, उसे यहीं कहीं एक कोठरी दे दो। तुम्हारे इधर तो बहुत जगह है। हमदोनों कहीं रह लेंगे, यहीं अपना घर बना लेंगे।"

खूबचन्द खूब हँसा, बोला—"पगली ! जेल में तो मुजरिम आते हैं सजा काटने के लिये; क्या तुम्हें जेल में और बाहर की दुनिया में कोई फर्क महसूस नहीं होता ?"

अनुक्रमणिका

लाची ने बड़ी गम्भीरता से सर हिला के धीरे से कहा — "बाहर की दुनिया भी एक जेल है बाबू ! फर्क इतना है कि उसमें लोहे की सलाखें नहीं होतीं !" लाची खूबचन्द की तरफ़ बिल्कुल नहीं देख रही थी, उसकी आँखें ऊपर वायुमण्डल में कहीं देख रही थीं। खूबचन्द उसके सोच में डूबे हुए हुस्न को भौंचक्का-सा देखता रहा।

कुछ मिनट के बाद लाची बोली — "बाबू ! मुझे प्यास लगी है !"

अब खूबचन्द उसके लिये पानी लेकर आया ! फिर कुछ मिनट के बाद लाची बोली किसी को मार के यहाँ आ जाये, तो तुम उसे अपनी जेल में जगह दोगे ?"

"किस को मार के आयेगा ?"

"किसी को भी मार देगा, इस दुनिया में बहुत जालिम हैं !"

"मारना गुनाह है, जुर्म नहीं है, और मान लो कि गुल को ढाई साल की सजा न हुई, उमर कैद हो गयी ?"

"तो मैं भी जिन्दगी भर उसके साथ जेल में रहूँगी !"

"मान लो उसे फाँसी हो गयी ?"

"बापरे ! तो — वह तो ग़लत बात होगी !" लाची ने एकदम कहा, फिर सोच-सोच कर बोली — "अच्छा तुम तस्वीर बानाओ अब मैं कुछ न कहूँगी !" वह फिर पोज लेकर खड़ी हो गयी। खूबचन्द ने उस से जोर देकर कहा — "अब अपनी जगह से हिलना मत !"

मुश्किल से आध मिनट गुजरा होगा कि लाची ने कहा— "बाबू ! तुम जेल के सबसे बड़े बाबू हो ?"

"हाँ, मैं सुपरिन्टेन्डन्ट जेल हूँ।"

"सुपरीटान !—" लाचीने रुकते-रुकते उसका ओहदा याद करते हुए कहा।

साहब की बात जाने दो, पहले हमसे पंजा लड़ाओ ! हरामजादी नटनी ! सर से पाँव तक लचकती है लेकिन बाजू टेढ़ा न होता है।...

"हाँ, सुपरीटान !" खूबचन्द हँसा।

"और सुपरीटान से बड़ा जेल का बाबू और कोई नहीं होता ?" लाची ने पूछा।

"होता है...डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल !"

"डिप्टी जनरल ?—उससे बड़ा बाबू कौन होता है ?"

"उससे बड़ा जर्नेल होता है।" खूबचन्द ने हँस कर कहा।

"और, उससे बड़ा बाबू कौन होता है ?"

"उससे बड़ा भगवान होता है !" खूबचन्द ने जैसे मुआमले को ख़त्म करते हुए कहा।

लाची चुप हो गयी थी, कुछ देर तक चुप रही, फिर धीरेसे बोली — "भगवान भी एक मर्द है ! इस संसार में जितने बड़े बाबू हैं सभी मर्द हैं, फिर मुझे इन्साफ़ कहाँ से मिलेगा ?"

खूबचन्द चौंक गया, वह पलट कर लाची की तरफ देखने लगा, मगर लाची के चेहरे पर कुछ न था, उसे बिल्कुल कोई अनुभव न था कि उसने क्या बात कह दी। वह पोज लिये डफ ऊँचा किये चुपचाप खड़ी थी। खूबचन्द देर तक उसे हैरत से देखता रहा, फिर घूमकर ईजलपर तस्वीर शुरू करने लगा। लाची सहसा उछल कर लकड़ी क स्टूल से नीचे गयी। खूपचन्द ने घबरा कर पूछा—

"क्या है ?"

"कुछ नहीं, मेरे पाँव में खुजली हो रही है।" यह कह कर लाची अपने नाखूनों से अपने पाँव सहलाने लगी। खूबचन्द उन के बेतकल्लुफ भोलेपन पर मुस्करा दिया।

यद्यपि खूबचन्द ने मना कर दिया था, फिर भी लाची की तस्वीर की बात आहिस्ता आहिस्ता सारे जेल में मशहूर होती गयी। औरतों की जेल में जब इस बात का पता चला तो बहुत-सी औरतें जैनाबाई के द्वारा लाची को देखने के लिये आने लगीं और उससे दोस्ती की इच्छा प्रकट करने लगीं। उसमें मशहूर फिल्मस्टार दिलआरा भी थी, जिसे धोखादेही के अपराध में साढ़े तीन साल की सजा हुई थी। दिलआरा का कद लाची से भी लम्बा था। शरीर की रंगत मोतियों की तरह स्वच्छ थी और गालों में गुलाब के फूल खिलते थे और आँखों में कमल की-सी पवित्रता थी। उसे देखकर कोई एक क्षण के लिये भी ख्याल नहीं कर सकता था कि यह औरत किसी तरह धोखा कर सकती है। इसलिये जब पहली बार वह लाची से मिली तो लाची को उसके अपराध की टीका सुनकर बडा अचम्भा हुआ। वह उस समय सर्कल के मैदान में जामुन के पेड़ के नीचे घास छील रही थी तब जैना दिलआरा को उसके पास छोड़ गयी। दोनों औरतें खुरपी लेकर घास छीलते-छीलते बातें करने लगीं। लाची ने मुस्करा के कहा— "तुम तो ऐसी लगती हो कि तुम से धोखा किया जा सकता है, तुम किसी को धोखा नहीं दे सकती।"

दिलआरा हँसी, बोली— "नहीं, मैंने सचमुच धोखा दिया था, वह सिन्धी सेठ बड़ा चालाक बनता था, मैंने उस से तीस हजार रुपये ऐंठ लिये !"

"काहे के लिये ?"

"मुझे रुपयों की जरूरत थी।"

लाची को अपनी बात याद आयी। ठीक है, रुपयों की जरूरत यूँ तो हमेशा रहती है, लेकिन कभी-कभी रकम की जरुरत भी पड़

जाती है। एक साधारण रकम के लिये उसने खून कर दिया था। इस तीस हजार की धोखा-देही कोई तअज्जुब की बात नथी, जरूर कोई विशेष बात होगी, जभी तो इस औरत ने इतना बड़ा घोटा दिया था। लाची को कुरेद लगी, उस ने पूछा—

"तुम फिल्म में काम करके कितना कमा लेती हो?"

"मैं पन्द्रह बीस हजार रुपया महीना कमा लेती हूँ।'

"फिर तुमने तीस हजार के लिये धोखा क्यों किया?"

"मैं एक गाड़ी खरीदना चाहती थी। एक महाराजा उसे साठ हेजार में दे रहा था और वह तो ऐसी प्यारी गाड़ी थी कि साठ हजार में भी सस्ती थी। लेकिन यह साठ हजार मेरे पास न थे और यह सिन्धी सेठ एक अरसे से मेरे पीछे पड़ा था, मैंने उसे बेवकूफ़ बना दिया!"

"एक गाड़ी के लिये —? क्या तुम्हारे पास उस से पहले कोई गाड़ी न थी?'

"हुँह! दो थीं, मगर मैं तो यह नईवाली गाड़ी लेना चाहती थी, अरी! तुम देखोगी उसे तो जान निकल जायेगी, कैसी प्यारी सुइट गाड़ी है सिलवरग्रे!"

दिलआरा ने खुरपी छोड़ कर अपने दोनों हाथ खुशी से मिला-कर अपने सीने पर रख लिये, उसकी हथेलियों में सिलवरग्रे गाड़ी चमक रही थी!

लाची बहुत देर तक कुछ नहीं बोली, वह सर झुकाये खुरपी से घास निकालती रही! उसकी कुछ बहनें थीं, रस्म व रिवाज में जकड़ी हुईं, गरीबी और भूख अज्ञानता का शिकार! वे औरतें अगर चोरी करती थीं, धोखा करती थीं, तो बात समझ में आती थी।

यह एक नयी गाड़ी के लिए धोखा देने की बात लाची की समझ में नहीं आयी। विशेष रूपसे जब किसी के पास दो गाड़ियाँ पहले से मौजूद हों। लाचीने निगाह उठाकर दिलआरा को देखा, कितनी प्यारी खूबसूरत-सी लड़की थी। निश्चित रूपसे कोई मोटर इससे खूबसूरत नहीं हो सकती, फिर मनुष्य एक बढ़िया खूबसूरती को बेच कर एक घटिया खूबसूरती क्यों मोल लेता है?— यह किस तरह का सौदा है?

सहसा लाची ने गुस्से से कहा— "तुम्हें एक जलील लोहे की गाड़ी के लिये धोखा देते शर्म नहीं आयी?"

दिलआरा ने लाची की तरफ संतोष से देखा। उसे जरा भी गुस्सा नहीं आया। फिर वह धीरे से मुस्करायी। मगर जब उसने लाची की आँखों से ईमान और सत्यता के अंगारे से निकलते देखे तो वह उनकी चमक की ताब न ला सकी, उस की आँखें नीचे झुक गईं, वह खुरपी से निकाले हुए घास के जूड़ों की जड़ों से भूरी मिट्टी झाड़ते हुए बोली— "मैं जब सात साल की थी तो पहली बार बेची गयी थी, स्वयं मेरे माँ-बाप ने मुझे आठ सौ रुपयों में बेच दिया था, तुम विश्वास नहीं करोगी।"

"कर सकती हूँ।" लाची बोली— "हमारे यहाँ भी होता है, खुद मुझ से हो चुका है।" "सातसाल से सत्रह साल तक मैं दस बार बेची गयी हूँ। हरसाल मेरा बाप बदल जाता था। हर साल एक नया खरीदार आता था, हर साल मेरी कीमत बढ़ जाती थी, क्यों कि मैं बहुत खूबसूरत हूँ न!"

"हाँ, तुम बहुत खूबसूरत हो," लाची ने कहा— "बिल्कुल गुड़िया मालूम होती हो।"

अरी जान से प्यारी लाची!
यूँ तो इस दुनिया में मन्दिर और मस्जिद और गिरिजा बहुत से हैं, मगर सच पूछो तो एक चप्पा ज़मीन खुदा का नहीं है!



दिलआरा बोली— "जब मैं छोटी थी, तो मेरे खरीदार मेरे माँ-बाप बन जाते। जब मैं बड़ी हुई तो वही मेरे शौहर होने लगे। जब मैं फिल्म में आयी तो कोई माँ न रही, कोई बाप न रहा, कोई शौहर न रहा, तब दल्लाल बन गये। इसलिये क्या धोखा नहीं है, और क्या है, इस का मुझे पता नहीं है।"

"मगर मुझे मालूम है।" लाची ने बड़ी निर्भयता से कहा।

कुछ देर तक दोनों चुप रहीं, खुरपियाँ धीरे-धीरे चलती रहीं, फिर लाची ने पूछा—

"क्या मैं फिल्मस्टार बन सकती हूँ?"

"जरा खड़ी हो जाओ।" दिल आरा ने संकेत किया। लाची खुरपी फेंकर जामुन के पेड़ के नीचे खड़ी हो गयी। उसके सामने दिलआरा खड़ी हो गयी और उसे दक्ष निगाहों से देखते हुए बोली— "अरे तुम तो लूट के खा जाओगी।"

लाची हँसते हुए बोली— "हमीदा भी यहीं कहता था।"

"कौन हमीदा?"

"एक टैक्सीवाला है, उधर स्टेशन पर!"

"हुँह!" दिल आरा ने बड़ी बेइज्जती से कहा— "वह टैक्सीवाला क्या तुम्हें फिल्मस्टार बनायेगा? मैं बना सकती हूँ!"

"सच? मगर इस के लिए मुझे क्या करना होगा?" लाची ने बडे अनुराग से पूछा।

"सब से पहले तुम्हें अपनी इज्ज़त देनी होगी!"

लाची ठस्स होकर जामुन के पेड़के नीचे बैठ गयी। "तुम भी? दिलआरा तुम भी यह कहती हो? फिर तो यह जेल ही बेहतर है।" लाची ने बड़ी मजबूती से कहा और खुरपी चलाने लगी। इतने में जैनाबाई दौडती हुई आयी और दिलआरा से कहने लगी— "चलो उधर दफ्तर में कालीचरण साहब तुम्हें बुलाते हैं।"

दिल आरा ने चौंक कर पूछा— "क्या बात है?" "वह उधर एक प्रोड्यूसर तुमसे मिलने के लिये आया है।"

दिलआरा ने खुरपी छोड़ दी। रौस के किनारे लगे हुए पानी के नल से हाथ धोये और जैनाबाई के साथ काली चरण के दफ्तर को चली गयी।

* *

अनुक्रमणिका





– २ –

कालीचरण के दफ्तर में हाजी अब्दुल सलाम और मीरचन्दानी दोनों बैठे हुए थे। दिलआरा अन्दर आकर मीरचन्दानी की बगल में बैठ गयी और उसके सिगरेटों के डिब्बों में से एक सिगरेट निकालकर पीने लगी। हाजी और मीरचन्दानी दोनों ने अपने लाइटर जलाये और आगे बढ़ाये। दायें–बायें दिलआराके सामने दो लाइटर थे। दिलआरा ने दोनों तरफ़ देखा, फिर उसने हाजी से मुँह फेर लिया और मीरचन्दानी के लाइटर पर झुक गयी। एक क्षण के बाद उसके पतले–पतले होटों से धुवें के नाजुक–नाजुक गुब्बारे-से निकलने लगे। हाजीने उदास होकर अपना लाइटर बुझा दिया। हाजी दिलआराको बहुत चाहता था, उसके लिये दिन – रात आहें भरता था। वह उसके लिए बीस हजार रुपये तक खरचने को तैयार था, मगर दिलआरा जब बात करो एक लाख की बात करती थी। अब यह तो मुहब्बत है, हाजी ने सोचा, कोई बिजनेस तो है नहीं, कि आदमी एक लाख छोड़ दस लाख का जुआ भी खेल जाये ...... बिज़नेस में रिस्क तो लेना पड़ता है, लेकिन मुहब्बत में इतना रिस्क कौन मौल ले! ...... अब अगर पन्द्रह बीस हजार की बात होती तो खैर चलिए, इस रकम को भी दिलआरा पर न्यौछावर किया होता, मगर यह कमबख्त दिल आरा तो मुहब्बत को बिजनेस बनाये बैठी थी। अब उसे कौन समझाये कि बिजनेस बिजनेस है और मुहब्बत मुहब्बत है। बिजनेस को बिजनेस के तरीके पर चलाना चाहिये और मुहब्बत को मुहब्बत अर्थात् मनबहलाव के भाव में देखना चाहिये! हुँह्! चलिये कोई और मिल जाएगी, दुनिया में औरतों और मुहब्बतों की क्या कमी है?

और मीरचन्दानी तो एक पैसा देनेवाला न था, उसे दिलआरा से मुहब्बत भी न थी। वह एक प्रसन्नचित्त सुन्दर मनुष्य की नजर से देखता था, कुछ मनभावने क्षणों का साथी। दोनों को ब्रिज का, अच्छे कपड़ों का, अच्छी मोटरों का, अच्छी शराब का बहुत शौक था, औरत और मर्द के सम्बन्ध तो मीरचन्दानी के लिये एक दूसरे दर्जे की जगह रखते थे। औरतें मीरचन्दानी को केवल इसलिये अच्छी लगती थीं कि वह आनन्दित समय का एक बहुत बड़ा सहारा थीं। ड्राइंग रूम में उनके भोले–भाले पालिश चेहरे, रंगीन साड़ियाँ, कसे हुए शरीर और मूर्खता भरे वाक्य कितने अच्छे मालूम होते हैं। आदमी एकदम सट्टाबाजार, ब्लैक मार्केट, धोखादेही और चार-सौ-बीस की चरमसीमा की निम्न कोटि की दुनिया से निकल कर एक मासूम, नरम, मुलायम और प्यारी दुनिया में पहुँच जाता है। बिजनेसमैन के लिये दिन भर की जान लेती मेहनत और थकन के बाद औरत ऐसी ही जरूरी है जैसे सर दर्द के लिये एस्प्रो या अनासीन या कोई भी इस तरह की सफेद रंग की सुन्दर टिकिया! स्वच्छ चिकने कागज में लिपटी हुई...औरत और सर दर्द की टिकिया के पैकिंग में अधिक अन्तर नहीं होता। कम-से-कम मीरचन्दानी ऐसा ही समझता था और अजब बात यह है कि दिलआरा उस से पूरी तरह सहमत थी। जिस तरह उसकी जिन्दगी बीती थी, जिस तरह वह बार-बार बेची और खरीद गयी थी। समाज के बाजार में, उसे ध्यान में रखते हुए दिलआरा का दिल मीरचन्दानी के विचारों को सौ प्रतिशत समर्थन करने पर मजबूर था। सिगरेट सुलगा कर उसने अपनी बेहद सुडौल कलाई मीरचन्दानी के कंधे पर रख दी और बड़ी ही मासूम मुस्कराहट से हाजी जी की तरफ देखकर बोली—"हाजी चाचा! क्या प्रोग्राम है? क्यों बे कालिये तूने मुझ को क्यों बुलवाया है?"

हाजी से पलटकर उसने कालीचरण को अपनी निगाहों का शिकार किया। मर्दों की दुनिया में औरत हर समय चौकस रहती है, तीर व कमान से लैस रहती है, बेचारी क्या करे? अगर कालीचरण की बेइज्जती न करे, उसके हृदय और कलेजे में नज़रों के नश्तर न चुभाये तो वह उसे दिन रात ऐसी रियायतें क्यों कर देगा? कालीचरण का दिल दिलआरा को देखकर काँपने लगता था। दिलआरा को खूब मालूम था कि वह क्यों काँपता था और क्या चाहता था। जिस दिन उस ने उसकी राहत पूरी कर ली, वह दिल न काँपेगा न चाहेगा। अभिमान से गर्दन ऊँची करेगा, घमंड से दुनिया को देखेगा और बेइज्जती से दिलआरा को... इस लिये यही उत्तम है कि इस दुष्ट को कालिया कहा जाये और कभी–कभी जब बहुत झुँझलाने लगे तो उसे सौ–पचास रुपये रिश्वत में दे दिये जायें। क्यों कि काली चरण तो सिर से पैर तक लालची था। तुम उसकी कामवासना पूरी नहीं कर सकते, तो उसकी लालच की आग ही बुझा दो, और क्यों कि कालीचरण के लिये बहुत से भाव बदलने वाले थे। अन्त में रुपये में परिवर्तित हो जाते थे। औरत की मुहब्बत माँ की ममता, बापकी बीमारी, कैदी की पैरोल, प्रेम, विरह वह सब की तरफ कुछ क्षणों के लिये प्रशंसा-भरी निगाहों से देखता फिर जैसे हर भावको अपने हाथ में लेकर वजन करता और अन्त में उस पर रुपये का लेबल लगा देता। इस भाव के इतने पैसे और इस रियायत का इतना मूल्य चुका दो, कालीचरण तुम्हारा है।



...हाँ। मैं हाजी अब्दुल सलाम! सुनिए...अगर पन्द्रह बीस हजार की बात होती तो खैर चलिए, बिज़नेस में रिस्क तो लेना पड़ता है, लेकिन मुहब्बत में रिस्क कौन मोल ले?

हाजी अब्दुल सलाम बोले—"आज बहुत दिनों के बाद दिलदार रोड पर जाने को जी चाह रहा है, गाना सुनेंगे?"

दिलआरा तो ऐसे कामों के लिए तुरन्त तैयार रहती थी। फौरन् बोली—"अरे मजा आ जायेगा, लखनऊ में दो साल मैं भी कोठे पर बैठी हूँ, वाह! वाह! क्या दिन थे वे...फिर से पुरानी यादें ताजी होंगी, एक ठुमरी मैं भी गाऊँगी।"

"तो तुम मेरे साथ चल रही हो ना ?" हाजी अब्दुल सलाम ने पक्का करते हुए पूछा।

दिलआरा ने मुड़ कर मीरचन्दानी की तरफ देखा और पूछा— "तुम नहीं जा रहे हो ?" मीरचन्दानी बोला—"मैं सोच रहा था, आज मैं रात को अपनी भाभी की बहन की देवरानी की जेठानी की मौसी के यहाँ हो आता।"

"अरे वही डार्लिंग रोड वाली ऐंग्लो इण्डियन कम्बख्त !—नहीं... नहीं... तुम नहीं जा सकते और अगर तुम गये तो मैं सुपरिन्टेन्डें जेल को रिपोर्ट कर दूँगी। मुझे एक हफ्ता हुआ है जेल से बाहर निकले हुए। तुम क्या चाहते हो, मैं यहीं घुट-घुट के मर जाऊँ !"

मीरचन्दानी ने सर झुका दिया, बोला—"बहुत अच्छा मैडम ! आज गाना सुनने चलेंगे ! जहाँ कहोगी वहीं चलेंगे !"

हाजी का मुँह उतर गया। उसने मीरचन्दानी से मिलकर प्रोग्राम बनाया था कि मीरचन्दानी तो डार्लिंग रोड पर ऐंग्लो इण्डियन दोस्त के यहाँ जायेगा और हाजी दिलआरा को दिलदार रोड पर गाना सुनाने ले जाएगा। मगर उस कम्बख्त दिलआरा ने सब प्रोग्राम चौपट कर दिया। अब यह कम्बख्त जहाँ जाएगी मीरचन्दानी की बगल ही में बैठेगी, उसे क्या मजा आएगा खाक ? बड़ी मुश्किल से उसने कालीचरण को पाँच सौ रुपये देकर आज रात का प्रोग्राम बनाया था। मगर..."तो-तो-फिर मेरा क्या होगा ?" बेचारे हाजी ने अन्त में कह ही दिया।

"घबराओ नहीं चाचाजी ! तुम्हारे लिए कोई और बन्दोबस्त करते हैं।"

"कौन ?"

"लाची !" दिलआरा बोली।

"लाची ?" हाजी ने पूछा — "औरत है ?"

"औरत नहीं है, डायनामेट है !" मीरचन्दानी ने धीरे से कहा।

फिर उसने सिगरेट सुलगाने के लिये एक माचिस जलायी और देर तक उसे देखता रहा, जब तक कि माचिस बुझ न गयी और सिगरेट ज्यों-का-त्यों उस के हाथ में रह गया।

कालीचरण ने खाँस कर कहा —"मैं समझता था आप सिर्फ तीनों बाहर जाएँगे। अब एक और बढ़ गया, तो मुझे एक बाडीर और आप लोगों के साथ करना पड़ेगा। दो सौ रुपये और होंगे।"

मीरचन्दानी ने जेब से दो सौ के नोट निकल कर कालीचरण को थमाते हुए कहा — "यार ! तुम तो इतने पैसे लेते हो कि रंडी भी मुजरा करने को न लेती होगी।"

कालीचरण ने घंटी बजाकर चपरासी से कहा— "जैनाबाई को बुलाओ।"

तय यह हुआ कि दिलआरा तो जेल से सरकारी तौर पर जाएगी किसी फ़र्जी प्राड्यूसर की शूटिंग पर। वह तो नौ बजे चली जाएगी। दस बजे के बाद जब पहरा बदलेगा तो एक काली गाड़ी जेल के बाहर-मीरचन्दानी और हाजी अब्दुल सलाम और लाची का इंतजार

ऐ खानाबदोश छोकरी! सुनो इस मीरचन्दानी की बात...जेबकी ताकत से बड़ी ताकत इस दुनिया में और कोई नहीं है।



करेगी। तीन वार्डर उन तीनों के साथ होंगे और दो वार्डर दिल आरा के साथ। सुबह पांच बजे से पहले आ जाएँगे और किसी को कानोंकान खबर तक न होगी।

दिलआरा ने लाची को पटा लिया था, और लाची इसलिये मान गयी थी कि उसने आज तक किसी रंडी का कोठा न देखा था। चुनाञ्चे दिलआरा लाची को समझा बुझा कर रात के नौ बजे जेल से चल पड़ी। बाहर हरे रंग की एक गाड़ी उसका इंतजार कर रही थी। उसमें बैठ कर दिलआरा ने गाड़ी आगे बढ़वा ली और जेल के पश्चिमी कोने पर जाकर गाड़ी रुकवा दी और बाकी लोगों का इंतजार करने लगी।

दस बजे के लगभग हाजी की काली केडीलेक में हाजी, मीरचन्दानी, लाची और तीन वार्डर लदे-फँदे आ पहुँचे। दिलआरा ने हरे रंग की गाड़ी छोड़ दी और चूँकि गाड़ी में जगह कम थी इसलिये वह इत्मीनान से केडीलेक के अन्दर आकर मीरचन्दानी की गोद में बैठ गयी और चूँकि उसके साथ दो वार्डर भी थे, इसलिये एक वार्डर को आगे बैठा दिया गया और दूसरे वार्डरकी जगह बनानेके लिये दिलआरा ने लाची से कहा—कि वह हाजी की गोद में बैठ जाये।

"ना! मैं न बैठूँगी किसी की गोद में!" लाची गुस्से से चिल्लायी।

"अरी कुछ मिनट की तो बात है!" दिल आराने उसे दिलासा देते हुए कहा—"गाड़ीमें जगह कम है, इसलिये कह रही हूँ और एटीकेट भी यही कहता है।"

"चूल्हेमें जाये तुम लोगों का एटीकेट!" लाचीने फ़ैसलाकुन स्वर में कहा—"इस दढ़ियल हाजी की गोदमें तो तुम्हारा वार्डर ही बैठेगा।"

जब लाची किसी तरह न मानी तो ठूसमठस करके वह वार्डर बेचारा किसी तरह गाड़ी में बैठ ही गया, और गाड़ी दिलदार रोड को रवाना हुई।

दिलदार रोड अजीब तरह का बाजार था, एक तरफ़ औरतों के कोठे थे दूसरी तरफ़ लकड़ियों के टाल थे और पुराने जंग लगे लोहे के टुकड़ों की दूकानें! यहाँ हर तरह की औरतें और हर तरह की लकड़ियाँ बेची जाती थीं। लम्बी, छोटी, सस्ती, महँगी हर प्रकार की लकड़ी यहाँ मिलती थी। बाँस की, बबूल की, सागवान की, और शीशम की लकड़ियाँ, जिन्हें दीमक चाट गयी थीं, औरतें जिन्हें शारीरिक बीमारियों ने खा लिया था, सस्ती लकड़ियाँ, महँगी लकड़ियाँ। औरतें जो जंग लगे लोहे के पतरों की तरह खुले किवाड़ों की दहलीज पर बैठी हुई गाहक का इन्तज़ार कर रही थीं। नालियाँ, पेशाब की दुर्गन्ध, और शराबियों की उल्टी से अटी हुई थीं और उनपर बासी चमेली के कुम्हलाये हुए फूल तैर रहे थे। और फ़िज़ा में तबले की ताल पर और सारंगी की लय पर जली बुझी ठुमरियाँ और सस्ते फ़िल्मी गाने मक्खियों की तरह भिनक रहे थे, और उन सब के ऊपर अँधेरी गलियों का अँधेरा एक अपराधी कुहरे की तरह छाया हुआ था। यह औरतें इन्सान हैं कि लकड़ी की खपचियाँ! यह दल्लाल आदमी हैं कि लोहे के जंग लगे पतरे! यह जिन्दगी के जीते जागते गीत हैं कि नर्क और मौत के डरावने गीत! यह इसी दुनिया का बाजार है या खोई हुई आत्माओं की वादी... एक क्षण के लिये मनुष्य यह भी तो भूल जाता है कि यह वही दुनिया है जहाँ मासूम बच्चे माँ की गोद में ठुमकते हैं, जहाँ माथे पर घूँघट काढ़े हुए सिन्दूर के टीके लगाए हुए पवित्र स्त्रियाँ थाली में भोजन परोस कर अपने थके हुए पतियों के सामने रखती हैं और उनकी दृष्टि में बड़ी लज्जा से झुक-झुक जाती है।

'मोरे जोबन का देखो उभार।'

यह जोबन का उभार है या किसी गलीज गन्दे सड़े फोड़े का!

सहसा लाची को अनुभव हुआ, जैसे प्रत्येक कोठे पर वही गा रही थी, वही नाच रही थी, वही बेची जा रही और यह केवल शुद्ध पुरुषों की सभ्यता थी। मर्दों ने औरतों को चारदीवारी में ढकेल दिया था और खुद अपने हाथों से यह ऊंचे भव्य महलों, हवाई जहाज़ों और राकेटों की सभ्यता बनायी थी। यह लोग चाँद के दिल तक पहुँचने वाले क्या कभी स्त्री के दिलतक भी पहुँच सकेंगे?

सहसा लाची ने गुस्से से थूक दिया, बोली—

"मुझे वापस जेल ले चलो।"

"अभी तो रात जवान है प्यारी!" हाजी ने लाची की बाँह पकड़ कर कहा, उसके अंदर व्हिस्की के चार पेग जा चुके थे और वह बिल्कुल उसी तरह अनुभव कर रहा था, जिस तरह चार पेग पीने के बाद पुरुष अनुभव करता है।

लाची ने अपनी बाँह उससे छुड़ाना चाही, नर्मी से, सतर्कता से, सज्जनता और सभ्यता के साथ। मगर हाजी ने उसे जबरदस्ती खींच कर अपने पास बिठा लिया और उसकी कमर में हाथ डालकर बोला, "लो पियो!"

लाची ने उसके हाथ से गिलास ले लिया और फिर उस के सर पर उँडेल कर बोली—"सूअर के बच्चे! हरामी!"

मीरचन्दानी ने गुस्से में आकर लाची के मुँह पर एक चाँटा रसीद किया। लाची एकदम गुस्से से उठी, उसने मीरचन्दानी को गर्दन से पकड़ कर नीचे गिरा लिया और जब हाजी उस की सहायता को उठा तो उसने पैंतरा बदल कर उसे भी चित कर लिया और फिर वह दोनों की छाती पर चढ़ कर, दोनों के सिरों को एक दूसरे से तबले की तरह बजाने लगी और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी।



प्रत्येक मनुष्य के चरित्र के तीन रूप होते हैं — एक तो जैसा कि वह स्वयं अपने को समझता है, दूसरा जैसा कि अन्य व्यक्ति उसको समझते हैं और तीसरा जैसा कि वह वास्तव में होता है।

"ताक धना-धन धेइया, ताक धना-धन, ताक धना धन, ताक – ताक!"

मीरचन्दानी और हाजी चीखने लगे, थोड़ी देर में भगदड़ मच गयी। लाची और वार्डर और गाहक और रंडियाँ और सारंगी वाले और फूलोंवाले और सुगन्धित इत्रवाले, एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो रहे थे और सबके बीच में लाची एक झल्लाई हुई शेरनी की तरह वार कर रही थी, इसको पटक उसको मार, उसको गिरा, उसका मुँह नोच, उसके बाल खसोट कर एक वहशियाना खुशीसे चीख रही थी और नाच रही थी।... "ताक-धिना-धिन-धेइया!"

धब्-धब् करती भिन्न-भिन्न जीनों से भागती हुई पुलिस अन्दर आ गयी। इन्स्पेक्टर और सब् इन्स्पेक्टर और हवलदार और संतरी... कुछ मिनट के बाद शान्ति हो गयी, पुलिसने सब को गिरफ्तार कर लिया। वार्डरों ने संतरियों के कानों में बहुत खुसुर-खुसुर की, मगर उन की कोई सुनवायी न हुई। हवलदार बोला– "जो कहना है, चौकी पर चल के कहो।"

जब सब लोग हवालात में बन्द कर दिये गये तो एक वॉर्डर ने कह सुन कर असिस्टंट जेलर कालीचरण को टेलीफोन पर बुलाया। कालीचरण पसीने में तर-ब-तर भागता हुआ आया। उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और वह थर-थर काँप रहा था, अगर यह मुआमला पुलिसने न दबा दिया तो बरखास्त तो क्या होगा, शायद उसे भी जेल हो जाये।

इन्सपेक्टर और डिप्टी जेलर मुँह जोड़ कर बैठे। फिर कालीचरण ने हाजी और मीरचन्दानी से मुलाकात की। फिर हाथ एक जेबसे दूसरी जेबमें गये, दूसरी जेबसे तीसरी जेबमें, जब जाके कहीं खलासी हुई और कैसे न होती, मीरचन्दानी और हाजीको मालूम था कि जेबकी ताकतसे बड़ी ताकत इस दुनिया में और कोई नहीं है।

सुबह पाँच बजे, से पहले-पहले जब तफरीहबाजों की यह टोली फिरसे ज़ेलके अंदर पँहुच गयी, जब जाके कहीं कालीचरण को संतोष हुआ, बाल-बाल बचे, वर्ना आज नौकरी खत्म थी। * *

– ३ –

कालीचरण का अगर वश चलता तो इस घटना के बाद लाची को जेल के अन्दर ही अन्दर कड़ी से कड़ी सजा देता, क्यों कि लाची की हठधर्मी से यह सारा फ़साद खड़ा हुआ था। अगर ठीक मौके पर पुलिस इन्सपेक्टर अपने अफ़सर भाई की सहायता करने पर राज़ी न हो जाता तो दूसरे दिन शोर मचानेवाले अखबार और बात का बतंगड़ बनाने वाले जर्नलिस्ट यह पूछने का हक रखते कि आखिर जेल के कैदी पुलिस की हवालात में कैसे पाये गये? उसे लाची पर बेहद गुस्सा आ रहा था। कमीनी, खाना-बदोश दो टके की छोकरी! न जाने अपने आप को क्या समझती है? उसका जी चाहता था कि टिकटिकी पर बँधवा कर लाची की पीठ पर बेंत लगाये, और कल्पित विचारों में उसने ऐसा कर भी लिया और बनावटी तौर पर उसकी खुशी से उसने आनन्द भी उठा लिया। मगर जहाँ तक सचाई का सम्बन्ध है, सचाई यही थी कि लाची की तस्वीर खूबचन्द बना रहा था, इस लिये लाची की सीधी पहुँच सुपरिन्टेन्डेंट जेल तक थी। इसलिये यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि बेंत खाना तो क्या, वह तो जरा से अनुचित व्यवहार पर सुपरिन्टेन्डेंट जेल से शिकायत कर देगी, सारी घटना खोलकर बयान कर देगी, और लेने के देने पड़ जायेंगे। यही सोच कर कालीचरण चुप रहा और उसने लाची से किसी तरह की पूछ-ताछ न की। जैना ने लाची को केवल इतना समझा दिया कि वह इस घटना का खूबचन्द से या किसी से बिल्कुल जिक्र न करे, वर्ना मुझे सख्त सजा दी जायेगी। बुड्ढी जैना की खातिर लाची ने खामोश रहना स्वीकार कर लिया। अलबत्ता इस घटना के बाद दिलआरा और लाची की कट्टी हो गयी थी और वह दोनों एक दूसरे से बातचीत करने को तैयार न थी, इसमें किसी निजी दुश्मनी का अधिकार न था, इन दोनों स्त्रियों के मध्य किसी जायदाद के बटवारे का झगड़ा भी न था। दोनों को एक दूसरे से किसी तरह की ईर्ष्या या जलन भी न थी। यह लड़ाई ख्यालात की लड़ाई थी। दिलआरा का ख्याल था कि लाची आवश्यकता से अधिक सतीत्व की विशेषता जताती है और उसका सम्बन्ध स्त्री की आत्मा और उसका पूरा व्यक्तित्व पर वशीभूत करती है। यह ग़लत है। औरत का सतीत्व तो औरत के हाथ में एक तरह का हाथियार है जिसे उसे अपनी जिन्दगी की बेहतरी और दुनिया की अच्छी से अच्छी चीज़ोंको हासिल करने के लिए मुनासिब मौक़ों पर मुनासिब तरीके से उपयोग करना चाहिए और इसमें किसी प्रकार की भावुकता को अधिकार न होना चाहिए, और लाची का ख्याल था—जाने उसके दिल में क्या ख्याल थे, वह पढ़ी-लिखी तो थी नहीं कि दिलआरा की तरह अपना मतलब सभ्य तरीके से बयान कर सकती, बस उसे एक जिद थी, एक उन्माद था जो उसके सर पर सवार था, वह यह कहती थी — मैं बिकूँगी नहीं। किसी मूल्य पर नहीं बिकूँगी! और यह जो दिलआरा है, जो देखने में इतनी सुन्दर दिखायी देती है बड़ी आवारा और बदमाश औरत है। मैं इसे कभी मुँह न लगाऊँगी!




अगर आप इसे किसी विश्वास का नाम दे सकते हैं तो यही लाची का विश्वास था।

मगर इस दुनिया में यह भी होता है, क्योंकि वह एक सुलझी हुई अक़्ल वाली दुनिया है। जिसमें आप और हम रहते हैं। इस दुनिया में जब कोई लाची ऐसी भटकी हुई आत्मा आ जाती है तो हम में से हर एक की इच्छा यह होती है कि उसे ठीक रास्ते पर लाया जाये, अपने भले के लिये नहीं, केवल उसकी अपनी भलाई के लिये ...... इस प्रकार के ग़लत, मूर्खता-भरे विश्वास को अपने दिल में जगह देकर कोई स्त्री एक दिन इस दुनिया में जिन्दा नहीं रह सकती।

यही सोच कर जैना ने और जेल की दूसरी औरतों ने लाची के सुधार का बीड़ा उठाया, और लगातार डेढ़-दो साल तक अपनी कोशिशों में लगी रहीं। हाजी अब्दुल सलाम और मीरचन्दानी ने भी इस नेक काम में उन लोगों की रुपये पैसे से बहुत मदद की। फिर यह बात भी थी कि हाजी अब्दुल सलाम और मीरचन्दानी दोनों ने उस रात के भयानक घटना के बाद यह निश्चित कर लिया था कि जिस तरह भी हो सके लाची के गर्व को तोड़ देना चाहिए और उसके व्यक्तित्व को और उसके निजी सौंदर्य व शीलता को कुचल कर यों बराबर कर देना चाहिए जैसे कोलतार की सड़क होती है। इस काम के लिए हाजी और मीरचन्दानी ने जैनाबाई को ठेका दिया, क्योंकि इस सभ्य दुनिया में आजकल हर काम ठेके पर दिया जाता है। दो बैंकरों ने इस काम के लिए पचास हजार रुपया मंजूर किया। वे लोग जो दिलआरा के लिए पन्द्रह बीस हजार खरचना अपनी बुद्धिमत्ता के विरुद्ध समझते थे, अब गुस्से में ताव खाकर पचास हजार तक देने को राजी हो गये। इन व्यापारी लोगों का गुस्सा भी रुपये ही की सूरत में निकलता है। ये लोग अगर धर्म और ईमान पर आ जायें तो मन्दिर और मस्जिद बनाने के लिये हजारों खर्च कर दें। बदला लेने पर आ जायें तो हजारों खर्च कर के मुझे और आपको मरवा डालें, मुहब्बत करने पर आ जायें तो अपनी प्रेमिका को अशर्फियों में तौल दें और सोने से लाद दें। एक निर्धन आदमी उनके मुकाबले पर मुहब्बत करने की हिम्मत ही कहाँ कर सकता है और फिर लाची जैसी असहाय औरत कब तक सोने की सड़क पर चलने से इन्कार करेगी! —यह भी देखना है। —इसलिये बहुत सोच-विचार के बाद प्रोजक्ट लाची मंजूर किया गया, उसका बजट पास हुआ, ठेका दे दिया गया और मजदूर काम पर लगा दिये गये! मगर नतीजा वही ढाक के तीन पात! "मैं नहीं बिकूँगी; मर जाऊँगी! मगर नहीं बिकूँगी!" यही लाची का अन्तिम फैसला था।

जैना ने समझाया— "पचास हजार की रकम कोई कम नहीं होती है, मूर्ख मत बनो, आखिर कबूल कर लो। अपनी जिन्दगी बना लो...!"

"और गुल से धोखा करूँ?"

"गुल को पता भी न चलेगा।"

"क्या धोखा उसी को कहते हैं जिसका पता न चले और तुम्हारा क्या ख्याल है मुझे भी पता नहीं चलेगा, मैंने किस से क्या धोखा किया है?"

"इस में धोखे की बात क्या है? यह तो एक समय की चीज़ होगी, सिर्फ इस जेल की चारदीवारी तक सीमित रहेगी। जब तुम अपनी सजा भुगत के जेल से बाहर निकलोगी तो इसी पचास हजार के सहारे एक नयी जिन्दगी शुरु कर सकोगी, जिसमें तुम गुल को भी शरीक कर सकती हो!"

"और गुल को क्या कहूँगी, ये रुपये मैंने कहाँ से हासिल किये हैं?"

"चाहे तो बोल देना मेरे नाम लाटरी निकली है, चाहे तो सचमुच बता देना और फिर देख लेना गुल की आँखें तुम्हारे बेगरज प्रेमी गुल की आँखें भी इन रुपयों को देख कर फटी रह जायेंगी और वह तुम्हारी जबान से तुम्हारी बेवफाई की दास्तान सुन कर भी तुम से समझौता कर लेगा।"

"नहीं वह ऐसा नहीं करेगा!"

"शर्त हो जाये!"

"नहीं, मैं शर्त लगाने के लिये भी तैयार नहीं हूँ। यह बात नहीं है कि मुझे गुल पर भरोसा नहीं है। वह तो है ही, और कभी नहीं बदलेगा मेरा गुल!... यह भी मैं जानती हूँ; मगर मैं क्यों एक शर्त की खातिर ऐसी ग़लत बात करूँ।"

"इसमें ग़लत बात क्या है?—तुम अपने शरीर की मालिक हो। यह शरीर तुम्हारा है, किसी दूसरे का तो है नहीं और मुहब्बत तो बेकार-सी शै है। जिन्दगी में दस बार मुहब्बत होती है, बीस बार टूट जाती है, चालीस बार फिर हो जाती है। खुद मैंने अपनी जवानी में न जाने कितनी अनगिनत मुहब्बतें कर डालीं। जब पहली मुहब्बत जरा पुरानी और बेदम होने लगी, मैंने उस मुहब्बत का दरवाजा बंद कर दिया और नयी मुहब्बत का दरवाजा खोल दिया!"

"अरी दिलआरा की बात तो सुनो न....अरे मजा आयेगा! मैं भी दो साल कोठे पर बैठी हूँ! वाह! वाह! क्या दिन थे वे...!"



"वाह!" लाची बड़े गुस्से से बोली— "औरत की मुहब्बत न होगी, म्यूनिसपैल्टी की टोंटी होगी। जब चाहा टोंटी घुमा कर पानी पी लिया, जब जी चाहा टोंटी घुमा कर पानी बन्द कर दिया" जैनाबाई निरुत्तर होकर चली गयी,

पैलट-पलट के तरह-तरह के हीलों-बहानों से उसने दोबारा तिबारा हजार बार भिन्न-भिन्न तरीकों से लाची के सामने पेश किया, मगर. लाची का एक ही जवाब था इसमें उसकी किसी ज़िदको दखल न था। लाची का जो यह जवाब



हाँ...हाँ...कालीचरण ही कहता है... जमाना एक समुद्र है। उसी में हमें रहना है, उसी में डूबना है, उसका ग़म क्या ?

था, वह जैसे उसके शरीर और आत्मा का पूरा व्यक्तित्व का उत्तर था। वह कोई दूसरा उत्तर दे ही न सकती थी। कभी-कभी वह बौद्धिक विश्वास से निरुत्तर हो जाती, कायल भी हो जाती, मगर दूसरे क्षण में ही दुःख और घृणा का एक रेला-सा लावे की तरह खौलता हुआ उसकी नस-नस में समा जाता और क्रोध से पैर पटक कर कहती-" नहीं! नहीं! जो मुझे मेरी मर्ज़ी के विरुद्ध छुएगा मैं उसे कच्चा खा जाऊँगी।"

कच्चा तो खैर वह क्या खाती? हाँ, जेलमें एक से एक बड़ा बाघ रहता था जो लाची की गर्दन पर छुरी रखकर उसके शील को नष्ट कर सकता था, मगर इस कम्बख्त खूबचन्द की वजह से सब उससे डरते थे। उसके होते हुए लाची को किसी ऐसे जाल में फँसाया न जा सकता था, अधिक से अधिक जो संभव था किया जा रहा था।

लाची को जेल में अजीब-अजीब से तजुर्बे हो रहे थे। एक रोज उसकी भेंट गंगाबाई से हुई, जवान और सुन्दर मराठी लड़की! नाम तो गंगा था, मगर शोखी और चंचलता में नर्मदा से कम न थी। कम्बख्त की बोटी-बोटी थिरकती थी। उस पर दो दर्जन चोरियों का अपराध था। " क्या तुम मुर्गियाँ चुराती थीं ?" लाची ने उस से पूछा।

गंगा के मुँह से हँसी का फ़ौव्वारा उबल कर बिखर गया। उसकी चाँदी ऐसी हँसी की लहरें दूर-दूर तक लहरें लेती हुई वायुमण्डल में गूँज गयीं। बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी को रोकते हुए बोली—" नहीं, मैं कपड़े चुराती थी।"

" कैसे ?"

" मेरे साथ दो मर्द भी काम करते थे, हम तीनों की टोली थी, हम लोग आधी रात के समय बड़ी-बड़ी दूकानों के शो केस का काँच बड़ी सतर्कता से तोड़ डालते, फिर उसमें घुस कर चोरी करते। दोनों मर्द बाहर रहते, मैं अन्दर जाकर प्लास्टिक के मॉडलों के जिस्म से साड़ियाँ उतार लेती और दूसरे थान भी जो शोकेस में सजे होते निकाल-निकाल कर बाहर फेंकती। अगर कोई पुलिसवाला आ जाता तो दोनों मर्द इधर-उधर भाग जाते और मैं शोकेस में खड़ी होकर बिल्कुल एक मॉडल की तरह स्थिर हो जाती और पुलिस वाला मुझे भी एक प्लास्टिक का मॉडल समझकर आगे चला जाता।"

अब की लाची खूब हँसी। उसे यह तरकीब बहुत पसन्द आयी—" बहुत उम्दा बहुत अच्छी तरकीब है!--- बहुत कम किसी को सूझी होगी!"

" हाँ! मगर पुलिस वालों ने आखिर हमें भी पकड़ लिया।"

" तुम जेल से जाकर क्या काम करोगी ?"

" मैं यही काम शुरू करूँगी।"

" फिर सजा पाने का फ़ायदा क्या हुआ ?"

" सजा तो जुर्म के लिये एक ठहराव है......"

गंगा सोचते-सोचते बोली—" और कोई रास्ता भी तो नहीं है।"

" तुमने शादी नहीं की ?"

" जिन दो मर्दों के साथ मैं काम करती हूँ, उन के साथ मैं ने लगभग शादी कर रखी है।"

" दोनों के साथ ?" लाची आश्चर्य से बोली।

" हाँ, दोनों के साथ!" गंगा ने किसी कदर उदास हो कर कहा थोड़ी देर वह कुछ सोचती रही, और अब उस की खुशी फिर उभर आयी फिर बोली—" मगर वे दोनों मुझे बहुत खुश रखते थे।

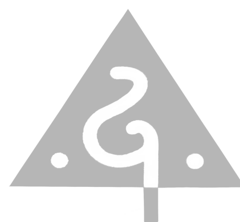
लाची के दिल में एक क्षण के लिए ख्याल आया था कि वह भी जेल से निकल कर कुछ अरसे के लिये इस व्यवसाय को इख़्तियार कर ले, एक क्षण के लिए उसके दिल में इस तरह की चोरी की ख्वाहिश भी पैदा हुई। इस तरह का खतरा मोल लेना उसे बहुत पसंद आया था, मगर वह दो मर्दोंवाली बात उसे पसन्द न आयी। आखिर जब वह दो मर्दों के साथ बराबर उनके खतरे की भागीदार होती है, बराबर का काम करती है, तो उससे यह आशा क्यों की जाती है कि वह चोरी के अतिरिक्त अपना शील भी उनके हवाले कर दे। यह तो धाँधली है, बराबर की साझेदारी नहीं है।

लाची को कौशिल्या भी बहुत अजीब मालूम हुई। कौशिल्या के कई नाम थे। इकबालबानू, सरजीत कौर, मेरी डिसौजा और जाने क्या अलाबला। वह ग्रेजुएट लड़की थी। अंग्रेजी के अलावा उर्दू, हिंदी, मराठी, बंगाली, फ्रेंच, तामिल, मलियालम, जबानों में भी सुध-बुध रखती थी। मेरी अपटूडेफ्ट और फ़ैशनेबिल लड़की थी। गिरफ्तार होने से पहले उसका धंधा यह था कि वह बेकार नवजवानों को नौकरी का लालच देकर और अपनी पहुँच अलग-अलग आफ़ीसरों और मिनिस्टरों पर जाहिर कर के उनसे रुपया ऐंठती थी और रुपया लेकर रफ़ूचक्कर हो जाती थी। अब तक वह दो-तीन सौ नौजवान लड़कों और लड़कियों को इस तरह धोखा देकर उनसे हजारों रुपया हासिल कर चुकी थी।

लाची ने पूछा—" मगर तुम तो पढ़ी लिखी हो। कहीं भी नौकरी कर के दो-तीन सौ रुपया बा इज्जत तरीक़े से कमा सकती हो।"

" दो-तीन सौ में मेरा खर्चा पूरा नहीं होता।"





अनुक्रमणिका

"हाँ, लाची।"

"तो क्या जो आदमी एक हज़ार कमाता है, वह धोखा नहीं करता?"

इस कौशिल्या ने लाख चाहा कि कोई शरीफ आदमी मुझ से शादी कर ले ताकि मैं सामाजिक और कानूनी एतबार से अपनी अस्मत उस के हाथ बेचकर आराम और शान्ति की जिंदगी बिताऊँ।

"नहीं, करता तो है, बल्कि एक हज़ार पाने वाले अधिक धोखा करते हैं।"

"फिर शराफत क्या हुई?"

"तुमने बहुत मुश्किल सवाल पूछा है, लाची!" खूबचन्द ने लाची के करीब जाकर कहा। फिर उसने अपनी जेबसे एक खत निकाल कर कहा—

"तुम्हारे सवाल का जवाब इस खत में है।"

"यह खत गुल का है?"

"हाँ!"

लाची छलाँग मार कर स्टूल से नीचे आ गयी। वह खत लेने के लिए बच्चों की तरह व्याकुल होकर खूबचन्द के पास भागी। खूबचन्द बच्चों की तरह उस से दूर भागने लगा। अन्त में लाची ने खूबचन्द को पकड़ लिया और उसे अपने दोनों हाथों में जकड़ कर उस से अपना पत्र छीन कर उसके दोनों गालों पर बोसा दे दिया। फिर उसने खूबचन्द को अपनी दोनों बाहों में उठा कर उस स्टूल पर बिठा दिया जिस पर वह खुद बैठी थी और वह खुद ईजल के पास जाकर खड़ी हो गयी और ब्रश उठा कर उसने हिदायत के अंदाज से उसे झुलाते हुए कहा—"अभी गुलका खत मुझे सुनाओ, वर्ना मैं इस ब्रश से तुम्हारे सारे रंगों पर पानी फेर दूँगी!"

"अरे रे! ऐसा मत करना भई! मैं अभी खत सुनाता हूँ"

खूबचन्द ने जल्दी-जल्दी से लिफाफा खोला, और पत्र सुनाने लगा—

लाची भाग कर उसके कदमों में आकर बैठ गयी। उसने अपनी ठोढी खूबचन्द के घुटने पर रख ली और खत सुनने लगी—

खूबचन्द बोला—"जान से प्यारी लाची!"

लाचीने खूबचन्द को मारने के लिये एकदम से हाथ उठाया। खूबचन्द ने उसका वार रोकते हुए कहा—"अरे पगली! यह मैं थोड़ी कह रहा हूँ; यह तो गुल का खत तुम्हें पढ़कर सुना रहा हूँ!"

"अच्छा तो ठीक है; मगर हाँ! देखो ठीक-ठीक पढ़ कर सुनाना। अपनी तरफ़ से कुछ जोड़ना नहीं नहीं। तो..."

खूबचन्द सुनाने लगा—

मेरे दिल में हरदम तुम्हारा तसव्वर रहता है। हर वक्त तुम्हारी तस्वीर मेरी आँखों में समायी रहती है। कोई क्षण ऐसा नहीं गुजरता जब अपनी लाची की प्यारी-प्यारी सूरत मुझे याद न आती हो। अव्वल से आखिर तक, जिंदगी से मौत तक जब तक मैं जिन्दा हूँ अपनी लाची से मुहब्बत करता रहूँगा—

लाची आँखें बन्द करके सुनती गयी। उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे यह साधारण शब्द नहीं हैं शहद के घूँट हैं, जो उस की आत्मा में उतरे जा रहे हैं। नरम, मुलायम रेशम के पर हैं, जिनके सहारे वह प्रकृति के वायुमण्डल में उड़ी जा रही है...... "गुल...... गुल...... गुल...... मेरे फूल!!!"

* *

— ४ —

दूसरे महीने गुल लाची से मिलने के लिये आया। लाची गुल को हाथ से पकड़ कर खूबचन्द के प्राइवेट कमरे में ले गयी और बड़े गर्व से उसे खूबचन्द को दिखा कर बोली—

"यह मेरा गुल है।"

खूबचन्द ने गुल को सर से पाँव तक देखा, लम्बा, बाँका, सुन्दर आकृति वाला छरेहरा गुल!... रोबदार और सुन्दरता की जीवित तस्वीर!

खूबचन्दने एक क्षण के लिए दिल ही दिल में अपनी उससे तुलना की, फिर उसके चेहरे पर एक फीकी, खिसियानी रोती-सी मुस्कराहट प्रकट हुई और उसने गुल से कहा—

"आओ-आओ, यहाँ बैठो।"

लाची बोली—"और यह मेरा सुपरिंटान है...... बहुत अच्छा आदमी है। इसकी मेहरबानी से हम लोग यहाँ मिल रहे हैं, वर्ना लोहे की जालीवाले कमरे में मिलते!"

गुल ने धन्यवाद-भरी निगाहों से खूबचन्द की तरफ़ देखा। मगर जबान से कुछ कह न सका। उसके हाथों की बेचैनी अलबत्ता कह रही थी कि गुल अत्यन्त व्याकुल है।

सजा तो जुर्म के लिए एक ठहराव है। और अगर इस गंगा को शादी के बारेमें पूछोगी, तो सुनो—उन दो मर्दों के साथ मैं ने लगभग शादी कर रखी है।

खूबचन्द ने जब गुल की मौनता देखी और उसकी उँगलियों की बेचैनी!—तो उसने धीरे से ब्रश को पानी के छोटे-से प्याले में धोया, फिर वह धीरे से निगाहें झुकाये कमरे से बाहर निकल गया।

खूबचन्द के जाते ही लाची बरबस होकर गुल से लिपट गयी। उसने उसका पेशावरी कुर्ता उतारकर अलग कर दिया और उसके चेहरे को पहले अपने हाथों में लेकर फिर उसे गालों से लगाकर गले में फँसती आवाज में बोली —

" गुल ! ... गुल ! ! ... तुम पिछले महीने मुझ से मिलने के लिये नहीं आये ! क्यों ? "

गुल चुप रहा, वह अपने बेचैन हाथों को कभी खोलता कभी बन्द करता। उसकी छाती से लगी लाची उसके दिल की धड़कन सुन रही थी। हौले-हौले गुल का हाथ लाची की कमर पर गया, उसने एकदम उसे भींच कर अपने गलेसे लगा लिया फिर एकदम छोड़ दिया, और सर झुका कर लाची से अलग होकर बैठ गया।

" गुल ? —क्या बात है ? " लाची एकदम गुल के पास आ गयी और गुल का मुँह अपनी ओर फेरती हुई बोली–" क्या बात है ? बताओगे नहीं ? "

गुल ने कहा–" मेरी दरख्वास्त नामंजूर हो गयी है। "

" कौन-सी दरख्वास्त ? "

" हिन्दोस्तान का शहरी बनने की दरख्वास्त ! "

लाची सहसा खिलखिला कर हँस पड़ी।

" नामंजूर हो गयी तो क्या हुआ ? इसमें इस प्रकार तरह मुँह लटका कर बात करने की क्या बात है, ... हम खानाबदोशों को देखो, हम तो कहीं के नहीं होते। जहाँ जी चाहता है चले जाते हैं। "

" तुम्हारी बात और है। ...... मैं पठान हूँ। मैं पाकिस्तान के मुल्क का रहनेवाला हूँ। "

" मुल्क क्या होता है ? " लाची ने पूछा।

" मुल्क ? " गुल बोलते-बोलते रुक गया। थोड़ी देर के लिये उसने भी अपने आपसे पूछा– ...सचमुच मुल्क क्या होता है ? और जब उसे उसका कोई जवाब न सूझा, तो उसने रुकते-रुकते कहा–

"मुल्क तो मुल्क होता है, जैसे एक मुल्क पाकिस्तान है, एक मुल्क हिन्दोस्तान है, एक मुल्क चीन है, एक मुल्क जपान है...यह सब मुल्क धरती के अलग-अलग हिस्से हैं। "

" मगर हम खानाबदोशोंके लिए तो यह सारी धरती एक है। "

" मगर इस दुनिया के इन्सानोंके लिए एक नहीं। " गुलने जरा कड़ुवेपनसे कहा–" उन्होंने वह जो अपने आपको सभ्य मनुष्य और तरक्कीयाफ्तः कहते हैं, उन्होंने इस धरती के टुकड़े–टुकड़े कर दिये हैं, और ऐसे अलग-अलग खानोंमें बाँट दिया है, यह तेरा, वह मेरा, वह उसका ! "

" मगर तुम तो मेरे हो। " लाची ने अपनी दोनों बाहोंसे गुलके चारों ओर बड़ी अपनाइतसे घेरा डालते हुए कहा–" तुम तो सिर्फ़ मेरे हो। मुझे किसी मुल्कसे क्या लेना देना ? मैं तो एक गरीब खाना-बदोश लड़की हूँ। मुझे इन बड़ी-बड़ी बातोंकी समझ नहीं है। अगर तुम्हारी दरख्वास्त उन्होंनें नामंजूर कर दी है तो क्या अल्ला मियाँने हम दोनों की मुहब्बतकी दरख्वास्त तो नामंजूर नहीं की। "

" अब तुम्हें कैसे बताऊँ लाची ? " गुलने अत्यन्त व्याकुल होकर कहा — " इस दरख्वास्त के नामंजूर होने का मतलब यह है कि अब मैं हिन्दोस्तान में नहीं रह सकूँगा। तुम से हर माह मिलने के लिए नहीं आया करूँगा। कैद की सख्तियाँ झेल कर तुम जब इस जेलखाने से बाहर निकलोगी तो तुम मेरा चेहरा नहीं देख सकोगी। "

" नहीं–नहीं। " लाची सहसा चीखी — " तुम ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा नहीं कर सकते। कोई मेरे गुल को मुझसे नहीं छीन सकता है। " लाची ने अपनी बाहों को और भी गुल के गिर्द कस दिया और बिल्कुल उस से लिपट कर बैठ गयी। सहसा उसकी आँखों में आँसू डबडबा आये, उसने गुल से कहा —

" नहीं-नहीं तुम झूठ बोलते हो। तुम मुझे परेशान करने के लिए यह सब कुछ कह रहे हो, तुम मुझसे मजाक कर रहे हो। कह दो ना गुल, यह सब मजाक है। "

गुल सर झुकाये चुपचाप बैठा रहा। बहुत देर के बाद जब उसने सर उठाया तो लाची ने देखा कि उसकी आँखों में आँसू झलक रहे हैं। " हम लोग सूदखोर पठान थे। बरसों से इस मुल्क में यही धन्धा करते थे, जब कोई रोक-टोक न थी। मेरे बाप ने कभी हिन्दोस्तान का शहरी बनने के लिए नहीं सोचा, न मैंने ! हम लोग साल दो साल बाद अपने वतन जाते थे और वहाँ कुछ महीने रह कर फिर लौट आते थे, हमारा रोजगार यहाँ था, बर्ताव दूसरा था .... मगर अब बहुत कुछ बदल गया है। .... पहले यह एक मुल्क था, अब इसके दो मुल्क हो गये हैं, अब पाकिस्तान एक अलग और आजाद मुल्क है, हिन्दोस्तान दूसरा मुल्क है। अलग अपनी जगह आजाद ! ...... कानून भी बदल गये हैं ...... सूदखोरी पर पाबन्दियाँ लगायी जा चुकी हैं, मेरे बाप का धन्धा मन्दे में चला गया है। वह तो पाकिस्तान जा रहा है। उस ने तो कभी हिन्दोस्तान का शहरी बनने का नहीं सोचा। मैंने भी इस से पहले कभी

नहीं सोचा था...... मगर पहले तुम न आयी इसलिये मैं क्यों ऐसा सोचता? जब मेरे दिल में तुम्हारी मुहब्बत आयी तो मैंने यहाँ रहने का सोचा...... मैंने हिन्दोस्तान का शहरी बननें की दरख्वास्त दी...... मगर जब यूँ सोचा तो बहुत देर हो चुकी थी...... इन लोगों ने मेरी दरख्वास्त नामंज़ूर कर दी! अब वह मुझे यहाँ रहने न देंगे!"

"तुमने उनसे कहा होता, मेरी लाची यहाँ है, मैं यहाँ से कैसे जा स्कता हूँ?"

"वह लोग मुहब्बत को नहीं समझते, सिर्फ़ नफ़रत को समझते हैं।"

"तुमने कहा होता, यह सारी धरती खुदा की है।"

"यूँ तो इस दुनिया में मन्दिर और मस्जिद और गिरजा बहुत-से हैं, मगर सच पूछो तो एक चप्पा जमीन खुदा का नहीं है।"

"मैं तुम को नहीं जाने दूँगी।" लाची सहसा बड़ी मजबूती से बोली। मगर उसका दिल अन्दर ही अन्दर बैठने लगा। थोड़ी देर के बाद उसने अपने बाज़ू गुल से हटा लिये और अपने चेहरे को उनमें छिपा लिया और सिसकियाँ ले-ले कर रोने लगी।

"क्यों रोती हो लाची?— जाने कब से, आज से नहीं, शायद सैकड़ों हजारों साल से, प्रकृति के पहले दिन से, जिस दिन से आदमी पैदा हुआ उस दिन से इन्सानियत इसी तरह रो रही है और मुहब्बत इसी तरह विलाप कर रही है...नाम तो बहुत लेते हैं लोग इन्सानियत का, मुहब्बत का, और खूबसूरती का और भाईचारे का, हुस्न का, और पाकीज़गी का...राजनीतिज्ञों ने उन क़दरों के ढिंढोरे पीट-पीट कर, लेखकों ने किताबें लिख कर, फ़िलासफ़रों ने जिन्दगियाँ इसी सोच में घुला कर इन्सानियत, मुहब्बत और भाईचारे की दुहाई दी है... मगर किसने इस मुहब्बत के आँसू पोंछे हैं? किसने इन्सानियत को सहारा दिया है? किसने पवित्रता की इज्जत की है? किसने सुन्दरता को सजाया है? यह सब लोग मुहब्बत की आड़ में नफ़रत, इन्सानियत के रूप में दरिन्दगी, खूबसूरती के पर्दे में बदसूरती और पवित्रता के झरोखे में गन्दगी फैला-फैला कर अपनी ऊँची से ऊँची सभ्यता का झंडा ऊँचा करते हैं! —सभ्यता?–इन मनुष्यों से अधिक सभ्यता तो दरियाई घोड़ों में पायी जाती है।"

गुलने धीरे से कहा–"सात दिनों के अन्दर-अन्दर मुझे यहाँ से चला जाना होगा।"

लाची फूट-फूट कर रोने लगी।

गुलने लाची के आँसू नहीं पोंछे, उसने सिर्फ़ अपने आँसू हाथ की पुश्त से झिटक दिये। उस का निचला जबड़ा तन गया, उसने बड़ी कठोरता से अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ बन्द कीं और सहन खड़ा हो गया।

"अच्छा लाची मैं जाता हूँ।"





लाची ने उसके पाँव पकड़ लिये– " मत जाओ, मेरे गुल ! मत जाओ–कहीं मत जाओ ! "

मेरी दरख्वास्त नामंजुर होने का मतलब है कि अब गुल हिन्दोस्ताँ में नहीं रह सकेगा । और ... और ... कैद सख्तियाँ झेलकर तुम जब जेलखाने से बाहर आओगी तब मुझे मिल न सकोगी !..



गुलने बड़ी कठोरता से एक पग उठाया, दूसरा पग, तीसरा पग ! लाची उसके पाँव के साथ रोती और घसीटती चली आयी ।

" मत जाओ, मेरे गुल ! मत जाओ । " लाची रो–रो कर बोली ।

अन्तिम बार कोशिश कर के गुलने लाची की पकड़ से अपना पाँव आजाद कर लिया और भागता हुआ कमरे से बाहर निकल गया । लाची वहीं फ़र्श पर पड़ी–पड़ी रोती रही ।

बहुत देर के बाद खूबचन्द अन्दर आया । उसने लाचीको फ़र्श से उठाया, उसके आँसू पोंछे और उस का सर अपने कंधे पर रखा और पूछा —

" गुल चला गया ? "

" हाँ ! " लाची रुँधे हुए गले से बोली — " गुल चला गया और वह कभी नहीं आयेगा । '

खूबचन्द उसके सर पर हाथ फेर कर बोला — " गुलने मुझ से सब कह दिया है । मगर इस में उस बेचारे का क्या क़सूर है ? क़सूर तो परिस्थितियों का है और इस जमाने का है ...... मगर तुम फ़िक्र न करो लाची ! गुल चला गया तो क्या हुआ मैं जो मौजूद हूँ ...... मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा, तुम को जेल में किसी तरह की तक्लीफ़ न होने दूँगा ... और जब तुम क़ैद काट के आजाद हो जाओगी, तो मैं भी इस जेल की नौकरी से त्यागपत्र दे दूँगा और तुमसे शादी कर लूँगा और तुमको पैरिस ले चलूँगा और दुनिया को वह महान् कलाकृति दिखाऊँगा जो मेरी तस्वीर होगी और दुनिया को वह महान् कलाकृति भी दिखाऊँगा जिसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर मैं ने इस का निर्माण किया है ।

सहसा लाची ने अपना झुका हुआ सर खूबचन्द के कन्धे से उठा लिया । उसका ढीला बदन यकायक एक कमान की तरह तन गया और एकबारगी खूबचन्द से अलग होकर बैठ गयी । उसने अपने आँसू पोंछ लिये और क्रोधित निगाहों से खूबचन्द की तरफ देख कर बोली —

" सुपरीटान ? "

" हाँ लाची ? "

" क्या तुम किसी तरह से उम्र भर की केद नहीं दे सकते ? "

" नहीं लाची ! जिसका जितना जुर्म होता है, उस को उतनी ही सजा मिलती है । "

" तो मुझे किस तरह उम्र भर केद हो सकती है ? "

" अगर तुम दूसरी बार फिर किसी इन्सान को कत्ल करो..... "

" तो फिर मैं जेल से छूट कर कत्ल करूँगी, फिर कत्ल करूँगी, फिर कत्ल करूँगी और उस वक्त तक इन्सानों को कत्ल करती रहूँगी जब तक मुझे उम्र भर के लिये केद की सजा न दो या फ़ाँसी पर न चढ़ा दो । "

" तुम ऐसा क्यों सोचती हो लाची ? "

" इस लिये कि तुम सब कत्ल कर देने के लायक हो । " लाची ने बड़े गुस्से से कहा ।

फिर वह वहाँ से उठी और ईजल पर रखी हुई अपनी अपूर्ण तस्वीर की तरफ बढ़ी–हाथ बढ़ा कर उसने तस्वीर को अपने दोनों हाथों से टुकड़े–टुकड़े कर दिया ।

" तुम औरत की तस्वीर बनाने का क्या हक रखते हो । कभी तुमने उसके दिल के अन्दर झाँक के देखा है ?... तुम सब लोग उसके चारों तरफ लोहे की सलाखें खड़ी करना जानते हो, लेकिन तुम लाची को नहीं जानते । मैं एक आजाद खानाबदोश लड़की हूँ । मेरे लिये कोई मुल्क नहीं है और कोई कौम नहीं है । मैं दीवार छलाँग जाऊँगी और वह सलाख तोड़ दूँगी, मैं चोरी करूँगी, जेब कतरूँगी, कत्ल करूँगी, डाके डालूँगी— लेकिन कभी— कोई— गुलके सिवा—— मेरे जिस्म को कोई हाथ न लगा सकेगा ! "

लाची ने जैसे आकाश की ऊँचाइयों से जमीन पर बैठते हुए तुच्छ खूबचन्द को देखा और फिर हव राजसी चाल से कदम उठाती हुई इस तरह धीरे-धीरे कमरे से निकली जैसे उसने बाइबल का अन्तिम वाक्य आकाश से जमीन पर उतार दिया हो और अब अपना काम खत्म करके शूली की ओर बढ़ रही हो ! ! ! ★



अनुक्रमणिका

खाना खाने के बाद बिस्तर पर तनिक लेटना चाहता था।

इतने में रामभाऊ के बच्चों ने मुझे घेर लिया। मैं ने मन ही मन सोचा—

मनुष्य का जीवन बेहाल बनाने वाला ऐसा कैसा है यह—

आचार्य प्र. के. अत्रे



सार्वजनिक जीवन

सुबहके सात बजे थे। मैं अपनी हमेशा की आदतके अनुसार बिस्तरपर लेटे-लेटे टाइम्स पढ़ रहा था। इतनेमें दरवाजे पर घंटी बजी और नौकरने आकर कहा– "कोई पाँच, छः आदमी आपसे मिलने आये हैं।"

मैंने नौकर की ओर देखा। मेरी सताई हुई नजर मानो कह रही थी, "न मालूम पौ फटतेही ये लोग दूसरोंको सताने क्यों टपकते हैं।" कुछ तो शब्दोंसे और कुछ हाथके इशारेसे मैंने कहा—

"उन्हें दीवानखानेमें बिठा दो।"

पाँच मिनिट बाद में वहाँ गया। देखा, तो पूरा दीवानखाना आदमियोंसे खचाखच भरा था। नौकरने कहा था, पाँच–छः मगर यहाँ तो पूरे आठ–दस आदमी थे। वे दूर किसी जिले से यहाँ आये थे। मेरी जान-पहचान के दो-तीन बम्बई के व्यक्ति उनके साथ थे।

मेरे दीवानखाने में कदम रखते ही चेहरे पर झूठी हँसी लाते हुए एक व्यक्ति ने पूछा— "जान पड़ता है, शायद आप अभी उठे हैं?"

मैं चुप बैठा रहा।

पहले की अपेक्षा जरा जोर से हँसते हुए दूसरे ने कहा — "हमें शक था कि शायद आप इतने सवेरे नहीं उठते होंगे।"

मैं तो चाहता था कि उसे एक तमाचा जड़ दूँ, फिर भी इस विचारको दबाकर मैं ने बिलकुल ठंडे स्वर में पूछा–"कोई खास काम लेकर आये हैं आप?"

अब तीसरा आदमी सबसे जोरदार ठहाका मारकर कहने लगा "काम?—आपसे और क्या काम रहेगा?" यह कह, बाहर गाँवसे आये हुए उन लोगों में से एक की तरफ मुड़कर उसने पूछा– "गणपतरावजी, वह खत कहाँ है जो तुम लाये हो?"

गणपतरावजीने शरीर को एक तरफ धनुषाकार मोड़ कर कमरमें बँधा एक मटमैला तहदार कागज निकाला, हाथसे उसकी तहें साफ करके उसे मेरे हाथमें रखा।

"रामभाऊने यह चिठ्ठी दी है आपके लिए।" और किसीने कहा।

पत्र के नीचे बनायी हुई दस्तखतकी न समझनेवाली उलझन अधखुली आँखोंसे सुलझानेकी निष्फल चेष्टा करते हुए मैंने कहा — "रामभाऊ? ये रामभाऊ कौन?"

बड़ी तत्परता से गणपतरावजीने जवाब दिया, "वही रामभाऊ कुलकर्णी जो वकील हैं। वे कहते थे कि आपसे उनकी बड़ी दोस्ती है।"

"बम्बई आनेपर वे आपही के यहाँ तो ठहरते हैं।" दूसरे ने कहा।

अनुक्रमणिका





आचार्य प्रल्हाद केशव अत्रे :

आप मराठी भाषा के एक श्रेष्ठ कहानीकार, कवि एवं नाटककार हैं। आप सफल पत्रकार तथा उत्कृष्ट वक्ता हैं। आपने कई चित्रपट कथाएँ लीखीं हैं। और दिग्दर्शक की हैसियत से आप राष्ट्रपति सुवर्णपदक के विजेता हैं।

" अभी हाल ही में उनकी लड़कीकी शादी हुई तब आपको निमंत्रण भेजा था। " तीसरा कह रहा था —" और आप आनेवाले भी थे। मगर अचानक उस समय कोई झंझट अचानक आ जाने से आपने तार भेजा कि, 'मैं नहीं आ सकूँगा।' गाँववालों की इससे खूब निराशा हुई। "

" अच्छा, याने वे ऊँचे कदके, गोरे रामभाऊ कुलकर्णी ! उन्हीं की बात कह रहे हैं आप ? " मैंने कहा। कुछ तो बोलना जरूरी था।

" ऊँचे क़दके ? गोरे ? " गणपतरावजीने बीच में ही से टोका— " वे तो नाटे और काले हैं। और देखिये उनकी सूरत आपसे बहुत कुछ मिलती जुलती है और उम्र भी शायद आप ही के बराबर होगी। "

" बिल्कुल ठीक ! " गणपतरावजीके दूसरे गाँववालेने कहा। " रामभाऊको अभी तो तिरसठ साल पूरे हुए। "

मैंने मन–ही–मन सोचा, " बस ! इसकी नाक काट लूँ ! "

इतनेमें उनके साथ आये हुए बम्बईके सज्जनने चेहरेपर बड़े कौतुकका भाव लाते हुए हल्की आवाजमें पूछा—" आपकी उम्र ? एकसठ या बासठ ? "

" बावन ! " मैंने पूरी शांतिके साथ उत्तर दिया। लेकिन मेरी उम्रका यह उपहास मुझे असह्य हो रहा था।

" लेकिन चेहरे से तो लगता है कि आप अभी तक चालीसवें साल तक भी नहीं पहुँचे हैं। ठीक है न, शंकररावजी ? "

दूसरे बम्बईवालेने कुर्सी के डंडेपर सम्हालकर बैठे हुए एक आदमीकी पीठ थप थपाते हुए उसकी राय पूछी। मगर उत्तर देनेके पहले ही वह कुर्सी परसे नीचे गिरा।

उसपर ध्यान न देकर मैं सोचने लगा, " यह मेरा इतना परिचित रामभाऊ कुळकर्णी कौन होगा ? कुलकर्णी उपनाम के जितने भी सहाध्यायी स्कूलमें या कॉलेजमें मेरे साथ थे उनके चेहरोंके चित्र मनके परदेपर खींचकर देखा। फिर भी उनमें ये तिरसठ सालकी उम्रके नाटे और काले रामभाऊ कुळकर्णी मुझे न मिले। फिर वह प्रयत्न छोड़कर मैं उनका खत पढ़ने लगा।—

पहले संबोधनके पासही मैं अटक गया।—" परमपूज्य देश-कार्यधुरंधर साहित्य मुकुट चिंतामणि भाऊसाहबकी चरण-सेवामें—"

" भाऊसाहब ? " जैसे खाना खाते हुए दाँतो तले रोड़ा अटका। मैंने चिढकर कहा—" ये भाऊसाहेब कौन है ! "

" वे आपको भाऊसाहब कहते हैं। " गणपतरावजीने बीच ही में हँसकर सफाई दी।

" ठीक है। " मैंने मन–ही–मन कहा–" मैं तो सार्वजनिक माल ठहरा। कोई भी आये और मुझे किसी भी नाम से पुकारे।" चाहे भाऊसाहब, चाहे दाजीसाहब ! "

मैं आगे पढ़ने लगा — " हमारे गाँवमें हरसाल कालभैरवनाथजी का मेला लगता है। आसपासके तीस मीलके प्रदेशसे दस–बीस हजार लोग उनमें शामिल होते हैं। इस अवसरपर आप जैसे महान विद्वान् देशभक्त के मुँहसे झरनेवाले ज्ञानामृतका लाभ हमारी जनता उठायें यही गाँववालोंकी इच्छा है। आप आजतक कभी इस प्रदेशमें नहीं आये हैं। मगर आपकी कीर्ति कितने वर्षोंसे हमारे कानों तक पहुँच चुकी है। आपके दर्शन करने और व्याख्यान सुननेके लिए हम चक्रवाक पंछी की तरह आपकी प्रतीक्षामें आँखें लगा बैठे हैं। आपके न आने से हजारों लोग निराश बनेंगे। इसलिये यह मौका लेकर आपकी चरणधूलिसे हमारे गांवको पावन करनेकी कृपा कीजिये। इसी मौकेपर एक मुफ्त वाचनालय और व्यायाम-शाला खोलनेका गाँववालोंका इरादा है। वाचनालय का उद्घाटन आपही के हाथसे हो जाएँ और व्यायामशालाकी नींवका पत्थरभी आप ही डालें। आप जरूर आयेंगे इस विश्वाससे आपका नाम

हमने इश्तहार में और आमंत्रणपत्रिका में छपवा दिया है—वगैरह वगैरह—। ''

जब कि मैं खत पढ़ रहा था, मुझे बुलानेके लिए आये हुए गाँववालों के पाँच-छः प्रतिनिधि रोती हुईसी व्याकुल सूरत बनाकर मेरी तरफ देख रहे थे।

खत पढ़कर मेजपर रखते ही गणपतरावजी ने चापलूसी के स्वर में कहा '' रामभाऊने मुझे कह तो रखा ही है कि मेरा खत पढ़नेपर भाऊसाहब की क्या मजाल है कि ना कहेंगे ? ''

'' मेरा नाम भाऊसाहब नहीं है। '' मैंने उसे सुधार लिया।

'' वही, जो कुछ भी हो। '' गणपतरावजीने दाँत निकालकर जोरसे हँसनेकी कोशिश की।

'' अगले सोमवारसे मेला लगेगा। दूसरे सज्जनने कहा—'' और शनिश्चर तक धूमधाम रहेगी मेले की। इन दिनोंमें चाहे आप किसी भी दिन आ सकते हैं। ''

'' नहीं, नहीं ! किसी भी दिन क्या कह रहे हो ? '' तीसरा सात्विक आवेश दिखाकर बोल उठा--'' मेले के पहलेही दिन हम साहबका व्याख्यान रखना चाहते हैं। उसी दिन सच्ची भीड़ लगेगी। बादमें भीड़ कम होनेपर साहबको वहाँ ले जाकर क्या करना है ? ''

वह कुछ और ही बोलना चाहता था, लेकिन किसी तरह सँभल गया ! मैंने भी छुटकारेकी साँस ली।

'' गाँववालोंने तो हमें साफ-साफ कह रखा है '' — चौथेने कहा '' अगर साहब न आये तो हम और किसीका व्याख्यान सुनेंगे ही नहीं। और तो पचास रहेंगे व्याख्यान देनेवाले—टके सेरवाले। उन्हें लेकर क्या करेंगे ?''

'' पिछले साल पूनामें, शनिवारवाडेके सामने साहबका व्याख्यान हुआ था। ऐसी भीड़ थी कि पूछो मत। मैं वहीं तो था। सभा थी शायद ... शायद ... नहीं कुछ याद नहीं आता। '' याद करनेकी कोशिश करते हुए पाँचवे ने कहा।

मैंने सबकी ओर बारी-बारीसे देख लिया। मेरी नजरमें यों भाव था कि और किसीको यही कुछ बकना हो सो बक डाले। मगर इसके बाद सब मेरे वक्तव्यको सुनने के लिये उत्सुक जान पड़े। तो फिर मुझे बोलनेका मौका देनेकी उनकी भलमंसाहत को मन-ही-मन बधाई देते हुए मैंने कहा-'' तुम्हारे रामभाऊ कुलकर्णी वकील से जाकर कहना कि आपका खत मिला। धन्यवाद ! मगर काम के ढेर लगे हुए हैं। मैं आपका निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता। माफ कीजिये। ''

और यह सुनते ही उनके चेहरे ऐसे बने मानो सिरपर छत टूटकर गिरी हो। वे बड़े दुखभरे भावसे एक दूसरेकी तरफ देखने लगे।

एक बम्बईवालेने कहा – '' नहीं, नहीं, साहब ! यह नहीं होगा। हमारे लिये इन्हें 'हाँ' कह दीजिये। ''

दूसरे बम्बईवालेने कहा, '' हमने तो इन लोगोंको हामी भर दी है कि साहब और किसीसे चाहे कुछ भी कहें पर हम उन्हें जरूर खींच लायेंगे। ''

'' काम के ढेर तो हमेशा ही रहेंगे साहब। तीसरे, बम्बईवालेने कहा — '' मगर किसी तरह एक दिनकी छुट्टी आप उसमेंसे जरूर निकाल सकते हैं। शहर के लोग आपके व्याख्यान हमेशा सुनते हैं। उन्हें अगर एक दिन वह सुनने न मिलेगा तो उनमें उनका कोई नुकसान थोड़े ही है ? आशा है, हम देहातियोंके लिये आप जरूर इतनी तकलीफ उठायेंगे। ''

'' बात तो ठीक है, '' मैंने मुँह मरोड़कर कहा। '' मगर इस महीनेमें मैं बम्बई छोड़कर कहीं नहीं जा सकता ! मैं दिलगीर हूँ। ''

'' यों कहकर तो आपने हमारी कमर तोड़ दी। '' अपने ग्रामस्थ बंधुओंकी तरफ देखकर गणपतरावजीने कहा। सभीने उनके कहनेपर हाँ भरकर कमर टूटनेका अभिनय किया।

'' इसका मतलब यह है कि हम अब अपने गाँववालों को मुँह नहीं दिखा सकते। जूतियोंसे मुँह सीधा करेंगे वे हमारा ! ''

'' नहीं साहब, ऐसा न कीजिये। '' दूसरा सचमुच मेरे पाँव लगकर कहने लगा-'' हमारे लिये बस आपका एक ही दिन खर्च होगा, ज्यादा नहीं। देखिये-यहाँसे आपको रविवार रात दस बजे निकलना पड़ेगा। सोमवार सुबह दस बजे आप हमारे गाँव पहुँच जायेंगे। खाना खाने के बाद दोपहर दो घंटे आराम कर लीजिये फिर शामको आपका व्याख्यान होगा। फिर शामको साढ़ेसात

आज के दशावतार : ८ कृष्णावतार



बजा रहे बांसुरी 'कृष्ण' चढकर कदम्ब की डाली।
जनता नग्न, मग्न मनमोहन, यह कैसी रखवाली॥

अनुक्रमणिका

की गाड़ीमें आपको विठा देंगे। बस फिर मंगलको सात बजे आप यहाँ अपने घर वापिस। ठीक है न?"

"आप कहेंगे तो यहाँसे आपको स्पेशल मोटरसे ले जानेका इन्तजाम करेंगे।" तीसरेने तरकीब निकाली।

"अगर हवाई जहाजसे ये जा सकते तो उस के लिये भी पीछे न हटते।" चौथेने जोरसे हँसकर कहा। सबने ठहाका मारकर उसकी सहायता दी।

"लेकिन कुछ भी हो, हम आपको लिये बगैर नहीं रहेंगे।" गणपतरावजीने जैसे सम पकड़कर ताली बजायी।

इतनेमें दरवाजेपर घंटी बजी, और नौकर दो आदमियों को अंदर ले आया।

अब दीवानखानेमें बैठे लोगों को फुरसत पाने का यह बड़ा अच्छा मौका मिला। उनमेंसे एकको आँखोंसे इशारा करके मैंने पूछा— "क्यों पधारे जनाब?"

"इस साल गणेशजीके समारोहमें आपका कार्यक्रम रखनेकी हमारे बिल्डिंगके लोगों की इच्छा है।"

उसे बीचमें ही टोंककर मैंने कहा "गणेशजीके समारोहको अभी बहुत देर है फिर देखेंगे। फिर कभी मुझे दफ्तरमें मिलना; या खत भेज देना।"

वह आदमी चुपचाप प्रणाम करके चला गया। मगर उसके साथ आया हुआ दूसरा आदमी वहीं पर बैठा है यह देखकर मैंने आश्चर्यसे पूछा—"क्यों भई, आपका क्या काम रह गया हैं?"

तब उसने दाँत फाड़कर कहा—"परसों मैंने यहाँ एक खत रख छोड़ा था। आपने शायद पढ़ा ही होगा। आज रातको हमारी क्लबमें नाटक होनेवाला है। आप उसके अध्यक्ष हैं। आपको याद दिलाने आया था।"

"तुम्हारी क्लबके नाटकका मैं अध्यक्ष हूँ?" मैंने आँखें फेरकर कहा—मानो अब मेरी सुधबुध खोयी जा रही थी— "मैं नहीं जानता।"

"आपकी तरफसे खत का कोई जवाब न आया तो हम समझ बैठे कि आपने हमारी विनती मान ली है" उसने सीधे मुझपर हमला किया।

अब मैंने चिढ़कर कहा— "न मैं तुम्हारी क्लब जानता हूँ न नाटक! और आज रातको मुझे कहीं भी नहीं जाना है।"

"मगर आप न आयें तो लोगोंकी खूब निराशा होगी।" उसने कहा।

"होने दो अगर होगी तो।" मैंने भी उठकर कहा "क्या हमेशा लोगों की सब आशा पूरी होनी ही चाहिये!"

"कोई हर्ज नहीं। आप सिर्फ पाँच मिनिटके लिए आइये।" उसने बस आखिर तीर छोड़ा।

उसके साथ अब और झगड़ा करनेमें कोइ फायदा नहीं यह सोचकर मैंने कहा—"ठीक है। किसी अंकके मध्यंतरमें आ जाऊंगा। बस झाँकनेके लिए।"

वह चला गया। अब मैंने सामनेकी ओर देखा।

होना ही चाहिये....



दिल्ली दि. ११-१०-१९५९
(विजयादशमी)

प्रिय प्रभा,
सप्रेम आर्शीर्वाद।

तुम्हारा मधुर सँदेसा लेकर मैं निकला तो आज सवेरे ही पंजाब मेल से सुखपूर्वक यहाँ पहुँच गया।

घर से चले आने के बाद मेरा मौनव्रत समाप्त हो गया। कारण, उधर प्रवास में और यहाँ पूना गेस्ट हाऊस की दिल्ली शाखा में भाट की तरह मुझे बड़बड़ करना पड़ता है। आजकल पूना में और पूरे महाराष्ट्र में 'संयुक्त महाराष्ट्र होना ही चाहिये' इस अंधड़ की तरह होनेवाली हलचल के परिणामस्वरूप जो सुखस्वप्न साकार होने वाला है— इसके जिस आनंद की हिलोरें लहरा रही हैं—उनका यथोचित वर्णन यहाँ दिल्ली में महाराष्ट्रियों के समक्ष करते हुए मेरे दिन के दिन निकल जाएँगे यही मालूम होता है।

आज आते-आते ही मेरी और श्री. बंडोपंत सरपोतदार की मुलाकात हुई। अर्थात् उन्हीं के पूना गेस्ट हाऊस में ही पड़ाव जम गया है। तब उनकी कुछ गाँठ पड़ जाय-इस में क्या नवीनता है? फिर इनके यहाँ हमारे जैसे बहुतेरे महाराष्ट्रीय सहकुटुंब आकर यहीं ठहरते हैं; इसलिए मुझे यहाँ तनिक भी नहीं जान पड़ता कि मैं परप्रांत में आया हूँ।

पूना गेस्ट हाऊस के लक्ष्मी रोड में स्थित उनके मुख्य निवासस्थान 'पुणें' में उनके जन्मदिन के निमित्त अनन्त चतुर्दशी के दिन हम वहाँ गये थे। उस दिन जो उत्सव का वातावरण हम वहाँ देख आये। वही वातावरण करोलबाग में, बलिम रोड वाले कृष्णा मार्केट के पास उनकी दिल्ली शाखा में प्रतिदिन मिलता है—यहाँ की मंडली यही कहती है। इस तरह के घरेलू और उत्साही वातावरण में आने पर प्रवासियों को यह घर जैसा ही लगता है, किसी तरह की कमी नहीं दिखती। ऐसा कह देने में भला उसके घर-कुटुम्ब का क्या दोष है?...किसी को भी तनिक किसी बात की कमी मालूम होने लगी या कोई तकलीफ हुई तो तुरत बंडोपंत वहाँ सहकुटुंब—सपरिवार उपस्थित हो जाते हैं। वस्तुतः श्री बंडोपंत यहाँ सबकी सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं।

संयुक्त महाराष्ट्र होना ही चाहिये। केवल बंबई क्यों दिल्ली के साथ होना चाहिये। श्री. व सौ. चारुदत्त सरपोतदार को मेरे नमस्कार कह देना। मिलने पर और बातें होंगी अभी इतना ही।

तुम्हारा
दादा

अनुक्रमणिका





दो संकट मैंने किसी तरह टाल दिये ! मगर शुरूसे मुझे घटनेवाला यह कालभैरवके मेलेका संकट मेरा पल्ला छोड़नेको तैयार नहीं था । उल्टे वह और ही गले लिपटना चाहता था ।

" बतलाइये फिर, हमारी क्या बात रही ? " गणपतरावजीने फिरसे अपना तकाजा शुरू किया ।

" अरे, हमारी बात की क्या पूछते हो ? वह तो कब की पक्की हो चुकी है । " एक बम्बईवाले ने मेरी तरफ से जवाब दिया ।

" रविवार के दिन साहब को ले जाने के लिये अपना आदमी भेजो और खुशी से ले जाओ । " दूसरे बम्बईवाले ने साथ दिया ।

" चलो, उठो अब । " तीसरे बम्बईवाले ने एक कदम आगे बढ़ाया । " देखते नहीं साहब के पीछे हजार कामों का झंझट लगा पड़ा है । उन्हें सिर खुजलाने की भी फुरसत नहीं है । हम क्यों उनका समय बरबाद करें ? "

उसके बाद सब एकसाथ उठ खड़े हुए ।

गणपतरावजीने कहा – " तो फिर हम आज शामको लौट जायेंगे । किशाको यहाँ रखेंगे आपके लिए । "

" तुम बेफिक्र जाओ । मैं साहबको जरूर ले आऊँगा । " खाकी रंगका, मैला गणवेष पहने हुए, चिपके गालों का किशा बड़े उत्साहसे कौन उठा ।

उन्होंने मेरे लिये एक भी दरार ऐसी न छोड़ी कि जिसमें से मैं छूट जाऊँ ! दीवानखाने से बाहर जाते – जाते पीछे मुड़कर एकने कहा – जैसे कि अभी कुछ याद आया हो – " और साहब, हमारे गाँव के लड़के बंगालनिधि के लिए आपका एक नाटक खेलना चाहते हैं । "

" अरे, उसकी इजाजत क्यों माँग रहे हो ? " बम्बईवाले ने बोलने का यह भी मौका हाथ से न जाने दिया । " साहब ने तो सारी दुनियाको अपना नाटक खेलने की इजाजत दे रखी है । "

उनकी बात काट कर मैंने कहा – " उस के लिए आपको पच्चीस रुपये देने पड़ेंगे । "

" मगर साहब यह बंगालकी मदद–निधि के लिए खेल रहे हैं । " पहले ने कहा ।

" बंगाल-निधि के लिये मैंने पहले ही चंदा दिया है । आपको उसको मदत करनी हो तो जरूर कीजिये । इस लिये फिर पेटी जेब क्यों टटोलते हैं । " मैं कुछ चिढ़कर बोला ।

तब गणपतरावजीने लौटकर कहा– " तो साहब, यों कीजिये । इस बार नाटक मुफ्त खेलने की इजाजत दीजिये । दूसरी दफा अगर हम आपका नाटक खेलेंगे तो पच्चीस ही क्या पूरे पचास रुपये गिनेंगे पचास ! "

" हाँ साहब, बिलकुल ठीक । " दूसरे सब ग्रामस्थोंने ' कोरस ' के स्वरमें उसकी हाँ में हाँ भर दी ।

" ठीक है, अगर आप कहते हैं तो मैं... " होंठों में ही मैंने कुछ अधसुनी बात कही । कालभैरववाले खुश हुए और मुझे ' नमस्ते ' कह कर चल दिये ।

' टाइम्स ' पढ़ना हुआ ही नहीं । हफ्ते के लेखका प्रारंभ आज सुबह करने का इरादा था, लेकिन सुबह का समय बरबाद हुआ । लोग ' इस जातिवाचक संज्ञाको मन–ही–मन गालियाँ देता हुआ मैं अपने विचारों का सूत्र बाँधने लगा कि पोस्टमैन ने दरवाजा खटखटाया । एक मनीऑर्डर आनेवाला था । वही होगा यह सोच कर मैंने दरवाजा खोला । पोस्टमैन पत्र या मनी ऑर्डर कुछ न लाया था । मैंने पूछा—" क्या बात है ? "

किसी तरह लाडला स्वर निकाल कर पोस्टमैन बोला— " आज आप का पिक्चर चल रहा है थिएटर में । पास चाहिये था । "

" कितने आदमियों का ? " मैंने निर्विकार चेहरे से पूछा ।

" चार " हाथ से उँगलियाँ दिखाते हुए उसने कहा ।

मेज पर पड़े हुए एक कागजका टुकड़ा फाड़ कर मैंने उस पर चार लोगोंका पास इस तरह कुछ लिखा और उसके हाथ में रखा । इसके बाद दरवाजा इतने जोरसे बंद किया कि वह कुछ समझ जाय । उस पोस्टमैनने न जाने क्या सोचा । दार बंद होनेके कारण मैं भी उसका चेहरा देख न सका ।

रविवार कितना जल्दी आ पहुँचा । किशा सुबह से ही घर में आसन जमाये बैठा था । रविवार के दिन शाम को दूसरे गाँव जाना है इस विचार से मैं सुबह से ही अस्वस्थ बना था । इसलिये इस छुट्टीका आनंद न ले सका । मन को कुछ तो तसल्ली मिल जाती मगर किशा यमदूत की तरह आसपास घूम रहा था । और बार-बार अपने गाँवकी राजनीति मुझे बड़े चावसे सुना रहा था ।

रात के नौ बजे मैंने नौकर भेज कर टैक्सी बुलवायी । रस्सीसे कस कर बँधा हुआ बिस्तर कंधे पर लटका कर किशा पहले ही टैक्सी में जा बैठा और स्टेशन पर टैक्सी रुकते ही मेरे पहले कूद कर टैक्सी से उतरा ।

" तीसरे दर्जेमें बड़ी भीड़ लगती है, मैं अपनी जगह पकड़ता हूँ । आप टिकट कटवा कर अपने डिब्बेमें बैठ जाइये । मैं अभी आया । "



राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे संगणकीकृत


दीनानाथ दलाल मेमोरिअल ट्रस्ट

अनुक्रमणिका

जल्दी से इतना कह कर वह। स्टेशन की भीड़ और अँधेरेमें यकायक गायब हुआ। मैं उसे कुछ कहना चाहता था मगर शब्द होंटमें ही रह गये।

टैक्सीवाले के पैसे चुकाकर मैं ने सेकंडक्लास का टिकट कटवाया और प्लैटफार्म पर जाकर गाड़ीका इन्तजार करने लगा। गाड़ी देरसे आयी वह भी खचाखच भरी हुई। अँधेरे में सेकंडका डिब्बा भी मैं ढूँढ़ न सकता था। आखिर कार गाड़ी छूटने के पहले एक मिनिट मुझे एक डिब्बेमें किसी तरफ ऊपरवाली जगह मिली। किशा तो लापता हो गया था। मैं ऊपर जाकर अपना बिस्तर खोल रहा था कि गाड़ी छूटी।

आधा घंटा गुजरने पर भी मुझे नींद न आयी। नीचे सोये हुए आदमीसे मैंने पूछा — "बत्ती बुझा दूँ" उसने कहा – "नहीं, रहने दीजिये।"

मेरा बोझ उपर से अपने पर गिरनेका मानो उसे डर लग रहा था और जो कुछ होना हो प्रकाशमें ही होने दो इस भावना से वह बत्ती बुझाने को मना कर रहा था।

मैं सोचता रहा। 'सार्वजनिक जीवन' के कारण मनुष्यका जीवन कितना बेहाल बन जाता हैं इस विषय के विविध पहलुओंको सोचते हुए न जाने मुझे कब नींदने घेर लिया। सुबह पाँच बजने के समय गाड़ी किसी छोटे स्टेशन पर रुकी। मैं भयानक सपना देख रहा था।

मेरे बचपन के एक शिक्षक मेरे हाथ पर छड़ी मार कर पूछ रहे थे – "बोलो, फिर व्याख्यान के लिए जाओगे? जाओगे? बोलो!"

और मैं जोर-जोर से चीखा, चिल्ला कर कहता था – "नहीं, अब नहीं जाऊँगा।"

इतने में किशा जोर-जोर से डिब्बे का दरवाजा खटखटाने लगा। मैं घबराकर जाग पड़ा और जल्दीसे नीचे उतरा।

"साहब, स्टेशन आया है। जल्द नीचे उतर आइये। नहीं तो गाड़ी छूटेगी।" किशा बाहरसे इस प्रकार चिल्ला रहा था। मानो डिब्बे में आग लगी हो। मैंने अपना सामान बाहर अँधेरे में फेंक दिया और प्लॅटफॉर्म पर कूद पड़ा।

बाहर अभीतक गहरा अँधेरा था। दो-तीन आदमी शालमें माथा तक पूरा बदन लपेटकर सिकुड़ रहे थे। मैं-सचमुच 'वही' मैं हूँ इत बातको सच्चा जताकर उन्होंने अपनी शालके नीचेसे एक सुर्खी सेवतीकी माला निकाल कर मेरे गलेमें डाली और अपनी तीखी आवाज में वह चिल्ला उठा–"महात्मा गांधी की जय!"

मैंने गुस्से होकर कहा, "यहाँ महात्माजीका क्या सम्बंध है?"

तब उसने कहा—"कुछ तो नारा लगाना ही चाहिये न?"

कहिये, अब इस पर मैं क्या जवाब देता!

मुझे जिस गाँवमें जाना था वह स्टेशन से दस पन्द्रह मील की दूरी पर था। किशाने उस माला पहनानेवाले से कड़े स्वरमें पूछा– "क्यों शिरपतरावजी, रामलाल की मोटर लाये हो न?"





शिरपतरावजीने कराहते हुए जवाब दिया—"अरे काहे की मोटर ले आते ? आठ दिनसे रामलालकी मोटर पंक्चर हो पड़ी है। इसी से तो पाटील की गाड़ी ले आया हूँ। इन मोटरों और हवाई जहाजों पर क्या भरोसा रख सकता है कोई ? अपनी पुरानी बैलगाड़ी–बस वही सच्ची गाड़ी है। "

"और गाँवमें बावन बैलोंकी गाड़ीमें जुलूस निकालना था उसका क्या हुआ ? "

"वह अब कैसे हो सकता है ? "शिरपतरावजी और भी रुआँसे स्वरमें कहने लगे–"अरे, वहाँ सभी बैलोंमें तो लार की बीमारी फैली है।"

पाटील की गाड़ी जोतकर स्टेशन से निकलते आठ बजे। गाड़ी की छत नहीं थी। अंदर हम चारोंने अपनेको किसी तरह ठूँस लिया था। नीचेसे गाड़ी धक्का मारती थी और उपरसे कड़ी धूप सिर जला रही थी। उसको सहते-सहते किसी तरह हम लगभग ग्यारह बजे गाँव पहुँचे।

सुबहसे मैंने कुछ खाया नहीं था। साथ ही ऊपर से कड़ी धूपके अंगार। इन बातोंसे मेरा जी छटपटा रहा था। गाँवके बाहर एक पीपलका पेड़ था। उस पेड़ा के नीचे दस-बीस लोग हमारी राह देख रहे थे। उनमें कुछ दिन पहले मुझसे मिलने आनेवाले गणपतरावजी थे और उन के साथ ही कुछ अन्य लोग भी थे।

"सफरमें कोई तकलीफ तो नहीं हुई होगी ? " गणपतरावजी हँसकर मेरा स्वागत करते हुए बोले। "आइये भाईसाहब, आगे तो बढ़िये, पीछे क्यों छिपे बैठे हैं ? "

आपने बिना दाँत के मुँह को दिखाते हुए एक गृहस्थ हाथ जोड़कर आगे बढ़े। उनके बाल सफेद थे। वे कदके नाटे और काले थे। जरूर मुझे चिट्ठी लिखने वाले रामभाऊ कुलकर्णी यही व्यक्ति होगा। मैं जान गया।

"अब तो पहचान गये न आप हमारे रामभाऊ को ? " गणपतरावजी ने मुझसे पूछा। मगर मेरे जवाब की राह न देखते रामभाऊ ने कहा—"नहीं; इस बारे में मेरी ही कुछ गलतफहमी हुई है। आपके बड़े भाई मेरे साथ पढ़ते थे।"

"मेरे कोई बड़े भाई नहीं हैं। मैं ही सब से बड़ा हूँ। "

लेकिन इसका रामभाऊ पर कोई असर नहीं हुआ। "तो फिर वे आप के बड़े भाई नहीं थे ? हम तो उन्हें आप के भाई ही मानते आये हैं। " समय जानकर रामभाऊ ने बातें बनाना शुरू किया।

अब यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि मेरा ठहरने का इन्तजाम रामभाऊ के ही यहाँ किया गया था। किसी अँधेरी, सँकरी गली के मुँह पर रामभाऊ का बँगला था। रामभाऊ के घर में कदम रखते ही अलग – अलग उम्र के और नाटे.–लंबे आकार के सात–आठ बच्चोंने मुझे घेर लिया। रामभाऊ चेहरा गंभीर बनाकर अर्थपूर्ण आवाजमें कह रहे थे–"हाँ, ये ही हैं आप ! " उन बच्चों के आविर्भाव से मुझे यह पता न चला कि मेरे आनेके पहले रामभाऊने इनके सामने मुझे किस तरह बदनाम किया होगा।

आठ सालकी उम्र की जो बच्चे छोटे थे वे मुझे कोई 'डरावनी' चीज समझकर सहमे हुए देख रहे थे तो बारहवें ज्यादा उम्रके बच्चे सरकस में रखे हुए शेरको जिस आदर से देखते है वही आदर मुझे दिखा रहे थे।

"चित्रा, तुम्हरी पहली की किताब आपही ने लिखी है। " रामभाऊने अपनी चित्रा नामक कन्या को कहा। चित्रा अपने लहँगेका छोर दातोंतले लाती हुइ बड़े अचंभे से मुझे देखने लगी। मानो पहली की किताब कोइ 'ज्ञानेश्वरी' या 'भगवद्‌गीता' थी।

सुबह से मैंने न प्रातःकर्म किया था न मुँह धोया था। किससे मेरे शरीर के अंतर्विभागसे मेरे मस्तिष्क तक ऐसे विचित्र संदेश पहुँच रहे थे कि उनका वर्णन करना असंभव है।

अपने कानों की तरफ उँगलियों से इशारा करते हुए, रोती सूरत बनाकर मैंने आखिर रामभाऊसे कहा- "मुझे जरा...मुझे... जरा ... उधर ... जाना है। "

रामभाउने एक बच्चेको झटसे बुलाकर कहा — "सदू, अंदरसे एक लोटा भर लाना। " फिर विश्वामित्रको तरह हाथ ऊँचा उठकर उन्होंने मुझसे कहा "पिछ–वाड़में सहन की तरफ जाइये। चाहे जितनी जगह पड़ी है। "

हाथमें लोटा लेकर मैं सहन की तरफ जाने लगा। रामभाउके दो-चार बच्चे-भी मेरा पीछा करने लगे। मैंने आँखें दिखाई तब पीछे हटकर लौट गये।

एक टूटी-फूटी दीवारके पीछे जगह देखकर मैं बैठा। इतने में एक बड़ा भारी साँप सरसराता हुआ कोनेकी गलीमें जा घुसा। उस वक्त मैं ऐसा घबड़ा गया–ऐसा घबड़ा गया कि फिर टट्टी की बात ही क्या सूझती !

सब काम पूरा करके मेरे लौटने पर रामभाऊ के एक लड़के ने कहा–"स्नान की सब तैयारी है। "

मैं पैजामा पहननेवाला ठहरा। मेरे पास धोती कहाँ से आती ? फिर रामभाऊ की एक पुरानी धोती पहन कर खुले आँगन में एक बाल्टी-भर पानी से मैंने स्नान किया।





रामभाऊ को उस पुरानी धोती पर आम के चेप से काले और लाल धब्बे पड़े थे। और उसे कड़ी बू भी आ रही थी। मैं अपने नहाने का काम ठीक करता हूँ या नहीं यह देखने के लिये रामभाऊ के बच्चों की पलटन पहरा दे रही थी। और बीचबीचमें चिल्लाती हुई अपने हाथों से इशारा देकर मुझे तानें भी दे रही थी– "देखो, वहाँ धोती भीगी नहीं, उधर सूखी है।"

स्नान होने पर गणपत रावजी और उनके सहयोगी मुझे बुलाने आये।

गणपतरावजीने कहा, "वाचनालय और व्यायामशालाका समारोह अभी निबटा देंगे ताकि दोपहरको इनकी कोई खटखट न रहे।"

'कालभैरव मुफ्त वाचनालय' का समारोह गाँव के थाने में हुआ। समारोह में गाँव के दस-बीस लोग और प्राथमिक शाला के बीस-पचीस बच्चे शामिल हुए। गणपतरावजी उस वाचनालय के सेक्रेटरी थे।

"आज के हमारे अध्यक्ष का परिचय देना तो 'सूरज का परिचय जुगनू कराये' जैसी बात होगी।" गणपतरावजीने अपने प्रास्ताविक भाषण में गला फाड़ कर कहा – "उनका भाषण सुनकर तुम सब हँसी से लोट-पोट हो जाओगे। तुम्हारे पेट फट जायेंगे।"

तब अचानक प्राथमिक शाला के बच्चोंने अपने-अपने पेटको हाथ से पकड़ कर, होंठ बंद करके मानो मुझे चुनौती दी – "देखूँ, हमारे पेट कैसे हँसी से फटते हैं!"

गणपतरावजीने अपने भाषण के अंत में यह भी बेशक कह दिया कि अध्यक्ष महाशयने वाचनालयकी सक्रिय सहायता करना कबूल किया है।

श्रोताओं को बुद्धि का वकूफ और उन के चेहेरे पर चमकनेवाला 'समझदारी' का तेज ध्यान में रखकर मैंने अपना भाषण पांच मिनिट में खतम किया और जेब से दस रुपयेका नोट निकाल कर तालियों के घोष में गणपतरावजी के हवाले किया। अब गणपतरावजी को और जोश चढ़ा और वे चिल्लाये, "अध्यक्ष महाशयने अपनी साप्ताहिक पत्रिका पाँच साल तक मंजूर किया है।" श्रोताओंने इस पर इतनी जोरसे तालियाँ पीटीं कि मुझे गणपत रावजी की इस घोषणा को मंजूर ही करना पड़ा।

व्यायामशाला की नींवका पत्थर डालनेका काम पास ही होनेवाला था। इसलिये वाचनालयका समारोह समाप्त होते ही वहाँ के सब सामान और श्रोताओंके साथ हम वहाँ गये। वह समारोह व्यायामशाला का है यह सूचित करने के लिये लाल कुर्ता पहने हूए सूजे हुए कानों के एक धोकड़ पहलवान को पहले ही से वहाँ बिठाया था।

मैंने गणपतरावजीसे पूछा —

"यहाँ न तो नींव ही खोदी है और न व्यायामशाला की इमारतका एक पत्थर भी दिखायी देता है।"

तब गणपतरावजीने हँसकर कहा, "वह सब हम बादमें करनेवाले हैं। आज बस आप अपने भाषणमें इतना जाहिर कर दीजिये कि यहाँ आगे चलकर व्यायामशालाकी नींव डाली जायेगी।"

वाचनालयके समारोहमें गणपतरावजीने जो भाषण किया वही भाषण फिरसे व्यायामशाला के समारोहमें किया और व्यायामशालाकी इमारत के लिये अध्यक्ष महाशय सक्रिय सहायता देंगे यह आशा व्यक्त की।

मैंने अपने भाषण में कहा— "मेरा और व्यायामशाला का या 'व्यायाम' का कोई संबंध नहीं है। बचपन में हमारे घर के सामने एक व्यायामशाला थी—बस इतना ही। मेरे शरीर के आकार से आपको जरूर कोई गलतफहमी हुई है। वैसे देखा जाय तो किसी भी इमारत की नींव का पत्थर डालने का काम काँग्रेसमंत्रियों का है। उनके अधिकार का अतिक्रमण आप के बुलाने पर मुझे करना पड़ता है यह बात कुछ ठीक नहीं जँचती। अब आप देख ही रहे हैं कि इस जगह एक गृहस्थ बैठे हुए हैं। समझ लीजिये कि वहाँ पर व्यायामशाला का एक बड़ा भारी पत्थर ही बिठाया गया है।"

यह सुनते ही सब श्रोता खुशीसे तालियाँ पीटने लगे। मेरे शब्दका अर्थ न समझ कर वह पहलवान भी तालियाँ पीटने में शामिल हुआ।

भाषण समाप्त करने के पहले मैंने फिरसे दस रुपयेका एक नोट निकाल कर गणपतरावजीके हवाले किया। सब समारोह पूरा कर घर लौटनेपर एक बज चुका था। कड़ी धूप सिरको इस तरह जला रही थी कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक फटा हुआ जालीदार पीतांबर पहन कर रामभाऊ बरामदेमें मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। "आइये, अब खाना खाके आराम

आज के दशावतार : ९ बुद्धावतार



बजा दमामा, दलाई लामा, बने बुद्ध अवतार।
मित्र शत्रु के बीच बनी है पंचशील दीवार॥

शादी ज़रूर करना ! अच्छी पत्नी मिली तो सुखी होगे और ख़राब मिली तो तत्त्वज्ञानी बनोगे। यह भी क्या बुरा है ?



कीजिये। चाहे सो जाइये घंटा-भरके लिये। अब पाँच बजे तक कोई काम नहीं है। रामभाऊने आश्वासन दिया।

खाना खाते समय रामभाऊ अनेक विषयोंपर बकवास कर रहे थे। मगर उनकी बातों पर मेरा बिल्कुल ध्यान नहीं था।

"मेरी पत्नी भी कविता रचती है।" रामभाऊने अचानक कहा। सीताबाई खाना परोसते-परोसते उस तरह मुस्काई कि मुझे डर लगा शायद अब दालका बर्तन उसके हाथ से छूटकर कहीं नीचे न गिर जाय।

एक बड़ी डकार देकर रामभाऊने अपनी पत्नीके बारेमें और जानकारी दी, "गांधीजी की मृत्युपर उसने इतना सुंदर काव्य रचा है कि आपको जरूर सुनना चाहिये। गांधीजी स्वर्ग सिधारे। उस के बाद हमारे गाँव में जो एक बड़ी सभा हुई थी उस में मेरी पत्नीने वह कविता खुद पढ़ सुनाई और क्या कहूँ जनाब, रामभाऊ सगर्व कहने लगे – तमाम सभा सिसकने लगी।"

"हो सकता है !" मैंने कहा और दाल सुड़कने लगा। मगर उस में डाली हुई लाल मिर्च से जीभ जल रही थी और मेरी आँखों में पानी भर आया। इस बातका रामभाऊ के मनपर योग्य परिणाम हुआ। पीतांबर के छोर से अपनी आँखें पोंछते हुए उन्होंने कहा, "कुछ भी हो। गांधीजी एक महात्मा थे।"

रामभाऊ जैसे व्यक्तिने गांधीजी को यह प्रमाणपत्र दिया यह देखकर मैंने मन ही मन जान लिया कि गांधीजी सचमुच कोई महान् व्यक्ति होगा !

खाना खाने के बाद बिस्तरपर तनिक लेटना चाहता था। इतनेमें रामभाऊकी सारी बालमंडलीने मुझे घेर लिया। सभीने अपनी पाठशाला के नोटबुक पर या कागज के टुकडों पर मेरे हस्ताक्षर लिये। बंड्याने अपने क्लास की हस्तलिखित मासिक पत्रिकापर मेरा अभिप्राय लिखा। सद्याने 'इस सालके गणेशपूजा समारोह के लिये एक विनोदपूर्ण नाटक लिख दीजिये।' ऐसा तकाजा लगाया। यमीने 'मेरी प्यारी किताब' विषय पर लेख के कुछ प्रकरण मुझसे लिखवाये। और महादाने लोकसत्ताकी इस हफ्तेकी शब्दपहेली मुझसे सुलझा ली।

अबतक पाँच तो बज ही चुके थे। व्याख्यानका निमंत्रण देने के लिये किशा और पाँच छः स्वयंसेवक आ धमके। कपड़े बदल-कर मैं रामभाऊ, उनकी पत्नी, रास्तेमें हमें मिले हुए और दस-बीस आदमी सब पैदल कालभैरवनाथके मंदिर की ओर चल पड़े।

मंदिर के सामने एक खुला मैदान था, जिसमें दो-चार हजार लोगोंका मेला लगा था। कई दूकानें आड़ी-तिरछी सजायी हुई थीं। दोन-तीन गडारियाँ चरमर आवाज करके घूम रही थीं। उनमें बैठे हुए लोग जोर-जोरसे चिल्ला रहे थे। एक ओर पँवारेका अड्डा जमा था, तो दूसरी ओर कोई दाढ़ीवाला बाबाजी एक-तारे पर भजन गाता था।

सारे मैदानमें इतना शोर हो रथा था, इतनी धूम मची थी कि वह बाजार देखकर मेरा जी हवा हो गया। मैंने सोचा, न जाने मैं कैसे इस झंझटमें फँसा।

मेरे चेहरे पर हो भाव देखकर शायद रामभाऊने मेरे मनके विचारोंका अंदाजा लगाया और कहा–"आपका व्याख्यान शुरू होते ही सब सन्नाटा होगा। यह शोर बिलकुल शांत होगा।

किसी बरगद पेड़ के नीचे लकड़ीका व्यासपीठ बनाया था। सौ दो–सौ व्यक्ति उस व्यासपीठके चारों तरफ वर्तुलाकार बैठे थे।

मैंने गणपतरावजीको कोसा–"तुमने तो कहा था कि व्याख्यानके लिये दस–बीस हजारकी भीड़ लगेगी।"

"हरसाल लगती है। इनसे पूछिये। क्यों ग्यानबाजी" अपने पास बैठे हुए एक आदमीका कंधा पकड़ कर गणपतरावजीने पूछा। "न जाने इस साल क्या हुआ है। रुपयेमें दो आने भी नहीं लगी भीड़।"

"वह लारकी बीमारी जो हुई है सब जनावरों को।" ग्यान-बाजी ने इस साल मेले में भीड़ कम होने के कारण पर अपनी अक्ल के मुताबिक प्रकाश डालने की चेष्टा की।

"किशा, एक बार फिरसे ढिंढोरा पीटो। कहो, व्याख्यान शुरू हो गया है।"

तब किशाने स्वयंसेवकों को डाँटा—"अरे देख क्या रहे हो। जाओ।" मगर वह अपनी जगह से टस–से–मस न हुआ और न किसी स्वयंसेवक ने ही अपनी जगह छोड़ी।

आखिर डेढ़–दो घंटे बाद और सौ–दो सौ लोग जमा हुए। और सभा की कार्रवाई शुरू हुई। शुरू में कुश्ती, लेजम आदि कार्यक्रम हुए और मैं व्याख्यान देने खड़ा हुआ। अब सात बज रहे थे। चारों ओर अँधेरा छाया था। और उसके साथ ही आस–पास का शोर और बढ़ने लगा।

आज तक मैंने कई तरह की सभाओं में व्याख्यान दिये थे। लेकिन उस दिन की सभा देख कर मेरी घिग्घी बँध गयी। मैं व्याख्यान शुरू कर ही रहा था कि मेरे पास बैठे हुए रामभाऊ हल्की आवाज में बोले—"साहब, आज भरपूर मजा आना चाहिये।"

मैंने चाहा कि इस रामभाऊ का गला घोंट दूँ। एक घंटे तक जो मुँहमें आये वह मैं बकता रहा। मैं क्या बक रहा था यह न मैं खुद समझता था न मेरे सामने बैठे हुए श्रोता, फिर भी वे बीचबीच में तालियाँ बजा रहे थे।

आसपास की झाँस उंडेल कर मेरे नाकमुँहमें घुसी जा रही थी। जिससे मुझे बार-बार खाँसी आने लगी। मगर मेरे श्रोता समझे कि वह मेरा विनोद है और उस विनोद का उन्होंने बार-बार हँसकर स्वागत किया।

व्याख्यान खतम करके अपने को और श्रोताओं को मन ही मन गालियाँ देकर मैं नीचे बैठा तब आठ बज चुके थे।

मैंने रामभाऊ से कहा–" मुझे अब कुछ खानापीना नहीं है। अब मुझे सीधे स्टेशन पहुँचा दीजिये।"

जैसे यह मामला अपनी समझमें कुछ नहीं आ रहा है ऐसा भाव प्रकट करते हुए रामभाऊ ने कहा–" क्या कहते हैं, साहब ? अभी आप जा रहे हैं ? मैं समझता था कि इतनी दूर आने पर आप और चार–पाँच दिन जरूर रहेंगे। यहाँसे चारपाँच मील की दूरीपर पांडव गुफाएँ हैं—देखने लायक चीज है, साहब !"

" पांडव गुफाएँ गयीं जहन्नुम में।" मन–ही–मन कहकर मने गणपतवराजी से प्रकट में कहा, " गणपतरावजी, कुछ भी हो, आज रात को मुझे बम्बई लौटना ही होगा।"

" लेकिन, बम्बई जाने के लिये अब गाड़ी है कहाँ ?" रामभाऊ शांत स्वर में बोले।

" बम्बई जाने के लिये अभी गाड़ी नहीं है ?" अब मैं सचमुच डर गया था।

" अब नौ बजे की गाड़ीं तो मिलेगी ही नहीं।" गणपतरावजी बोले। — कुछ देर पहले अगर जाने की बात सोचे होते, लेकिन आपके व्याख्यान में तो कुछ ऐसा रंग भरा था कि, बीच में मैं कैसे रोकता ?"

" कल सुबह आठ बजे की पेसेंजर आपको जरूर मिलेगी। तबतक दूसरी गाड़ी है ही नहीं।"

बस ! अब मैं लुट गया। इसका अर्थ यह था कि फिर से रामभाऊ के यहाँ जाकर उनके बच्चों की फौज की छावनी में रात काटना, इस विचार से मैं सिहर उठा। रामभाऊ की वह याद आते ही मुझे कै करने की इच्छा होने लगी। अपने पापग्रहों को गालियाँ सुनाकर मैं चुपचाप रामभाऊ के साथ उनके घर गया।

खाना खाते ही सीताबाईने मुझपर हमला किया। असहकारिताके दौरेसे लेकर देशको स्वातंत्र्य-प्राप्ति तकके हरेक राजकीय आंदोलन पर रचा हुआ अपना काव्य उन्होंने बड़ी व्याकुलतासे मुझे सुनाया।

आखिरकार उन्होंने गांधीजीकी मृत्युपर रची हुई अपनी प्रसिद्ध कविता को मुझे सुनाना शुरू कर ही दिया। पहली पंक्ति पढ़ते ही सिसकियाँ भरने लगीं। रामभाऊ तो बड़े जोर से चीख उठे। आसपास दरीपर सोये हुए बच्चे जागकर चीखने-चिल्लाने लगे। ऐसी परिस्थिति में मेरा न रोना हास्यास्पद होता यह सोचकर मैं भी आँखें रुमाल से ढँककर सिसकियाँ भरने लगा।

गांधीजीकी मृत्यु पर रचे गये उस काव्य का पठन तो अब समाप्त हो रहा था। पहले उस सामूहिक चिल्लाहट का स्वर इतना ऊँचा हो गया था कि आसपासके पड़ोसी कुछ अशुभ घटना की कल्पना करके वहाँ दौड़के आये और वे भी उसी चिल्लाहटमें शामिल हुए।

सीताबाई का यह काव्यरुदन रातके दो बजे समाप्त हुआ।



गीत

–सरस्वतीकुमार "दीपक"

अपने आप डगर बन जाती।
पग-चिन्हों की पुस्तक पढ़कर कभी नहीं जो नीर बहाती।

डगरी ऐसी अनमिट रेखा,
जैसा हो पत्थर का लेखा,
जिसने लेख लिखा यह न्यारा –
नहीं किसी ने उसको देखा,

समय-दिये की बुझने वाली जाने कौन जगाता बाती ?
अपने आप डगर बन जाती।

महाकाल ने पलटे पन्ने,
कुछ झूठे कुछ सच्चे सपने;
इसी डगर पर बिछुड़ चुके हैं –
जाने कितने साथी अपने;

यह नागिन-सी आगे बढ़ती, लेकिन कभी नहीं डस पाती।
अपने आप डगर बन जाती।

यही मिलन की सुन्दर डोरी,
नित्य, निराली पाटी कोरी;
पग छूती, यह मौन वन्दना
जगवाले करते बरजोरी;

भूलनिराशा की बातों को, यह आगे बढ़ती, मुसकाती।
अपने आप डगर बन जाती।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

सुबह सात बजे गणपतरावजी गाड़ी ले आनेवाले थे। बैलगाड़ी के बजाय मोटर की आवाज सुनकर यह समझा कि रामलाल की मोटरका पंक्चर दुरुस्त हो चुका है। और, मैं बड़े उत्साह से तैयार हुआ।

गणपतरावजी दरवाजे से ही मुझे पुकारते हुए बोले, "साहब, ये दुनाखे मास्टरजी आप से मिलने आये हैं।"

"यह अब नयी बला आयी।" सोचकर आँखें मलते – मलते मैं देखने लगा। उस गाँव से पंद्रह मीलकी दूरीपर कोई गाँव था। वहाँ के ए. व्ही. स्कूल के हेडमास्टर दुनाखेजी आये थे। गणपतरावजी ने उनका परिचय कराया।

दुनाखेजी ने हँसकर कहा – "मैं आप के एस्. टी. सी. बर्गका पुराना विद्यार्थी हूँ। बम्बई के पते पर मैंने आपको एक खत भेजा था आपको मिला होगा।"

"बिलकुल नहीं।" मैंने कहा। दुनाखेजीने कहा – "आज हमारे स्कूल का वार्षिक अधिवेशन है। और अध्यक्ष के नाते मैंने आपका नाम पहले से ही निश्चित कर दिया है।

"मगर दुनाखेजी, मुझे अभी की गाड़ी से बम्बई जाना है। सच तो कल ही जानेवाला था।" रुआँसा होकर मैं बोल रहा था।

"कुछ भी हो, आज आप को हमारे सम्मेलन में आना बहुत जरूरी है।" दुनाखेजी उसी स्वरमें बोले—"आप न आयें, तो मेरी इज्जत लुटेगी। आप समारोह का निमंत्रण स्वीकार करने पर भी ऐन मौके पर धोखा देते हैं, ऐसा धब्बा आपके नाम पर पहलेसे ही लगा है। और आज आप न आयें तो वह कायम रह जायेगा ही, यों तो हमारी सोसायटी के प्रेसिडेंटने बाजी लगाकर कहा कि आप नहीं आयेंगे। और मैंने इसी पर दस रुपये की शर्त भी लगायी है कि आप जरूर आयेंगे। और आपको ले जानेका मैंने बीड़ा उठाया है।"

"अगर मैं न आऊँ तो मुझे दस रुपयेसे हाथ धोना पड़ेगा।" मैंने चुपचाप जेबसे दस रुपयेका नोट निकाला

"यह तो कुछ नहीं, साहब। शायद मुझे नौकरीसे भी हाथ धोना पड़ेगा।" दुनाखेजी आँखोंमें आँसू भरकर बोले।

पिछली रात, काव्यरुदन आँसुओंकी बाढ़में डूबते-डूबते मैं किसी तरह बचा था। इसलिये फिरसे आँसुओं का दर्शन होते ही मैंने झटसे कहा — "दुनाखेजी, चलिये, मैं आपके साथ आनेके लिये तैयार हूँ।"

"आपको बिलकुल तकलीफ न होगी। समारोह होते ही शाम की गाड़ीके लिये आपको सीधे स्टेशन पहुँचा दूँगा" ।–दुनाखेजीने कहा। अब उनकी आँखोंके आँसू सूखे, दिलकी कली खिल उठी।

"अच्छा साहब, नमस्ते।" गणपतरावजीने हाथ जोड़कर कहा– "अब आपको दुनाखेजीके हाथ सौंप दिया है। हम अपनी जिम्मेदारीसे मुक्त हो गये। दयालोभ रहने दीजिये और फिर कभी बुलानेपर जरूर आइये।"

मेरे आनेजाने के खर्च के बारेमें मैं उनसे पूछना चाहता, लेकिन मैं कुछ कहूँ इसके पहले ही वे लापता हो गये।

रामभाऊके और दुनाखेजी के घरमें दिन गुजारनेका अनुभव एक ही था। बस, फर्क इतना ही था कि दुनाखेजीकी धोतीमें डीकामालीकी बू नहीं थी और उनकी पत्नी काव्यरचना नहीं करती थीं। अब बम्बई पहुँचनेका विचार ही मैंने छोड़ दिया।

दुनाखेजीके स्कूलका समारोह होने के बाद जिस संस्थाके प्रेसिडेंटने मेरे न आनेकी बाजी लगायी थी उनके। 'जटाशंकर' टॉकीजका उद्घाटन भी रातको मेरे ही हाथ हुआ।

"आप – इतनी दूर आये हैं तो क्या आपको यूँही जाने देंगे हम।" जटाशंकर मेरे गलेमें हाथ डालकर कहने लगे। अब क्या मजाल जो मैं 'ना' कह देता।

बुधवार रात को चित्रपटगृह का उद्घाटन हुआ। गुरुवार को दुपहर उन्होंने मुझे बड़ा भोज खिलाया। शाम को सेठजी ने मुझे अपनी मोटर में बिठाकर स्टेशनपर पहुँचाया। सेठजी को कोई जरूरी काम था जिस से वे स्टेशन तक मेरा साथ न दे सके। दुनाखेजी भी न–जाने कहाँ गायब थे।

बम्बई तक तीसरे दर्जेसे ही अब जा सकता था। पैसे जो उतने ही बचे थे! गुरुवार रात को किसी भी गाड़ी में मुझे जगह न मिली। हरेक गाड़ी खचाखच भरी थी। रातभर मैं स्टेशनपर सिकुड़ता रहा। गला बैठ गया है, आँखें दुख रही हैं, बदन में न जाने कैसी–कैसी वेदनाएँ हो रही हैं, ऐसी अवस्थामें शुक्रवार रात को साढ़ेदस बजे मैं दादर स्टेशनपर उतरा।

बाहर न टॅक्सी थी, न घोड़ागाड़ी। हमालके सिरपर बोझ लादकर मैं किसी तरह आधे घंटे बाद पैदल घर पहुँचा। रास्तेमें मैंने गणपतरावजी, रामभाऊ, सीताबाई, दुनाखे मास्टरजी, जटाशंकरजी–सबको जो गालियाँ बरसायीं उन्हें यहाँ बताना ठीक नहीं होगा।

घर आतेही लेटना चाहा कि टेलिफोन की घंटी बजी। रात को ग्यारह बजे टेलिफोन करनेवाला यह महात्मा कौन होगा, इस विचार से चिढ़कर मैंने टेलिफोन उठाया और जोर से पूछा, "कौन है?"

"बस!" मेरी आवाज पहचानकर दूसरी तरफ से जवाब आया, "साहब, तो आप यहीं हैं? देखिये, अभी यहाँ फलाने का व्याख्यान था। मगर वे नहीं आये। फिर लोगों का कहना है कि, आपका व्याख्यान करायें। बस, ज्यादा नहीं केवल एक घंटे के लिये आप आ जाइये। देखिये...सब लोग आपकी प्रतीक्षामें बैठे हैं।"

मैं कुछ कहना चाहता था मगर उस के पहले ही उस तरफसे जवाब आया—"मैं अभी गाड़ी ले आता हूँ।" और उसने टेलिफोन बंद कर दिया।

अब मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

पड़ोस के रेडिओ में आर्त स्वरसे बार–बार यह ध्रुपद सुनायी पड़ रहा था–

"तुम बिन कौन सहारा प्रभुजी!" ★

रूपा : **लीलावती भागवत**





(उर्मिला : पृष्ठ ४६ से आगे)

विदाई देने में मग्न थी। किन्तु उर्मिला साश्रु नयनों से विदाई देने की स्थिति में भी नहीं थी। वह शून्यता में खो गयी।

राम, लक्ष्मण और सीता को पहुँचाकर सारथी सुमंत जब लौटा उस समय उर्मिला कुतूहल के साथ लक्ष्मण का कुशल पूछने गयी। रविवर्मा के एकाध चित्र जैसा वह प्रसंग था। – रामसीता तमसा नदी के किनारे पर सोये थे; और लक्ष्मण प्रहरी थे। यह बात सुमंत की ओरसे सुनकर उर्मिला को ब्रह्माण्ड याद आया। इस तरह के सेवाधर्म का पालन कर अपने पति को चौदह वर्षों तक बन में कठिन संकटों का सामना करना पड़ेगा इस विचार से उसका हृदय फट गया। बन के अनेक हिंस्र पशु, बलशाली राक्षस, गहरी घाटियाँ और कठिन मार्ग एक-एक करके आँखों के सामने आने लगे। ऐसी हालत में वह चौदह वर्षों का अन्दाजा भी नहीं कर सकती थी। उसके आँखों से अश्रु की सतत धारा बहने लगी।

राजवंश में दूसरा और एक संकट उपस्थित हुआ। पुत्रशोक में पागल दशरथ चल बसे। चारों ओर पुनः – फिर से दुःख की छाया छा गयी। कुछ समय तक सास-बहुएँ एक दूसरे को सांत्वना देती थी परंतु वैधव्य-प्राप्ति के बाद सुमित्रा रानी हिम्मत हार बैठी थी। उर्मिला को अपनी व्यथा भूलकर उसकी सांत्वना करनी पड़ी। उसे लगा कि कितना दुर्भाग्य ! मुझे सहारा देनेवाली सास को भी दुखने घेर लिया। अब जीना कैसे ? दशरथ के मृत्यु के पश्चात् पिंड अर्पित करने के लिए सारा राजवंश गंगा के किनारे गया था वहाँ अपने पति के दर्शन से वह बेहोश हो गयी। अपने को संभालना उसके लिए कठिन हो गया। अवसर पाकर उसने फिर एक बार बनमें ले जाने के लिए पति को कहा। ऐसी अवस्था में राजमहल में रहना उसके लिए कठिन था। कुछ दिन निकालने से ही उसे लगा कि अब १४ वर्ष निकालना बड़ा कठिन काम है। उर्मिला ने व्रत की भी हठ पकड़ी। किन्तु यह राम-लक्ष्मण को ठीक तरह से सुनायी नहीं दिया। पिताकी मृत्यु का अपरंपार दुःख ढँकने का प्रयत्न वे कर रहे थे, माताओंको समझा रहे थे, भरत को उपदेश कर राज्यकारोबार की जानकारी दे रहे थे, घर की अन्य व्यवस्था देख रहे थे। समय की कमी थी और महत्वपूर्ण बहुत ही काम पड़े थे।–इनके सामने उर्मिला की कहानी नगण्य थी। दशरथ की मृत्यु के दुःख में उर्मिला के विलाप ने अरण्यरोदन का रूप धारण किया था।

उर्मिला लौटी। जहाँ अब ससुर नहीं और जहाँ सासुओं की दुर्गति हुई है, ऐसे ससुराल में वह लौटी। जहाँ उसके प्राणेश्वर नहीं, ऐसे मन्दिर में वह लौटी। सारा सुख, सारा आनंद, सभी आशाएँ, और उसका यौवन जहाँ लुप्त हुआ है ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिए वह लौटी। पति कर्तव्य-पालन करने के लिए निकल गया। केवल अपने कर्तव्य के पालन न करने का ही कर्तव्य बचा था। पतिवियोग, पुत्रवियोग, बन्धुवियोग, राजवियोग इससे घर में शोक का वातावरण फैल गया। स्वयं मात्र किसी भी दुःख को न बतलाते हुए इस शोक को सहना इस तरह के विचारों की ज्वाला में वह लौटी।

यह जानना उसके लिए मुश्किल हो गया था कि आगे का जीवन कैसे बिताना। आसपास का विलासी वातावरण उसे विषवत् लगा। रिश्तेदार उसे पराये जैसे प्रतीत होने लगे। खुद कहीं पराये स्थान आयी है, अपना स्थान यहाँ नहीं है ऐसा उसे लगा। प्रतिदिन के कार्यक्रम के अनुक्रम को बार-बार भूलने लगी। अपना पति कंदमूलों पर ही अपनी जीविका चलाता है इस विचार से अन्न उसके गलेसे नहीं उतरता था। मूल्यवान् वस्त्रों की ओर देखकर उसे वल्कलों का वेदनामय स्मरण आता था। अपने सौभाग्यालंकारों की ओर वह शून्यता से देखती थी। दिन बीतने के बाद दूर क्षितिज की ओर दृष्टि लगाकर रातें अश्रुधाराओं की आकाशगंगा में बिताती थी।

उस का हृदय लक्ष्मण की ओर लगा हुआ था। वह चित्रकूट से दंडकारण्य तक घूम रहा था।

भरत ने जटा बढायी थी। कौशल्या रामपूजा में व्यस्त थी। कैकेयी पछतावा कर रही थी। रामचन्द्र की पादुकाओं को मस्तक लगाकर जनता समाधान मानती थी। और उर्मिला ? – कोई भी समाधान और कोई भी व्रत उसके भाग्य में नहीं लिखा था। सदा के लिए अश्रुपात ही उसका जीवन बन गया था।

चौदह ग्रीष्मकालों का उर्मिला का उर्वरित जीवन मानो शोक की सतत धारा ही थी। कितने दिन सहा जाय ? – किस तरह किस पर सहा जाय ? – उर्मिला का हृदय विदीर्ण हुआ। सभी आशा-आकांक्षाएँ नष्ट हो गयीं। उस प्रदीर्घ दुःखरूप अग्नि में सब कुछ भस्म हो गया। मन पर निराशा और शून्यता की एक अखण्ड काजली इकट्ठी होगयी। सारी भावनाएँ नष्ट होगयी। सीता को पहले गोद में लेने के लिए हठ करनेवाली उर्मिला का वह स्वभाव अब थोडासा भी बाकी नहीं रहा था। शिवधनु के दर्शन से गालों पर दिखायी देनेवाली वह लाली हमेशा के लिये लुप्त हो गयी। लक्ष्मण की ओर अभिमान से देखनेवाली उर्मिला का अभिमान अब नष्ट हो गया था।

वनवास के चौदह वर्ष पश्चात तीनों वापस लौटे। सीताका अकेलापन दूर करने के लिए उसके साथ विमान से रुमा, तारामति आदि स्त्रियाँ थी। बडी धूमधाम से उनका स्वागत किया गया। उर्मिला ने सभी की आरती उतारी। अरुंधती, अहिल्या, शबरी, मंदोदरी, तारामती आदि सभी साध्वी महिलाओं का दुःख हरण करनेवाले राम के उर्मिला ने दर्शन लिये। पतिपरायण, आदर्श आर्या, सखी सीता को गले लगाया और अपने मनमें प्रस्फुटित भावना-ओंका अंदाज लेते लेते वह अपने स्वामी के सम्मुख गयी.....!

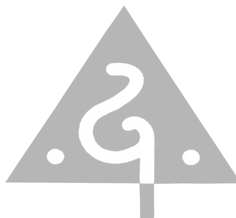
रूपा :– **शिवानन्द गोकर्ण**





अनुक्रमणिका





(**उलझन** : पृष्ठ ४८ से आगे)

किन्तु मैं यह सब क्यों सोच रही हूँ ? मुझे यह सब देखने की क्या आवश्यकता है ? कुछ नहीं ! किंतु बड़ी मजे की बात है न ! रहने के लिए आया है पर साथ में कुछ भी नहीं लाया, अगर लाया होता तो अब तक अवश्य ही टैक्सी से उतार कर कमरे में ले जाता। और भी आश्चर्य की बात यह है कि टैक्सी भी अब तक खड़ी हैं। उसको भी पैसे देना भूल गया है क्या ?

मैं सम्मोहित-सी होकर खड़ी-खड़ी सब कुछ देख रही हूँ और सुन रही हूँ। ऐसा लगता है जैसे मेरा ही कोई मुझे वहाँ खड़ी करके अन्दर घूमने गया है। थोड़ी देर बाद दियासलाइयाँ नहीं जलीं। मैंने समझा शायद सारी तीलियाँ खत्म हो चुकी हैं।

किन्तु नहीं, वह तो वहाँ रहने नहीं आया था। थोड़ी देर बाद देखा, वह दरवाजे पर ताला लगा रहा है। टैक्सी सो रही थी सो अब जग उठी क्रोधित हो उठी, उसकी दोनों आंखें जलने लगीं और वह दौड़ती हुई चली गयी।

दूसरे दिन जितनी बार मुझे गाड़ी की आवाज सुनाई दी मैं उठकर बरामदे में गयी। मेरा विश्वास था कि वह आदमी सामान लेकर अब आया, तब आया।

किन्तु वह नहीं आया। दूसरे दिन नहीं आया, उसके बाद वाले दिन भी नहीं आया। पूरा एक सप्ताह बीत गया, फिर भी नहीं आया। उस दिन भी उसने जाते समय पानवाले की दूकान से सिगरेट खरीदी थी और उसे कुछ कहा भी था। बीच-बीच में इच्छा होती है कि उस पानवाले से पूछूँ कि वह कब आएगा ?

अपने पति से कहती हूं—" मकान किराये पर लिया, पर वह आदमी अभी तक नहीं आया—क्या बात है ? "

पति ने कहा—" अपना क्या आता-जाता है ? "

" कुछ नहीं। किन्तु मुहल्ले में नया आदमी आता है, तो क्या जरा कौतूहल नहीं होता ? "

"जरा कौतूहल, जरा उत्साह और शायद कुछ निराशा भी। और कुछ नहीं ! और सब कुछ पूर्वानुरूप ही चल रहा है। वह बँधे समय पर ही आफिस जाते हैं और लौटते हैं। ठीक सवा छः बजे सीढ़ियों से जूतों की आवाज सुनायी देती है।

एक दिन शाम की बात है, मुझे ऐसा लगा कि सड़क पर एक गाड़ी आ कर रुकी है। उस समय मैं बाथरूम में थी। जल्दी से किसी तरह एक साड़ी लपेट कर बाहर आयी। किन्तु नहीं, वह नया आदमी नहीं था। ठीक उस समय मेरे पति लौटे। छः बजकर तेरह मिनट।

अकस्मात् न जाने क्या हुआ, मैं कह बैठी—" अच्छा, क्या एक दिन भी तुम्हारे आने में देर नहीं हो सकती ? "

वह हतप्रभ हो गये। बोले—" देर क्यों होगी ? "

तब तक मैं भी शर्मा गयी थी। असल में यह बात इस तरह कहना ठीक नहीं हुआ। मैंने कहा—" यानी लौटते समय रास्ते में कोई पूर्व-परिचित व्यक्ति मिल जाए या फिर.... ! "

बीच ही में मेरी बात काट कर उन्होंने कहा—" पहली बात तो यह है कि कोई मिलता ही नहीं और कभी कोई आता हुआ दिखायी दे भी जाए तो हम किसी तरह बचकर निकल आते हैं। सारे दिन से परिश्रम के बाद क्या मिलना-जुलना अच्छा लगता है ! "

" ट्राम-बस में देर नहीं होती ? "

पति ने कहा—" ट्राम-बस में जब देर होने का ढंग देखते हैं तो पैदल ही चले आते हैं। क्या यों ही बहूबाजार में रहते हैं ? लालदीघि से पैदल आने में भी पन्द्रह मिनट से ज्यादा समय नहीं लगता ! "

मैंने कहा—" ओह ! " उन्हें नहीं समझाया जा सकेगा कि कभी-कभी देरी, बहुत देरी करके लौटने पर क्यों अच्छा लगता है ? शाम से ही छटपटाना, कभी इस कमरे में कभी उस कमरे में जाना, बार-बार घड़ी की ओर देखना, छाती काँपता...उस भय के बारे मे, उस के सुख के बारे में यह कैसे जानेंगे !

* * *

सचमुच एक दिन वह आदमी आया। तब सुबह के छः बज रहे होंगे। दाढ़ी बढ़ी हुई थी। वह एक पट्टेवाला पाजामा पहने था। किन्तु मैंने तो सुन रखा था कि यह स्लीपिंग-ड्रेस है, इसे पहन कर क्या कोई घूमने बाहर निकलता है ? साथ में एक सूटकेस तथा एक बिछौना लाया था। इसका सामान क्या बस इतना-सा ही है ? और फिर रहनेवाले आदमी भी कहाँ हैं ? इतना बड़ा मकान भाड़े पर लिया है, क्या वह अकेला ही रहेगा ? खाना-पीना कहाँ करेगा ? होटल में ? तो फिर वहीं एक कमरा लेकर रहने से ठीक रहता बहुत कम खर्चे में काम चल जाता। यहाँ तो मकान का किराया भी कम-से-कम सौ रुपये होगा।

आज के दंशावतार : १० **कल्की**



पक्षपात रिश्वत की 'गुप्ती' अटकाती है रोड़ा।
कब कल्की अवतार धरेंगे, पंथ देखता घोड़ा॥

मौत कभी कभी उस आदमी को ज़िन्दा छोड़ देती है, जो उससे नहीं डरता; और उसको मार डालती है जो उससे डरता है!



थोड़ी देर बाद मैंने देखा, न जाने कहाँ से एक झाड़ू का प्रबन्ध कर लिया है और अब जी-जान से कमरा साफ करने में लगा है। किन्तु कमरे का दरवाजा बन्द न करने के कारण धूल वापस कमरे के अन्दर ही जा रही है। अनाड़ी और किसे कहते हैं!

थोड़ी देर बार कहीं से एक औजार ले आया और अपना पँखा ठीक करने लगा। तो क्या यह आदमी बिजली मिस्त्री है? किन्तु नहीं, मिस्त्री होने पर ऐसा कमरा किराये पर कैसे ले सकता था!

घर में खाट तो थी नहीं, अतः जमीन पर ही बिछौना कर के चार-पाँच छोटे-छोटे तकिए छाती के नीचे दबा कर वह सो गया। मैं तो उसकी आँखें देख कर ही समझ गयी थी की वह बड़ा थका हुआ है। न जाने कितनी रातों की नींद बाकी है। तो क्या यह आदमी बदचलन है? रातभर यह कहाँ रहा होगा? यही सोचती-सोचती अन्दर गई, बहुत काम करने को पड़े हैं।

दोपहर को जब बरामदे में आयी तो देखा, वह अब भी पड़ा-पड़ा सो रहा है। छाती के नीचेवाले तकीए न जाने कब टांगों के बीच चले गये थे। खिड़की खुली रहने के कारण धूप मुँह पर पड़ रही है और इसी धूप से बचने के लिये उसने अपने मुँह को हाथ से ढक रखा है। आलसी टट्टू कहीं का! उठकर खिड़की भी बन्द नहीं कर सकता। न नहाना, न खाना, काम-धाम का बखेड़ा तो खैर है ही नहीं! केवल सोना और शायद आराम से सोने के लिए ही इस गुंडे ने इतना बडा मकान किराये पर लिया है। कुंभकण कहीं का!

तभी देखा, वह उठ गया है। उठकर एक उबासी ली और इसी तरफ देखने लगा। सर्वनाश! वह क्या मुझे देखकर ही हँसा है? मेरी छाती काँप गयी, जल्दी-जल्दी भीतर चली गयी।

उस दिन दोपहर को मुझे नींद नहीं आयी। आईनेमें मैंने अपने को देखा। मुझे देखकर वह क्यों हँसा? तीन-तीन बच्चों की माँ होकर थल-थल मोटी हो गयी हूँ, केश पतले हो गये हैं, आँखों के नीचे काला दाग पड़ गया है-मुझे देखकर तो लोगों को हँसी आनी ही चाहिए, किन्तु वैसी हँसी वह आदमी क्यों हँसा? वैसी हँसी पाने की अवस्था तो मैं बहुत दिन पहले ही पार कर चुकी हूँ।

शाम को देखा, वही ताला वहाँ लटक रहा है। मेरे छोटे बच्चे को उस दिन बुखार था। उसे गोदी में लिए मैं सारी रात जगी थी। पर उसके कमरे में कोई रोशनी नहीं हुई। न जानें हरामजादा आज फिर किसके यहाँ रात बिताने गया है।

फिर लापता हो गया! पूरा एक महीना बीत गया, पर वह अब तक नहीं आया। दरवाजे पर वही विश्वासी ताला लटक रहा था।

* * *

'खाना, पीना, रहना तो तू यहाँ नहीं करेगा, यह तो मुझे मालूम है, पर अगर दोपहर को सोएगा भी नहीं तो इतना बड़ा मकान क्यों किराये पर लिया था?'—मन-ही-मन मैंने उसे बहुत गालियाँ दीं।

मैंने अपने पति से भी कहा। पतिदेव ने जबाब में कहा— "क्रिमिनल! लोगों को मकान नहीं मिलता और यह एक मकान किराये पर लेकर बन्द कर के छोड़ गया है!"

'क्रिमिनल' शब्द सुनते ही मुझे उस रात वाली घटना याद हो आयी। उस रात वह चुपचाप चोर की तरह आया था। कमरे के अन्दर गया पर बत्ती नहीं जलायी। प्रायः महीने भर बाद आया, फिर भी बिना बत्ती जलाये ही उसने अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया! तो क्या फिर यह......?

मेरा अन्दाजा ही सही हुआ। इस के प्रायः पद्रह-बीस मिनट बाद दो आदमी उसके दरवाजे के सामने आ खड़े हुए। उनका चेहरा तो मैं अंधेरे में नहीं देख सकी, पानी जोरों से बरस रहा था, उन्होंने धीरे से दरवाजे पर एक दस्तक दी। और प्रायः साथ-साथ ही दरवाजा खुल गया। शायद इन दोनों की प्रतीक्षा में ही वह बैठा था। कमरे का अन्धकार उन दोनों को भी निगल गया। रोशनी फिर भी नहीं हुई।

इसके कितने मिनट बाद, ठीक नहीं बता पाऊँगी, मैंने देखा, बरामदे में तीनों आदमी आ खड़े हुए। फुसफुसाकर उन्होंने कुछ बातें कीं। उनमें से एक ने हाथ बढ़ाकर देखा कि पानी रुक गया या नहीं और फिर वे दोनों आगन्तुक चले गए। दरवाजा फिर अन्दर से बन्द हो गया।

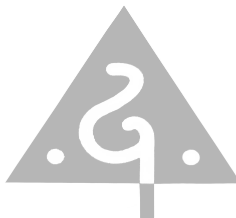
बेहद सर्दी थी, मेरे हाथ पैर जमे जा रहे थे, फिर भी मुझे पूरा एक गिलास पानी पीना पड़ा। इस आदमी का असली रूप अब समझ पायी हूँ। इतने दिनों तक तो बहुत कुछ सोचा था, किन्तु इतनी दूर का सन्देह नहीं किया था।

जासूसी कहानियाँ मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। अनेक प्रख्यात डाकुओं की कहानियाँ मैं पढ़ चुकी हूँ। यह जरूर उन्हीं में से एक है, किसी गुप्तदल का सरदार है। जो दो आदमी आये थे, वे जरूर इसके साथी हैं। इन बरसात की रातों में ही तो इनका असली काम होता है। आज रातको अवश्य ही कहीं-न-कहीं कोई दुर्घटना घटेगी। इतनी देर तक अंधेरे में शायद उसी की योजना बन रही थी।

सुबह उठते ही अखबार पढ़ने लगी। किन्तु कहीं भी किसी दुर्घटना की खबर नहीं छपी थी। तो फिर रात को जो कुछ देखा था वह स्वप्न था या जादू?

सुबह उस आदमी के साथ आँखें मिलीं। खिड़की के पास टेबल रख कर न जाते क्या लिख रहा था। बड़ी-बड़ी आँखें, अत्यन्त, भ्रान्त दृष्टि! तो फिर क्या मेरा अन्दाज ग़लत है?





अच्छा, यह भी तो हो सकता है कि यह डाकू न होकर किसी क्रान्तिकारी दल का नेता हो? पुलिस उसके पीछे लगी हुई हो और वह यहाँ छिपा हुआ हो? कितने नेताओं की जीवनी मैंने पढ़ी है। देश स्वाधीन तो हो गया है, पर हो सकता है कि इनके दल ने जो चाहा था, वह नहीं हुआ और इसीलिए अपने विश्वस्त साथीयों के साथ मंजिल तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा हो? ये लोग जो कुछ कर रहे हैं, इसका पता तो आज नहीं लगेगा, अगर लगेगा भी तो बहुत वर्ष बाद। हो सकता है कि एक दिन पूरा अखबार ही इन की कीर्ति-कहानी से भर जाए। कल रात को डर रही थी पर आज श्रद्धा से मेरा हृदय भर उठा।

* * *

असभ्य, बदमाश, नालायक कहीं का मैं हाँफ रही थी। मेरे पास एक बड़ा-सा पत्थर नहीं था, नहीं तो उसे आज अच्छी तरह शिक्षा देती। उसे समझा देती कि दूसरों की स्त्रियों की तरफ देखकर हँसने की सजा क्या होती है! फिर किसी अपरिचित लड़की की तरफ आँखें उठाकर देखने का साहस उसे कभी नहीं होता।

उस पर भी साहस देखो इस लुच्चे का! एक सिगरेट जलाकर मेरी ओर ताकते हुए एक गजल गाने लगा —

" दिखला के झलक रूपोश हुई जीभर के नजारा हो न सका,
इक बार तेरा दीदार हुआ, लेकिन वो दुबारा हो न सका।
जाने ही बगैर अन्जामे जिगर भूले से मुहब्बत कर बैठे
इक दिल भी दिया इक जान भी दी, लेकिन वो हमारा हो न सका।"

—ऐसी गज़ल कोई भद्रसमाज में नहीं गा सकता। उसने मुझे क्या समझ रखा है? मैं बाहर बरामदे में जाती हूँ, वह तो अपने काम से। कभी कपड़े सुखाने, कभी फेरीवाले को बुलाने। और फिर क्या बन्द घर में बैठे-बैठे हम नहीं उकताती? माना कि, हम नारी है, पर क्या ताजी हवा सेवन करने की हमारी इच्छा नहीं हो सकती?

इसी लम्पट बदमाश को मै कल विप्लवी राजनैतिक नेता मान बैठी थी। लड़कियों में आखीर और कितनी बुद्धि होगी?

उसका असली रूप तो मैं कल शाम को ही जान गयी थी। आज-कल के फैशन की पैंट पर एक हवाई शर्ट पहने वह एक गाड़ी से उतरा। साथ में दो-दो जवान लड़कियाँ थीं। तुम्हारे मुँह में आग लगे! (ठीक ही तो है। होंठो की सिगरेट तो कभी बुझी हुई नहीं देखी।) दोनों युवतियाँ उसके साथ-साथ कमरे के अन्दर गई। युवतियाँ सुन्दर थीं, मेकअप भी जोरों का कर रखा था।

उस समय अन्धेरा हो आया था, देख तो कुछ भी नहीं पायी, किन्तु बहुत देर तक भागना-कूदना खिलखिला कर हँसना सुनती रही। जैसे हँसी के फव्वारे से ये कमरे की धूल को धो देंगी। छिः-छिः, यह आदमी तो खैर यों ही गया बीता है, पर क्या इन लड़कियों को भी शर्म नहीं आती? इस के बाद प्रायः एक घण्टा हो गया, कोई आवाज नहीं सुनाई दी। तो क्या ये नहीं जाएँगी? सारी रात यही बिताने का विचार है क्या? एक लड़का और दो लड़कियाँ? छिः - छिः, सर्वनाश!

थोड़ी देर बाद वह आदमी बाहर आया। सिगरेट खरीदी— जरूर वे चुड़ैलें भी पिएँगी। दुकानदार को उसने दस रुपये का एक नोट दिया और बाकी पैसे बिना गिने ही उसने पाकिट में डाल लिए। उसके बाद पासवाली मिठाई की दुकान में गया, एक दोने में मिठाई ली और वहाँ भी दस रुपये का एक नोट दिया।

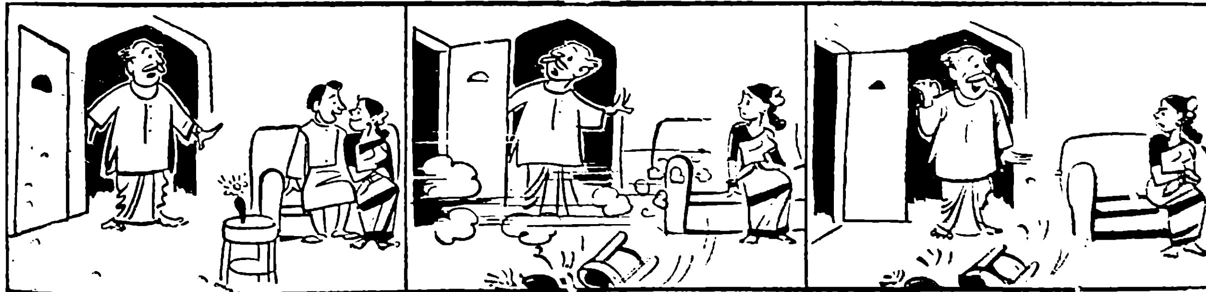
बात-बात में नोट दिखला रहे हो, सब समझती हूँ। पर तुम्हारे पास इतने नोट आते कहाँ से हैं? कल यदि पुलिस तुम्हारे घर की तलाशी ले और उसे अगर तुम्हारे घर में जाली नोट बनाने की मशीन मिल जाए, तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। तुम सब कुछ कर सकते हो, तुम इस निरीह गली में शनि बनकर आये हो।

चलो, जान बची, गहरी रात होने के पहले ही उसने दोनों युवतियाँ को बिदाई दी। असभ्यता की चरम सीमा नहीं दिखाकर तुमने मुझे बचा लिया।

मैं उस समय खिड़की के पास खड़ी थी और मन-ही-मन उस आदमी को बुरा - भला कह रही थी के मेरे दोनों लड़के दौड़े-दौड़े कमरे में आये। उन दोनों के हाथों में टॉफियाँ थीं।

" कहाँ मिलीं तुम्हें ये सब?" मैंने उन्हें झकझोरते हुए पूछा। टॉफियाँ जमीन पर बिखर गयीं। उन्होंने इशारे से उस मकान की खिड़की दिखलायी।

अरी! कहाँ गये दामाद?



"क्यों लीं तुमने उसकी दी हुई टॉफियाँ? क्या माँगने गये थे?"

"नहीं, उसी ने बुला कर दीं।"

"उस ने और क्या-क्या कहा तुम लोगों से?"

"कुछ नहीं, मां! केवल बोला — "बीच-बीच में तुम लोग मेरे यहाँ आया करो। मुझे बच्चे बड़े अच्छे लगते हैं।"

मैंने पूछा — "और क्या-क्या कहा?"

"और कहा, तुम दोनों के लिए दो छोटी-छोटी कविताएँ लिख कर रखूँगा — कल आकर ले जाना।"

कविताएँ? तो क्या यह आदमी कवि है? अब उसकी प्रत्येक बात का एक नया ही अर्थ मेरी समझ में आने लगा। हो सकता है कि वह खिड़की के पास बैठकर कविताएँ लिखता हो। कितनी अद्भुत् बात है, हम लोग दूसरे आदमी के बारे में कितनी गलत धारणाएँ बना लेते हैं।

मैं ने फिर लड़कों से फुसफुसा कर पूछा — "मेरे बारे में कुछ कह रहा था क्या?"

"नहीं तो, माँ!"

दरवाजे पर आहट हुई। बाहर धीमी-धीमी बरसात हो रही थी, घर में मेरे सिवा और कोई नहीं था। दरवाजा खोलकर मैं दो कदम पीछें हट गयी।

वही आदमी था। ठोढी के पास से खून अविराम गति से गिर रहा था। एक हाथ से उसने गाल को दबा रखा था, फिर भी खून गिर रहा था। उसने जरा रुककर पूछा — "डिटोल या आयडिन है क्या आप के घर में? यह देखिए न, दाढ़ी बनाते समय कट गया है।"

न जाने क्यों मैं डर रही थी। मैंने समझा शायद यह...। "नहीं-नहीं, कुछ नहीं है।" मैं प्रायः चिल्लाकर ही कह बैठी "आप जाइए, अभी चले जाइए।"

और मैं ने झट दरवाजा बन्द कर लिया। जल्दी-जल्दी ऊपर आकर बरामदे में गयी। जाकर देखा, वह अपने कमरे में छटपट कर रहा है, कभी आइने के सामने खड़ा होकर देख रहा है, कभी कभी बिछौने पर लेट रहा है।

यह दृश्य देख कर मुझे दया आयी। मन ही मन ग्लानि भी हुई। मैं ने क्यों उसे लौटा दिया — डिटोल, आयडीन सब कुछ तो था घर में। छिः-छिः, यह मैं ने बहुत बुरा किया।

इस के बाद चार-पाँच दिन तक वह आदमी लापता रहा।

एक दिन सुबह उस घर के सामने सामान से भरी हुई एक लारी आकर रुकी। मैं जल्दी से बरामदे में गयी। वही आदमी था। हाफ शर्ट और पाजामा पहने। कुलियों को हुक्म देकर उसने लारी से सारा सामान उतरवा कर कमरे में रखवाया। इसी बीच एक टॅक्सी वहाँ आ खड़ी हुई और उस में से एक वधू और चार-पाँच बच्चे उतरे। वधू की गोदी में एक बच्चा था। इतने दिन बाद वह अपने परिवार को लाया है, मैं समझ गयी।

इसके बाद उस दिन उनको नहीं देख सकी। आभास हुआ, घर में सफाई का काम चल रहा है।

उस बहू के साथ बातचीत हुई शाम के समय। उस समय वह नहा-धो कर सिन्दूर बिन्दी लगाकर बरामदे में खड़ी थी। मैंने बातचीत शुरु करने का मूलमंत्र ही अपनाया — "आप शायद आज ही आयी हैं?"

उसने कहा — "हाँ, बहन।"

"किन्तु मकान तो काफी दिनों से ले रखा है?"

— "हाँ। उनकी हठात् यहाँ बदली हो गयी। आते ही उन्हें यह मकान मिला। उन्होंने तभी किराए पर ले लिया। मैं तो उस समय आ नहीं सकती थी, देख ही रही हैं"

पालने में सोए हुए बच्चे की तरफ इशारा कर उसने फिर कहा — "मैके में थी, स्वास्थ्य जरा सुधरते ही यहाँ चली आयी हूँ।"

— "ओह!"

हम दोनों बातें कर रही थीं कि देखा, वही दोनों लड़कियाँ आ रही हैं। एक रात को आयी थीं न वे दोनों युवतियाँ। मैं ने सोचा, बहुत अच्छा हुआ। मौका देख कर ही आयी हैं, अब तो रंगे हाथों पकड़ी जाएँगी।

उस बहू ने कहा — "ये दोनों मेरी ननदें हैं। यहाँ होस्टल में रह कर कालेज में पढ़ती हैं" इसके बाद उस ने उन दोनों की ओर घूमकर कहा — "चिट्ठी द्वारा मुझे खबर मिली थी कि एक दिन तुम लोगों ने आकर यहाँ घर को साफ साफ किया था।"

तभी उसके स्वामी (यानी वह आदमी) अन्दर आए। उसने छोटा-सा घूँघट निकाला और जरा हट कर खड़ी हो गयी। मैं भी अन्दर आ गयी।

अब मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। यह आदमी रेलवे में काम करता है। कभी दिन की तो कभी रात की ड्यूटी मिलती है। इसके अलावा दौरे भी है। कभी तो महीने भर तक के लिए उसे बाहर जाना पड़ता है।

दूसरे दिन सुबह देखा, वह मेरे स्वामी के साथ-साथ ही एक थैले में साग-सब्जी लिए आ रहा है। अब कोई रहस्य नहीं था। सब कुछ मेरे समझ में आ गया था। इस के घण्टे भर बाद वह आफिस जाने से लिए तैयार हुआ। चौखट के पास आकर उसने एक पान मुँह में दबाया।

लौट कर आया छः बजकर बारह मिनट पर। सब लड़के बच्चे उस को घेर कर बैठ गए। चाय आयी और चाय पीते-पीते उसने बच्चों को धमकाया। मैं ने धमकाने की आवाज सुनी और समझा गयी कि बच्चों की लिखाई पढ़ाई की जाँच हो रही है।

मुझे अब डर नहीं लगता। मेरी चिन्ता अब दूर हो चुकी है।

मेरा विश्वास है कि अब दूसरे दिन सुबह मैं देख पाऊँगी कि वह बरामदे में बैठा है और गोदी में अपने छोटे बच्चे को लिटाकर धीरे-धीरे तेल मालिश कर रहा है।

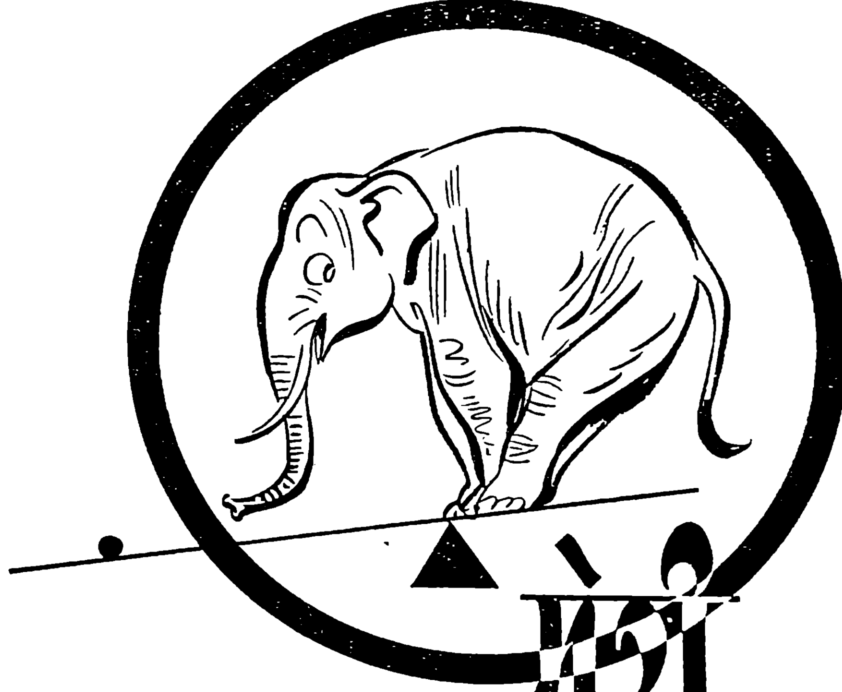
और इसके बाद शायद किसी दिन यह भी सुन पाऊँगी कि खर्चे-खर्चे की बाबत पति-पत्नी में खटपट हो रही है। ★

रूपा: गोपाल महेश्वरी 'प्रताप'

अनुक्रमणिका







मेरी असफल भूमिका

हमारी दुनिया एक रंगमंच है। और हम सब हैं इस रंगमंच के नट। हरेक को इस रंगमंच पर किसी न किसी प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है। कभी-कभी तो एकही समय तीन या चार भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमिकाएँ खेलनी पड़ती हैं जैसे कि एक व्यक्ति जो घर में पति की भूमिका खेल रहा है उसे वहीं पिताकी भूमिका के लिए भी प्रस्तुत हो जाना पड़ता है और इन दोनों भूमिकाओं में एक ही साथ सफल होंने में प्रयत्नशील है कि पड़ोसी के घर की कोई अघटित घटना का समाचार उसे प्राप्त होता है और अपना पड़ोसी-धर्म निभाने के लिए भी वहाँ प्रस्तुत होना पड़ता है। एक ही साथ, एक ही समय तीन भूमिकाएँ खेलनी पड़ीं, यह सम्भव नहीं कि वह तीनों भूमिकाएँ सफलतापूर्वक निभा सके। हो सकता है पहली की दो भूमिकाएँ निभाने में वह अधिक प्रयत्नशील रहा हो और तीसरी को—पड़ोसी की भूमिका को न निभा सका हो; अथवा यह भी हो सकता है उसने बादवाली तीसरी भूमिका ही सफलतासे निभायी हो और पहली दोनों में फेल हो चुका हो। उदाहरणार्थ हमने इन तीन भूमिकाओं की सी जिक्र किया, पर इस के अलावे की कई, अनेकविध भूमिकाएँ जीवन-नाटक में भारी हैं जैसे सुयोग्य पुत्र बनने की, सुयोग्य शिक्षक बनने की, सुयोग्य नेता बनने की, और तीनों एक ही को निभानी पड़ती हैं तो वह किसी एक में सफल और कइयों में असफल साबित हो सकता है। इस तरह जीवन की इन कई विविध भूमिकाओं से

- कृशन चंदर
- बेढब बनारसी
- फिक्र तौंसवी
- प्रकाश पण्डित

सम्बन्धित हिन्दू-उर्दू के हमारे सुयोग्यतम साहित्य-मनीषियों ने अपनी उत्कृष्टतम अनुभूमितियाँ प्रस्तुत की हैं। स्थानाभाव के कारण हम सभी रचनाओं को इस अंक में प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं और हम उन सभी महानुभाव सहकार-प्रदाताओं के प्रति अपना हार्दिक आभार- प्रदर्शन करते हैं।

सम्पादक







अनुक्रमणिका

प्यार ही पेशा ! प्यार ही विद्या ! प्यार ही सबकुछ प्यारे !

कृशन चंदर :

हिंदी-उर्दू के श्रेष्ठ लेखक । आपकी कई पुस्तकें विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं । दीपावली के लिए आप हरसाल लिखते आये हैं ।

शुरू से ही मुझे दो चीजें बहुत पसंद हैं, खूबसूरत जूते और खूबसूरत औरतें ! इन दोनों में ऐसा कौन-सा वैज्ञानिक सम्बन्ध है कि यह दोनों चीजें मेरी बुद्धि में इकट्ठी आती हैं । यह तो मैं नहीं कह सकता, इतना जानता हूँ कि अगर मेरे पाँव से खूबसूरत जूते न हों तो मुझे हर दम एक अजीब-से छोटेपन का अनुभव होता है और अगर मेरी बगल में खूबसूरत औरत न बैठी हो तो मुझे अपने चारों तरफ की दुनिया अँधेरी-सी मालूम होने लगती है ।

लेकिन यह तो कोई जरूरी नहीं है कि जो चीज आपको पसन्द हो वह आपको मिल भी जाये, बहुत-से लोगों को हवाई जहाज में सफ़र करना पसन्द होता है लेकिन जिन्दगी भर हवाई जहाज में सफ़र नहीं कर सकते । बहुत-से लोगों को हीरे की अँगूठी का शौक होता है, लेकिन उन्हें चाँदी का एक छल्ला तक नसीब नहीं होता । इसी तरह बहुत-से लोग पाँव में जूता पहनना चाहते हैं, लेकिन वह जूता पड़ता उनके सर पर है ! इसी का नाम दुनिया है और मैं इसी दुनिया में रहता हूँ और इसी कारण से अपनी पसन्द की चीज भी हासिल नहीं कर सका ।

लेकिन हासिल न करने पर भी पसन्द तो अपनी जगह रहती है और उस के लिए इन्सान कोशिश भी करता है और यही कोशिश मुझे एक बार खींच कर श्री मदन-गोपाल के घर ले गयी । श्री मदनगोपाल अधेड़ उम्र के अन्डर सिक्रेट्री हैं । बाहर सौ रुपये तन्ख्वाह पाते हैं, पचास वर्ष की आयु होने को आयी लेकिन अभी तक शादी नहीं की । इसीलिए हमेशा खूबसूरत जूते पहनते हैं और खूबसूरत औरत की सोहबत में रहते हैं । उनका घर चूँकि मेरी गली में है और उनकी छोटी-सी आस्टिन गाड़ी अक्सर मेरे घर के करीब ही खड़ी रहती है, इसलिए मुझे उनकी रंगीन मिजाजी को देखने का तजुरबा भी है और बहुत क़रीब से है ।

एक दिन मैं हिम्मत करके इतवार के दिन उनके घर चला ही गया और उन से अपनी विपता कह डाली । उन्होंने बड़े ध्यान से मेरी बातको सुना, फिर सोच-सोच कर बोले–

" मेरे ख्याल में आपको प्रेम करना चाहिये ।"

" जूते से ? "

" नहीं औरत से । " वह मुस्करा कर बोले —

" किसी भी खूबसूरत औरत से प्रेम कर लेना चाहिये । "

" मगर हमारे मुहल्ले में तो कोई खूब-सूरत औरत नहीं है । "

" आप समझते नहीं हैं " मदनगोपालजी मुझे समझाते हुए बोले– " जब आप किसी औरत से प्रेम करने लगेंगे, फिर वही औरत आपको सुन्दर मालूम होने लगेगी । "

" मगर फिर उन जूतों का क्या होगा ? "

वह बोले—" उसकी फ़िक्र न कीजिये औरत के आने से जूते खुद–बखुद आ जाते हैं ! "

यह बात भी ठीक थी, मगर किसी ने आज तक मुझे समझायी न थी, अब मदन-गोपालजी ने बताया तो मेरी समझ में आया और मैंने उन्हें उस्ताद मान लिया । चुनाञ्चे दूसरे दिन मैं एक सूदखोर पठान से एक सौ रुपया कर्ज ले के आया, कुछ थोड़ी मिठाई खरीदी, थोड़े-से फ़ूल–बताशे ! यह सब कुछ उनके चरणों में रख कर बोला — " आज से मुझे अपना शागिर्द बना लिजीये, और मुझे प्रेम करना सिखा दीजिये ! "

मदनगोपालजी ने मेरी नजर कुबूल कर ली, मेरे सर पर बड़ी कृपा से हाथ फेरा, बोले, " बेटा ! प्रेम भी एक पेशा है, जैसे लुहार का एक पेशा है, बढ़ई का एक पेशा है, मोटर मैकनिक का एक पेशा है–...प्रेम भी एक विद्या है, जैसे बायोकामिस्ट्री एक विद्या है और सायकालोजी एक विद्या है और प्रत्येक विद्या की दो डालें होती हैं (१) थ्योरी (२) तजुर्बा...विद्या उसी समय तक सम्पूर्ण नहीं होती जब तक मनुष्य उसकी थ्योरी न समझ ले और बाद में तजुर्बे से उसे परख न ले... "

—" इसी लिए तो मैं आपके पास आया हूँ गुरुदेव ! मुझे प्रेम का ज्ञान दीजिये । "

" सुनो ! " मदनगोपालजी बड़ी गम्भी-रता से बोले—" प्रेम करने की दो तरकीबे हैं, एक तो यह कि आपके पास पैसा हो; पैसा अगर आपके पास है तो प्रेम की बहुत-सी कठिनाइयाँ अपने आप हल हो जाती हैं, क्योंकि इस दुनिया में जितनी खूबसूरत औरते हैं बहुत ही कोमल और नाजुक हैं । और खूबसूरत चीजों का अनुभव खास तौर पर प्रकृति ने उन के मन में समो दिया है । प्रत्येक सुन्दर स्त्री सुन्दर चीजों को पसन्द करती है जैसे जड़ाऊ हार सोने का...कैडीलेक की सुन्दर साड़ी, उम्दः सजा सजाया सुन्दर ड्राइंगरुम...सोने के तारवाली साड़ियाँ...अगर आप स्त्री को यह सुन्दरता दे सके तो वह बहुत जल्दी आपकी हो जायेगी । "

" मदन गोपालजी ! " मैंने बड़ी निराशा से कहा—" मै एक ग़रीब लेखक हूँ, महीने में सौ पचास रुपये मुझे पत्रिकाओं में लेख लिख कर मिल जाते हैं । इसके अतिरिक्त मैं एक अखबार का सहकारी एडीटर भी हूँ, एक सौ बीस रुपये मुझे वहाँ से मिलते हैं । इस पर मेरी बूढ़ी माँ है, तीन कुँवारी बहनें हैं दो विधवा मौसियाँ हैं जिनके सात नन्हे-नन्हे बालक हैं । कुछ समझ में नहीं आता, एक साड़ी तक तो खरीद नहीं सकता, मोटर गाड़ी कहाँ से दूँगा । "



अनुक्रमणिका



मदन गोपाल जी ने धीरे से सोच–सोच कर सर हिलाया, फिर बड़े गम्भीर स्वर में बोले—"तब तो तुम्हारे लिए दूसरी तरकीब ठीक रहेगी।"

"वह क्या है ?"

"इसे प्रेम की दूसरी तरकीब कहते हैं। जनसाधारण की परिभाषा में इसे बिना पैसे का प्रेम कहा जाता है......लेकिन इस में बडे अभ्यास की आवश्यकता है और बराबर तजुर्बा करते रहने की जरूरत है।"

"मैं दिन रात मेहनत करने के लिए तैयार हूँ, आप तरकीब तो बताइये।"

"इस तरकीब की थ्योरी यह है कि औरतें सुन्दर जेवरों, सुन्दर गाड़ियों और सुन्दर घरों के अलावा सुन्दर बातें करने वाले और सुन्दर स्वभाव रखने वाले मर्दों को भी पसन्द करती हैं, इसके अलावा अगर वह पुरुष खुद भी सुन्दर हो तो क्या कहना ! मगर मैं देख रहा हूँ कि आपका साँवला चेहरा, चेचक के दाग, गंजा सर और ठिंगना कद इस सिलसिले में आप के लिए बहुत सी कठिनाइयाँ पैदा कर देंगे !"

मैंने कहा—"मैं किसी ठिंगने कदवाली स्त्री से प्रेम कर लूँगा, मगर आप तरकीब तो बताइये...।"

मिस्टर मदन गोपालने अपनी आँखें बन्द कर लीं, चन्द मिनट तक वह किसी गहरे ध्यान में चले गये, जब उन्होंने आँखें खोलीं तो उनके चेहरे पर मुस्कराहट नमूदार हो चुकी थी, प्रसन्न होकर बोले—"तरकीब समझ में आ गयी है, मेरे ख्याल में आप मिस विमला से प्रेम कर लीजिये।"

"वह जो कॉलेज में पढ़ती है और बेहद नफ़ासत पसन्द हैं !"

"जी हाँ ! आपने गौर नहीं किया होगा। वह उम्दः खुशबू की प्रेमी है। वह पेरिस की उम्दः से उम्दः खुशबूयें इस्तेमाल करती हैं। मगर मैं जानता हूँ उसकी मन पसन्द खुशबू क्या है इव्हनिंग इन पेरिस ! इस खुशबू पर तो वह जान देती है। आप ऐसा कीजिये कि कल बाजार से वही खुशबू लाइये उसे अपने रुमाल पर लगाइये और रुमाल को जेब में रखकर गली के नुक्कड़ पर उसका इन्तजार कीजिये। जब वह कॉलेज जाने के लिए गली से

निकले तो आप उस की तरफ़ देख कर मुस्कराइये। हो सकता है वह मुस्कराये, हो सकता है न मुस्कराये, बहरहाल आप उसकी परवा मत कीजिये। आप मुस्कराकर उसके पास से आगे निकल जाइये और और आगे निकल कर कुछ कदम चल कर अपना रुमाल जेब से निकाल कर जमीन पर गिरा दीजिये; इस तरह गिराइये जैसे आपने जानबूझ कर रुमाल नहीं गिराया है बल्कि खुद गिरा है। रुमाल को गिरता देखकर मिस बिमला यकीनन् आप का रुमाल उठा लेगी।

और खुशबू उनके नथुनों में पहुँचेगी, वह आपको आवाज देगी। आप जरा ठिठक कर खड़े हो जाइये, मुड़कर देखिये, तो आपका रूमाल उसके हाथों में होगा, आप थैंक्यू कह कर उन के हाथ से रूमाल ले लीजिये। नफासत पसन्द भद्र महिला जरूर आपसे सवाल करेगी–क्या आपको भी इव्हनिंग इन पेरिस पसन्द है? इस पर खुशबूओं पर बहस चल निकलेगी और रूमाल की खुशबू बढ़ते–बढ़ते दिल की खुशबू तक पहुँच सकती है।"

मैंने खुशी शे उछल कर मदन गोपाल जी का हाथ पकड़ लिया और उसे चूमते हुए बोला–"वाह! वाह! उस्ताद! क्या तरकीब बताई है। मैं कल सुबह ही इस पर अमल करूँगा।"

"और कल शाम ही को मुझे इसकी रिपोर्ट दे देना। फिर मैं तुम्हें आगे की तरकिब बताऊँगा।"

दूसरे दिन शाम को जब मैं मदन गोपाल के घर पहुँचा, तो उन्होंने मेरे चेहरे ही से अन्दाजा लगा लिया कि कहीं फिर कोई न कोई गड़बड़ है। मेरे अन्दर आते ही उन्होंने पूछा —

"क्या हुआ? मुस्कराना भूल गये थे?"

"जी नहीं! ...... मुस्कराया तो था— मगर मालूम नहीं क्या हुआ। सम्भवतः कुछ ऐसी झिझिकती डरती हुई रोनीसी मुस्कारहट होगी कि उसे देखकर बस बिमला को गुस्सा आ गया उन्होंने नफरत से मुँह फेर लिया और जल्दी-जल्दी आगे निकल गयी!"

"मूर्ख! मैंने तुम्हें आगे निकल जाने को कहा था।"

"सुनिये तो—वह इतने तेज कदम उठाने लगी कि मुझे उनका पीछा करना दुश्वार हो गया...खैर साहब! जिंदगी में—मैं भी इस प्रकार तेज काहे को चला था, किसी न किसी तरह भाग दौड़ कर हाँफते–काँपते उनके सामने से निकाल गया और फिर बड़ी होशियारी से मैंने अपना रूमाल भी जमीन पर गिरा दिया और उन्होंने रूमाल को गिरते देखकर उसे उठा भी लिया।"

"शाबाश!" मदनगोपाल जी मेरी पीठ ठोक कर बोले– "शबाश!!"

"सुनिये तो—उसके बाद जो उन्होंने मेरे रूमाल को एक क्षण के लिए देखा तो जल्दी में बुरा–सा मुँह बनाकर उसे जोर से पास की गन्दी नाली में फेंक दिया।"

"ऐं! वह क्यों? तुमने खुशबू नहीं लगायी थी?"

"खुशबू तो लगायी थी, जनाब! मगर दरअसल मुझ में यह बुरी आदत है कि मैं रुमाल ही में थूकता हूँ और उसी से अपना बलगम साफ़ करता हूँ। मिस बिमला के हाथ में मेरा बलगम लग गया था... उसपर उन्होंने मुझे वह गालियाँ सुनायी—गन्दा—मूर्ख! नालायक, बदतमीज! और जाने क्या-क्या कहा— मैं तो वहाँ से भाग आया!"

मदनगोपाल ने अपना माथा पीट लिया। मुझे क्या मालूम था, तुम अपने गन्दे रुमाल में खुशबू लगाओगे, अनाड़ी हो न आखिर! खैर! अब क्या हो सकता है, मिस बिमला तो तुम्हारे हाथ से गयी। अब तुम जिन्दगी भर उस से प्रेम नहीं कर सकते..."

मैंने मदनगोपालजी के पैर पकड़ लिये– "नहीं ऐसा मत कहिये, मैं तो प्रेम करुँगा, भगवान के लिए मेरी हालत पर रहम कीजिये, मुझे प्रेम करना सिखा दीजिये।" मदनगोपालजी ने जब मुझे इस तरह गिड़गिड़ाते देखा तो उन्हें शायद मेरी दशा पर रहम आ गया, अपने गुस्से पर काबू पाकर बोले–"खैर! कोई बात नहीं है, अब मैं प्रेम करने की तीसरी तरकीब बताता हूँ।" "प्रेम की तीसरी तरकीब? जल्दी बताइये, जल्दी बताइये, मेरे उस्ताद! और तरकीब के इस्तेमाल की विधि भी बताइये!"

मदन गोपाल जी बोले — "यह प्रेम की तीसरी तरकीब है। इसे शक्तिशाली प्रेम कहते हैं।"

"शक्तिशाली प्रेम?"

"हाँ! इसमें मनुष्य को अपनी बुद्धि से कोई काम नहीं लेना पड़ता। तुम्हारे लिये यह तरकीब सब से उत्तम रहेगी!"

"जल्दी बताइये, जल्दी बताइये, मेरे माननीय गुरु! मेरे पूज्य उस्ताद!"

इसमें अधिक चिन्ता की जरूरत नहीं है, एक लड़की छाँट लो, जो तुम्हें सब से ज्यादा पसन्द हो। उसे अकेला कहीं देख लो। फिर उसके पास जाकर बड़ी दिलेरी से उसका हाथ पकड़ लो। अगर वह हाथ छुड़ाये तो





तुम फ़ौरन् उसे दोनो हाथों से पकड़ लो। अगर वह इस पर भी तुम्हारी जकड़ से निकल जाने की कोशिश करे तो उसे जोर से अपने सीने से चिपका लो। इस पर वह अगर चीखे चिल्लाये तो अपने होंठ उसके होंठों पर रख कर उसका मुँह बन्द कर दो। इस पर भी अगर वह बाज न आये और अपने बचाव की कोशिश करे तो उसे जोरसे एड़ी मार कर धम्म से जमीन पर गिरा दो—बस प्रेम तुम्हारा कामयाब है। क्योंकि हर औरत मर्दानगी को पसंद करती है!"

क्या यह बताने की जरुरत है कि मैंने यह तरकीब भी आजमा देखी और अब मैं यह मजनून जेल की सलाखें के पीछे से लिख रहा हूँ। मैं अपने प्रेम में असफल रहा हूँ। लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी। मेरा इरादा है कि मैं छः माह की यह कैद काट कर फिर अपने उस्ताद की खिदमत में हाजिर हूँगा, और उनसे प्रेम करने की चौथी तरकीब जरुर पूछूँगा। ★

रघुकुल रीत यही चल आई बापसे बेटा बने सवाई !

बेढब बनारसी

आप का असली नाम प्रा. कृष्णकुमार गौड है। आप हास्यरसात्मक कविताएँ और ललित लेख लिखनेवाले एक ऊँचे दर्जे के साहित्यिक हैं। आप दीपावली में अक्सर लिखते आये हैं।

कहते हैं जब मेरा शरीर धरती पर गिरा, आँधी चल रही थी, पानी बरस रहा था और उसी समय ओले, पेड़ तथा मकान भी गिरे। यह लोगोंकी जबानी सुना क्योंकि ऐसा जान पड़ता उस समय मुझमें न सुनने की शक्ति थी न गुनने की। लोगों का कहना है कि मेरे पिताने उस समय कहा था यह लक्षण ऐसे हैं कि मेरा लड़का नेपोलियन या हनिबल होगा। भोजन के स्वाद का आभास उसकी सुगंध से ही लग जाता है। और नयी दुलहिन के भविष्यका पता इससे चलता है कि वह स्नानागारमें कितने घंटे लगाती है। होनहार मनुष्य का भविष्य भी उसके शैशव के खेल–कूद तथा बातचीत से लग जाता है। जब मैं दो सालका था तब मेरी दाई ने मुझे गोद उठाने में देर की और इस लिए मैंने उसकी सुंदर सुडौल काकातुआ की ठोरसी नाक को दाँतसे काट ली। नयी कविता के प्रतीक के समान इसे भी लोगों ने प्रतीक ... सिंबालिज्म ... समझा। इसका अर्थ यह माना गया कि यह व्यक्ति सदा ऊँची चीजों पर ध्यान रखेगा। इस के आदर्श उँचे होंगे। मैं बड़े प्यार से पाला गया। मेरी शरारतों में लोगों को उसी प्रकार रस मिलता था जैसे धनवानों की गाली में। अपनी शैशवावस्था की अनेक घटनाएँ ऐसी हैं जिन्हें सुनकर भले आदमी क्रोधित होंगे। दो–एक बताता हूँ। एक बार मेरे फूफा मेरे यहाँ आये थे। उनका रंग कुछ वैसा ही था जैसा रोटी पकाने के बाद तवेका हो जाता है। हम सब लोग एक साथ भोजन करने बैठे। हमें मक्खन में भात सानकर खिलाया जाता था। एक ग्रास जब हमारे मुख में रखा गया तब मैं ने मक्खन चूस लिया और चावल अपने फूफा के मुँह पर फू कर के उड़ा दिये। वह ऐसा भला लग रहा था जैसे काले मखमल पर मोती बिखरा हो। इस कृत्य पर लोग ऐसे मुसकराये मानो मैं ने हास्य-रस का अनुपम अनुभव किया हो। इसी प्रकार जब मैं छठीं कक्षा में पढ़ता था। स्कूल में चित्रकारी सिखायी जाती थी। फल फूल बनाकर उन में रंग भरा जाता था। मेरा ब्रश खो गया था। मेरे चाचा सोये थे रात में मैं ने उन की मूँछे कैंची से कतर लीं और उस से ब्रश बनाया। यद्यपि उस अनुभवहीन काल में भी मुझे ऐसा लगा कि मेरे चाचाजी अपनी मूछों की देख-रेख नहीं करते क्योंकि उनकी मूँछों के बाल आवश्यकता से अधिक कड़े थे और ब्रश योग्य भी न थे। मेरे चित्र बिगड़ गये। इस पर भी घरवालों ने यही कहा मेरे चाचा से बहुत बेखबर आप होते हैं। इस बालक की सूझ बहुत मौलिक है।

स्कूल में मैं क्लाइव भी था शिवाजी भी। मेरे स्कूली जीवनका वर्णन यदि किया जाय तो ऐसा उपन्यास हो जाएगा जिस पर राज्य सरकार से लेकर भारत सरकार तक पुरस्कार ही पुरस्कार अर्पित करेगी। कोई पुस्तक ऐसी न थी जिसकी एक दर्जन से कम प्रतियाँ साल में मेरे लिये न खरीदी जाती। पिताजी मन में क्या कहते नहीं जानता किंतु दूकानदार मुझे आशीर्वाद ही देता था। यह नहीं कि मुझ में बुद्धिका अभाव था। चाहे जो विषय रहा हो, जो कक्षा रही हो, मैं कभी किसी में असफल नहीं हुआ। हाँ, घर पर मास्टर पढ़ाने अवश्य आते थे और पुस्तकों का ज्ञान मेरे दिमाग में उसी प्रकार ठूस देते थे जैसे यात्रा के समय ट्रंक में कपड़ा ठूसा जाता है। और उसी समय मुझे इतना ज्ञान हो गया था कि आजकल की पढ़ाई तथ्यहीन है। विनोबाजी जो आज कह रहे हैं मैं उसे उसी समय जान गया था। इस लिये जो एक साल पढ़ा उसे दूसरे साल याद न रखा उसी भाँति जैसे एक बारका खरीदा रेलका टिकट फिर फेंक दिया जाता है। स्कूल में कई बार निकाले जाते–जाते बचा। एक बार गणित के अध्यापक के घर पर मैंने तार दे दिया कि मोटर से लड़ जाने के कारण उनका देहावसन हो गया और भेजनेवाले के नाम के स्थान पर प्रिंसिपल साहब का नाम दे दिया। अध्यापक महोदय





अनुक्रमणिका

के घर के लोग सदल-बल घर से पहुँच गये। जब पता लगाया गया मेरी लिखावट पहचानी गयी। मुझ से पूछा गया तो मैंने कहा- 'मैं यह जानना चाहता था कि इन के परिवार वाले इन से कितना प्रेम करते हैं।' यों तो निकाल दिया जाता परंतु पिताजी के बहुत कहने से केवल पचीस रुपये जुरमाना ले कर बच गया। इस बार भी नाराज हुए। उन से मैं ने कहा, 'मैं देखना चाहता था कि सचमुच तार जो दिया जाता है वह पहुँचता है कि केवल यों ही कहा जाता है। मैं तो इस प्रकार प्रयोग कर शिक्षा ग्रहण कर रहा था।'

किंतु मैं हाईस्कूल पास ही हो गया। जनता तथा लोकतंत्र का मैं सदा से भक्त रहा हूँ इसलिए जनता की श्रेणी अर्थात् तीसरी श्रेणी में मेरा परीक्षा-परिणाम निकला। इस से मेरे पिता को दुख हुआ। उन्होंने आशा ऊँची बना रखी थी। कुछ लोगोंने कहा इन का कालेज में पढ़ना बेकार है। राजनीतिक पंडितों की भाँति इस संबंध में मेरा मत तटस्थ था। न पढ़ना मेरे लिए वैसा ही था जैसा कालेजमें पढ़ना। पिताजी ने सोचा संभव है आगे अच्छा परिणाम निकले, मेरा नाम कालेज में लिखाने का निश्चय हुआ। हम लोग आगे के बारे में सदा सुंदर ही कल्पना करते हैं। उस समय कालेज में नाम लिखाना उतना ही सरल था जितना आज-कल नेता बनना। मेरे पिता ने कहा गणित लो, इंजीनियरी पढ़ाएँगे। मैं ने कहा मैं बायलाजी लूँगा, डाक्टर बनूँगा। यदि वर्ष में पचास रोगी भी मरे तो आबादी की समस्या कुछ हल करके देश तथा राष्ट्र की सेवा करूँगा।

उस जमानेमें अंग्रेजी में पढाई होती थी। सहशिक्षा होती थी। मेरी पहली मुठभेड़ बोटनीके प्रोफेसर से हुई। वह 'पाम' विषय पर लेक्चर दे रहे थे। अफ्रिका से लेकर भारत तथा अरब इत्यादि देशों में जितने प्रकारके पाम होते हैं सब की उन्होंने विशेषताएँ बतायी। सैकडों किस्में, उनके परिवार, उनकी रहन-सहन की बातें उन्होंने बतायीं। लेक्चर समाप्त होने पर उन्होंने कहा – 'कुछ पूछना है?' मैंने खड़े होकर पूछा– 'सर, हैव यू सीन ए रेड पाम?' '[क्या अपने लाल पाम देखा है?]' प्रोफेसर महोदयने पाँच सेकंड कुछ सोचकर कहा— 'नो, देयर इज नो रेड पाम [लाल पाम नहीं होता]।' मेरी बगल में एक लड़की बैठी थी। मैंने झट उसका हाथ उठाकर उसकी हथेली प्रोफेसर साहब की ओर दिखा दी! कक्षा हँस पड़ी और वह लड़की सिर से पाँव तक रेड पाम हो गयी। घंटा बज गया। प्रोफेसर साहबने कहा, 'मेरे कमरे में मिलो।' पहला वाक्य उनका था — 'तुम विद्यार्थी होने के योग्य नहीं हो। कल से मेरी कक्षा में न आना।' जान पड़ता है प्रोफेसर साहब बहुत असंतोषी थे। उन्हें इससे संतोष नहीं हुआ। उन्होंने प्रिन्सिपल से भी शिकायत की। प्रिन्सिपलने मुझे बुलाकर कहा — 'तुम बदमाश भी हो, अशिष्ट भी। कलकी तुम्हारी हरकत बहुत बेजा थी।'

मैं समझता हूँ 'बहुत बड़ी नीति यह है कि जब कोई काम निकालना हो तब चापलूसी करनी चाहिये और जब कोई आपत्ति अपने ऊपर आती हो तो क्षमा माँगनी चाहिये। मैंने क्षमा माँगते हुए कहा— 'मैंने यह न समझा था कि इसमें अभद्रता है।' प्रिन्सिपल साहब मुस्कराये। बोले— 'इस बार क्षमा कर देता हूँ। आगे कोई ऐसी घटना होगी तो निकाल दिये जाओगे।'

मैं जिस प्रकार महीने में एक बार बाल कटवाता था उसी प्रकार महीने में एक बार कालेज से निकाले जानेकी धमकी मिलती थी। यह मेरा साधारण टाइमटेबल हो गया था। पिताजी समझते थे कि उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। ठीक वैसेही जैसे किसान समझता है जब गेहूँके पौधे पर एक फुट पानी चढ़ जाता है! दो साल कालेज में ऐसे रहा जैसे आंखों में कोयले का कण रहता है। पास हो जानेपर सब को प्रसन्नता हुई। पिताजी को, कॉलेज के अधिकारियों को भी। मैं तो स्थितप्रज्ञ था। प्रिमेडकल टेस्टमें मैं कैसे पास हुआ यह ईश्वर ही जानता है। खैर... मैं डाक्टर हो गया। पिताजी ने दावत की। लखनऊ में क्लिनिक स्थापित किया गया। उत्तर भारत में डाक्टरी के लिए लखनऊ का वही स्थान है जो दाँतों में मोलर का। पिताजी ने अनेक शिक्षाएँ दीं। जो उन्हें जानेके दो सेकंड बाद ही भूल गया। नई डाक्टरी चलना और दलदल में मोटारकार चलना समान है। मेरे लिए सिनेमा देखना छोड़ना वैसा ही था जैसा काँग्रेसी के लिए खद्दर पहना छोड़ देना। इसलिए संध्या को डिस्पेंसरी में बैठ नहीं सकता था। दिनको सोना भी वैसा ही अनिवार्य था जैसा विद्यार्थी के लिए सिगरेट पीना। सबेरे समय देता था। मेरा पहला रोगी एक लड़की थी। उसे खाँसी की शिकायत थी जो महीनों से थी। दो-तीन दिन लगातार आनेके बाद मैंने बातों-ही-बातो उससे कह दिया कि आजकल तो आपरेशन से स्त्रियाँ पुरुष बनायी जा सकती हैं; तुम चाहो तो मैं तुम्हे पुरुष बना सकता हूँ। उसने अपने घर जाकर यह बात कही। उसके पिता, भाई तथा महल्ले के कुछ लोग हाकी स्टिक, तथा डंडे लेकर मुझे मारने के लिए आये। मैंने कहा... मैंने तो आपकी भलाई के लिए कहा था। शादी के और झंझट दहेजकी कठिनाई से आप बच जाएँगे। आपको नापसंद है तो जाने दीजिये। कहिये, आप लोगोंको भी स्त्री बना दूँ। उन्होंने ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते हुए राह ली जिन्हें हम साधारणतः कोशोंमें नहीं पाते।

एक दिन वैसे ही मैं अगाथा क्रिस्टीका एक उपन्यास पढ़ रहा था। उसी समय एक रोगी आया। उसे ज्वर आ रहा था। उसका आना बहुत खला। उपन्यास में जासूस उस कमरेकी जाँच कर रहा था जहाँ हत्या हुई थी। बहुत रोचक था। मैंने सोचा ज्वर चाहे टाइफायड हो, मलेरिया हो, रेमिटेंट हो पहले तो कुछ यों ही चला देना चाहिये फिर दो-चार दिनों के बाद देखा जायेगा। जिसने डाक्टरी आरंभ की होती है वह अपने रोगी को तुरंत नीरोग नहीं कर देता। मैंने नाड़ी देखी और पुरजा लिख दिया। रोगी लेकर उसे चला गया। पंद्रह मिनट बाद वह रोगी और एक दवाखाने का कंपाउंडर मेरे पास आया। कंपाउंडरने पूछा, यह क्या लिखा है आपने? पुरजा यों था :—

कुनेन सल्फ	५ ग्रेन
सोडा बाइकार्ब	५ ग्रेन
गन पाउडर	५ ग्रेन
सिरप पिस्टल	१ आउन्स
अकुआ	क्यू एस

इत्यादि इत्यादि ...

वह तो कहिये डाक्टर लोग ऐसा लिखते हैं कि साधारण आदमी उसे पढ़ नहीं सकता। जितना ही बड़ा डाक्टर होता है उतना ही अस्पष्ट उसका पुरजा होता है। मैंने कहा, 'हाँ, यह दवा महँगी है। बदल देता हूँ। और दूसरा पुरजा लिख कर रवाना किया। मेरी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी कि इससे बढ़कर मूर्ख चिकित्सक भारतमें नहीं है। कुछ लोगोंको संदेह लगा कि मैं पास नहीं हूँ, झूठी डिगरी है। मैं यदि कुछ दिन और लखनऊमें डाक्टरी करता तो अपनी सेवा आगे को सरकारी जेलको जरूर ही अर्पित करनी पड़ती।

सब सामान बेचकर मैं घर पहुँचा। पिताजी ने जब देखा और यह सुना तो रोने लगे। उन्होंने कहा—'कुछ नहीं तुम यहीं दवाखाना खोलो। जो कुछ भाग्य में होगा यहीं मिलेगा।' छोटेसे उस स्थानमें दवाखाना खोलना और तालाब में सबमेरीन चलाना समान था। न उस नगरमें सिनेमा, न हजरतगंजसा घूमनेका बाजार। पर क्या करता? बाहरके लिए वह पैसा देने को तैयार न थे। मैं तो बंबईमें कार्य करना चाहता था। वहाँ डाक्टरीके लिए क्षेत्र विस्तृत है। क्या करता वहीं डाक्टरी आरंभ की।

मैंने अब पुरजा लिखना छोड़ दिया था। इसलिए अब कोई भूल होने की संभावना ही न थी। केवल पेटेन्ट दवाइयाँ ही लिखा करता था। उसकी शीशियों पर लिखा भी रहता है कि किस रोग को दवा है, मात्रा भी नपी तुली रहती है। इसी अवसर मेरी छोटी मौसी आयीं। उन्हें कई महीनेसे सिरमें चक्कर आ रहा था। समझा, घरका डाक्टर है, ठीक इलाज होगा। उनकी अवस्था कुल पचीस सालकी थी, मेरी माताकी सबसे छोटी बहन थीं। उन्हें मैंने ध्यानसे देखा। परीक्षा की। खानेकी दवा दी। सोचाकि केवल खानेकी दवासे शीघ्र नीरोग न हो सकेगी। सिरमें तेल लगाना भी, मैंने समझा, ठीक होगा और वह औषधियोंसे बना होना चाहिये। मैंने विशुद्ध चमेलीका तेल बाजारसे मंगवाकर अनेक औषधियाँ उसमें मिलायीं और उनसे कहा कि इसका भी सेवन कीजिये एक सप्ताहमें ठीक हो जायेगा। रोगीको नीरोग होनेकी अवधि अवश्य बता देनी चाहिये। यदि उतने समयमें ठीक न हो तो अनेक कारण बताये जा सकते हैं। पता नहीं जो औषधियां मैंने तेल में मिलायी थीं उनका क्या प्रभाव पड़ा कि दूसरे ही दिन जब वह सोकर उठीं तो उनके सिरके सारे बाल रातोरात गिर पड़े। उनका सिर ऐसा जान पड़ा जैसे जटा निकाला हुआ नारियल। घरमें कोहराम मच गया। मौसी जी तो ऐसा विलपने लगीं जैसे कौशल्या दशरथके मरने पर। पिताजी ऐसे क्रोधित हुए मानो शिवजी कामको भस्म करने को हैं। माताजीके पास पिस्तौल न थी, नहीं तो यह घटना लिखनेका अवसर न आता। मैं उसी दिन घरसे भाग गया। अब कहानी लिखता हूँ। ★

'बाप भला ना भैया, भैया ! सबसे से भला रुपैया ! !

फिक्र तौंसवी

आप हिंदी-उर्दू के एक समर्थ साहित्यिक हैं। हालमें आप 'दैनिक मिलाप' के सम्पादक हैं। आप अपने लेखसे हरसाल दीपावली सजाते हैं।

"ओ सेठ ! तड़ा मारो !" एक सख्त आवाज गूंजी, मगर मैं उसी प्रकार चुपचाप चारपाई पर पड़ा उस काले बादल की तरफ देखता रहा जो दूर, सामने पहाड़ी चोटी पर अपनी टोड़ी रखे, ऊँघ रहा था— 'यह बादल एक ऐसी विरहन है' मैं सोच रहा था, जो अपनी छत पर बैठी अपने पिया की राह तक रही, है राह तकते तकते वह हार गयी है, आँखें मुंद गयी हैं और वह पुरानी यादों में खो गयी है। यूँही पिया आएँगे, मैं बरस पड़ूँगी और खुशी के आँसुओं से उन का सारा दामन भिगो दूँगी।'

"सेठ तड़ा मारो ! उठो हम को सौदा दो गुड़, तम्बाकू, कपड़ा।" दीनू बलोचने अपनी बैसाखी की नोक पभोते हुए मुझे फिर ललकारा।

मैं ने कहा, "दीनू, सौदा खत्म हो गया तड़ा मारो ! याने मेरा मतलब है, अल्लाह तुम पर मेहबान हो, जाओ अपनी झुप में जाकर आराम से सो जाओ, सौदा नहीं है। अल्लाह कसम नहीं है।"

मगर दीनू को अल्लाह की नहीं बल्कि गुड़ की जरूरत थी। इसलिए वह बोला, "ओ सेठ ! क्या करता है, हम उधार नहीं लेंगे, खोटा पैसा देंगे–यह देखो" यह कह कर उसने अपनी चमड़े की हिमानी उलट दी और छन छन करते हुए रुपये चारपाई पर बरसा दिये।

रुपये देख कर भी मेरा दिल न पसीजा। विरहन को रुपये की नहीं, पिया की प्रतीक्षा थी। चुनांचे मुझे आज भी याद है कि दीनू निराश लौट गया था और इस दुष्ट ने मेरे बाप से मेरी शिकायत कर दी जिसपर मेरे बाप महोदय ने निम्नलिखित फैसले किये।

१ मेरा निचला दाँत तोड़ दिया (ऊपर वाला दांत जरा सख्त था।

२ मेरा वह लिखा हुआ गीत अग्नि की आहुति बना दिया गया जिस में विरहन के आँसू चित्रित थे।

३ घोषणा कर दी कि जिस दिन किताब पढ़ते देखे गये, उस दिन रोटी मिलेगी, सब्जी नहीं।

४ डण्डे सीखो, मुनीमी सीखो, गीत मत लिखो (अर्थात् इन्सान बन कर रहो)

यह उन दिनों की बात है जब सुलेमान पर्वत के पहाड़ी कबीलों में हमारी एक भारी भरकम दुकान थी और पिताजी को शक था कि मैं उन का एक बुद्धिमान बेटा हूँ। उन का यह शक पन्द्रह बरस बाद जाकर सही साबित हुआ जब मैंने पिताजी की दुकानदारी के खिलाफ एक सुन्दर व्यंग लिखा और मुझे अखबार की तरफसे २५ रुपये का पुरस्कार दिया गया। मेरे पिता जी ने अपने शक का यह लाभ उठाया कि मुझे अपने साथ दुकान पर ले गये, "बेटा, रघुकुल रीत यही चली आयी सौदा बेच कर करो कमाई।"

अर्थात् उन्होंने तराजू के एक पलड़े में मेरी जहानत धर दी और दूसरे पलड़े में गुड़ की भेली और कहा, "अब इसे तोलो और बताओ इस गुड़ की भेली से हमें कितने पैसे का लाभ" हुआ परन्तु यह एक अजीब मुसीबत थी कि जब भी मैं जहानत के बाट से गुड़ की भेली तौलने लगता तो अचानक गुड़ की भेली उड़ जाती और उस की बजाये वही काला बादल पलड़े में आकर टोड़ी रखे बैठ जाता और पल्डा यकायक भारी हो जाता। और पिताजी की आवाज गरज़ती, "अबे गधे, देखता नहीं गुड़वाला पलड़ा फरश को छू रहा है और बाट वाला पलड़ा ऊपर उठ गया है !"

मैं घबरा कर कहता, "क्या करूँ पिताजी, गुड़वाले पलड़े में बादल आकर बैठ गया है इस लिये गुड़ भारी हो गया है।"

"तो, छोड़ो मुझे दो तराजू।' तुम तो दुकान का दीवाला निकाल के रख दोगे।' पिताजी बिलकुल ज्योतिषी थे। क्योंकि बाद में सचमुच दुकान का दीवाला निकल गया था। गुड़ की भेलियाँ, तंबाकू की पत्तियाँ थान के गज, दीनू बलोच के रुपये – हर चीज को मैं गीत के बोल बना देता था। बाद में पता चला कि गीत के बोल न बैंक से भुनाये जा सकते हैं, न उन से सट्टा खेला जा सकता था। अतः पिताजी जब स्वर्ग सिधारे (क्योंकि उन के मरने के बाद सारा कुटम्ब उन्हें स्वर्गवासी कहता था) तो विरसे में मेरे लिये काफी कर्ज छोड़ गये और मरते समय माँ को आज्ञा कर गये थे, "अपने बेटे से कहना कि यदि उस में थोड़ा भी कुल अभिमान बाकी है तो यह कर्ज चुका दे।"

अतएव मैं ने बाद में महाजनों से कह दिया, "खानदानी गौरव तो मुझ में काफी है, मगर रुपये नहीं हैं। बल्कि कुछ कविताएँ, कुछ नाटक और कुछ कहानियाँ हैं। इन्हें लेकर यदि मेरा खानदानी अभिमान बचा सकते हो, तो बचा लो।"

परन्तु महाजन बुद्धिमान निकले, रो–धो कर चुप हो गये।

मैं चार बरस तक बिजनसमैन रहा। दर-बलोच ग्राहक मुझे सेठ कहा करता, मगर सेठ फिक्र तौंसवी की हालत यह थी कि वह हमेशा बहीखातों के टोटल ग़लत बना देता —आज तक यही हाल है। जब भी कोई टोटल बनाता हूँ गलत हो जाता है ! उन दिनों एक और खराबी भी थी कि मेरे अन्दर मानवता भी बड़े जोरों पर थी। कोई बलोच अगर गिड़गड़ा कर कहता कि मेरी बच्ची मरणशैय्या पर पड़ी है और दवाई खरीदने के लिए मैं ने अपनी बकरी बेच दी है तो मैं पिघल जाता और उसे उधार में दवाई देकर कहता, "यह ले जाओ, बकरी मत बेचो बच्ची दूध कहाँ से पियेगी"

अनुक्रमणिका

बाप लाख समझाता कि बलोच झूठ बोलकर तुम्हें ठग गया है उसने बकरी बिलकुल नहीं बेची। उसके पास बड़ा धन है मगर मेरी समझ पर वैसे ही पत्थर पड़े रहे थे, आजतक पड़े हुए हैं; यह मानवता मुझे बेवकूफ बनाये हुए है।

असलमें मुझ पर यह भूत सवार था कि सृष्टि दुखी है इसका भला किया जाये। इसलिये मैं जब की अनाज का एक मन ब्लैक मार्केट में बेचता तो सृष्टि ठंठी सॉंस भरने लगती; मैं पूछता "अरी पगली, ठंडी सॉंस क्यों भरती हो।" सृष्टि कहती, "बस यूँही जी चाहता है कि ठंडे सॉंस भरूँ।"

मैं समझ जाता कि सृष्टि झूठ बोल रही है मैं सृष्टि के इस शोकवादी स्वर पर तड़प उठता और गीत लिखने बैठ जाता, और सृष्टि की ठंडी सॉंसे बन्द हो जाती।

और मैं लाप जाता कि सृष्टि को मेरा अनाज बिलकुल पसंद नहीं, मेरा गीत पसंद है। मगर पिताजी कहा करते, "बेटा, नहाने के लिए तौलिया चाहिये, और तौलिये के लिए पैसे और पैसे के लिए अनाज की ब्लैक। सृष्टि को ठंडी सॉंस भर दो। यह ठंडी सॉंस एक धोका है इसका ऐतबार न करो। व्यापारी पुत्र तो अपने बाप का एतबार भी नहीं करते!" न जाने आज-कल वह तौलिया कहां है जो मेरे बाप ने अनाज की ब्लैक कर के खरीदा था। शायद वह धजी-धजी हो कर खाक में मिल चुका हो। मगर था बड़ा खूब सूरत तौलिया! आज भी जब मेरी बीवी कोई तौलिया खरीदा कर लाती है और कहती है कि देखो, यह तौलिया पॉंच रुपये में खरीदा है तो मैं फौरन उसे कहता हूँ — "सुनो डार्लींग, कल रात हमारी पड़ोसन के रोने की आवाज आ रही थी, क्या बात थी?"

"कुछ नही, उसकी बीवी घर से भाग गयी।"

हॉं तौलिया, चाहे पॉंच में आते या छः में। मुझे इस से कोई दिलचस्पी नहीं। मुझे आँकड़ो से नफरत है। मुझे तो केवल इस बात से दिलचस्पी है कि पड़ोसन की बहू क्यों भाग गयी। पड़ोसन का पति घड़ियों की स्मगलिंग का बिज़नेस करता है। उनने मुझे डेढ़ सौ रुपये की एक घड़ी दी थी जिस में घिसे-पिटे पुर्जे डाल कर पचास रुपये मुनाफा कमा लिया था। बड़ा कामयाब बिज़नसमैन था। दो कोठियों और एक कार का मालिक था। लेकिन इस के बाव-जूद उस की बहू भाग गयी। घड़ी बन्द हो जाये या किसी की बहू भाग जाये उस के बैक ग्राऊंड खोजना ही अच्छा लगता है। यही अच्छा लगना मेरे बिज़नस में असफल होने का कारण हो। और यही कारण है कि वह बहू जो भाग गयी सोने के गहनों में लदी हुई थी। मगर मेरी बीवी हमेशा अपनी सहेलियों से कहती है, "मेरे पतिदेव को कॉंच की चूड़ियॉं बहुत अच्छी लगती है!"

★

सर्वं कार्यान् परित्यज्य 'दामादं' शरणं व्रज।

प्रकाश पण्डित

आप हिंदी-उर्दू के एक उत्तम कहानीकार हैं। "शाह – राह" और "प्रीत – लड़ी" इन उर्दू मासिक पत्रिकाओं के सम्पादक थे। हमारे दीपावली में हरसाल विशेष रूपसे लिखते हैं।

वह कोई सुहानी सुबह थी या सुहानी शाम, यह तो याद नहीं। अलबत्ता आज से कुछ वर्ष पहले जब बी० ए० करने के बाद मॉं-बाप की नजर में मैं नखट्टू, पड़ोसियों की नजर में आवारागर्द, मित्रों की नजर में मुँहफट और नौजवान लड़कियों नजर में बेवकूफ़ और बदतमीज था; सहसा यह रहस्य खुला कि मुझ में निम्न प्रकार की अनगिनत विशेषतायें हैं:

"मैं सजीलाएक नौजवान हूं।"

"ऐसा सभ्य और सुशील हूँ कि बड़ों के सामने ऑंख उठा कर बात नहीं करता।"

"बात करता हूँ तो मुंह से फूल झड़ते है और–" योग्य तो ऐसा हूँ कि स्वयं राज्य परेशान है मुझे कमिशनर का पद दे, मॅजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल बनाये या सीधा राज्य-सभा में ले ले।

यह कायाकल्प क्यों और किस प्रकार हुआ, इस का संक्षिप्त उत्तर यह है कि, यह कायाकल्प दामाद बनने से पहले हर व्यक्ति के साथ होता है। लेकिन दामाद बनने के बाद मनुष्य का जो कायाकल्प होता है उसे कुछ वही भाग्यवान समझ सकते हैं जिन्हें मुझ ऐसी उगती आयु में दामाद बनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका हो।

इस से पहले कि दामाद की हैसियत से मैं अपने अहोभाग्य का उल्लेख करूं, मुझे स्वीकृति – अस्वीकृति की आज्ञा दीजिये कि मेरे सम्बंध में मेरे मां-बाप, मेरे मित्रों, पड़ोसियों और नौजवान लड़कियों की राय कुछ अधिक दुरुस्त न थी। मैं एक सीधा सादा नवयुवक था, जिसे क्लर्की किस्म की मुलाजमत पसंद न थी लेकिन मेरे मां-बाप मुझे क्लर्क बनाने पर तुले हुए थे। मैं पत्र-कार बनना चाहता था: अतएव मेरे पड़ोसी मुझे समाचारपत्रों के दफ्तरों के चक्कर काटते देख कर इस निर्णय पर पहुंच गये कि मैं आवारागर्द हूँ। मित्रों में से कोई चुंगी का मुहर्रर हो गया था, कोई इन्शोरेंस एजन्ट और किसी ने पिता की आटे-दाने की दुकान संभाल ली थी। और, मुझे मुहर्रेरी की ऊपरी आय, इन्शोरेंस के लाभों और काबली चनों की गिरती हुई और दालचीनी के तेल की बढ़ती हुई कीमतों से कोई दिल-





चस्पी न थी और म समझता हूँ इस सम्बंध में यह मेरे मित्रों की अनुकम्पा ही थी जो वे मुझे केवल मुंहफट समझते थे अन्यथा उन् नौजवान लडकियों की तरह, जिन की ओर मैं ने कभी भूले से भी न देखा था और इस अपराध में बेवकूफ और बदतमीज करार आ गया था, वे मेरे नाम के साथ और भी संगीन विशेषण जोड़ सकते थे। ...और जहां तक मेरी उपरोक्त विशेषताओं का सम्बंध है, मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि यह केवल मेरे सुसरालवालों का रहस्य-प्रकटन था वर्ना मेरे दामाद बनते ही मेरी विशेषता में उन की परेशानियों का कारण न बनती।

सब से पहली परेशानी जो मेरे सास–सुसर को मेरे कारण हुई वह यह थी कि बकायदा दामाद बन जाने पर भी भरे प्लेटफॉर्म पर उन्हें दंडवत् प्रणाम करने के बजाय मैंने केवल हाथ जोड़कर नमस्ते क्यों की!

दूसरी परेशानी उन्हें दूसरे दिन हुई जब कि चार बजे सुबह उठने से मैं ने विवशता प्रकट की और उसके बाद चौदह मील पैदल और वह भी नंगे पांव चलकर उन के किसी अज्ञात बुजुर्ग की समाधि की राख चाटनेसे मैं ने साफ इनकार कर दिया। तब पहले दबी जबान से और फिर खुली जबान से मैं ने उन्हें यह कहते सुना कि उन की बेटी का भाग्य फूट गया है।

उनकी नजर में उन की बेटी का भाग्य वाकई फूट गया था क्योंकि तीसरे दिन उन्हें तीसरी असह्य परेशानी का सामना करना पड़ा। मेरे सुसर के भगवान अतः लिए हमेशा स्वर्ग का दरवाजा खुलारखे बड़ी तगड़ी किस्मत की मूछों के मालिक हैं। और अपनी बेटी यानी मेरी पत्नी को मूंछ के बाल की तरह प्रिय रखते हैं। अतः तीसरे दिन हुक्म हुआ कि मैं भी उनकी तरह मूछें रखूं और अपने माँ–बापको अपनी जगह रखने की बजाय हर जगह अपनी पत्नी को रखूं। प्रत्यक्ष है मुझ जैसा-बेकार नवयुवक जो मां–बाप के हाथों की और देखता था और जिसने केवल उन्हीं की इच्छा का पाउन करते हुए दामाद बनना स्वीकार किया था, इस तरह की मूंछें रखने को तैयार न था। इनकार किया तो मूछें को बल देते हुए बोले–"मेरी लड़की इस तरह वहां नहीं रह सकती।"

"मेरी लड़की इस तरह वहाँ नहीं रह सकती"–यह वाक्य मेरी आदरणीया सास ने भी दुहराया (भगवान उन के लिए भी स्वर्ग के दरवाजा हमेशा खुला रखे) और मांग की कि शीघ्रातिशीघ्र मैं अपनी चारों बहनों को ठिकाने लगा दूं अर्थात् उन के ब्याह कर के उन्हें उन के पतियों के घर दफन कर दूं। मैं चूंकि यह शुभ कार्य करने में भी उन दिनों असमर्थ था इसलिए विनयपूर्वक मैं ने उस समय तक उन्हें अपनी लड़की को अपने यहां रखने का परामर्श दिया जब तक मैं कमाऊ होकर मां–बाप को धत्ता नहीं बताता और थोक माल की तरह अपनी चारों बहनों के लिए चार अदद पति नहीं जुटा लेता।

यह परामर्श मैं ने उनकी परेशानियों में किंचित् कमी होने को दिया था और मेरा ख्याल था कि ऐसा दिलपसन्द परामर्श पाते ही वे प्रसन्नतावश मेरा माथा चूम लेंगे। लेकिन मेरा माथा चूमने की बजाय उन्हों ने वह 'हो-हल्ला' मचाया मानो मैं ने परामर्श न दिया हो, उन की सदासुहागन बेटी के माथे का सिंदूर पोंछ दिया हो!

मे और इस प्रकार की उनकी अन्य परेशानियां मेरा विचार था, मेरे कमाऊ होने, मेरी बहनों के ठिकाने लगने और माँ–बाप से अलग घर बसाने पर दूर हो जायेंगी; लेकिन अफ़सोस! मेरा यह विचार भी केवल विचार ही निकला। उन की परेशानियों में और दामाद के रूप में मेरी असफलताओं में वृद्धि पर वृद्धि हो रही है।

एक महानुभाव ससुर साहब का परवाना लेकर आते हैं कि तुम इन्हें नहीं जानते। जानने की जरुरत भी नहीं क्योंकि मैं उन्हें जानता हूँ। जरुरत केवल इस बात की है कि यातायात विभाग में इन का जो काम अटका हुआ है, अपने दफ्तर से छुट्टियां लेकर इनका वह काम करा दो! और इन का खूब-खूब सत्कार करो-दो। आज्ञानुसार मैं अपनी-सी कर गुजरता हूँ लेकिन मेरे यहाँ दो–तीन या चार महीनों के संक्षिप्त–से निवास के बाद जब वे भद्रपुरुष वापिस जाते हैं तो मेरी पत्नी के नाम सास का अत्यन्त शोकपूर्ण पत्र आया है, 'हाय! यह हालत है तुम्हारी कि नन्हे–नन्हे बच्चों को तुम्हे अपने हाथ से नहलाना पड़ता है।'

बहन की दिलजोई के लिए दो अदद साले साहब आते हैं और आते ही संयुक्त रूप से बहन की बजाय पड़ोस की एक लड़की की दिलजोई करने लगते हैं। नौबत दंगे तक आ जाती हैं और किसी प्रकार बीच–बचाव करके मैं उन्हें सुरक्षित रूपसे वापस भेजना देता हूँ। लेकिन उन के वापस पहुँचते ही पता चलता है कि लोक–लाज नाम की चीज मुझे छू तक नहीं गई। मुझे अपनी इज्जत का ख्याल है न खानदान की इज्जत का और पत्नी के संगे–सम्बंधी तो मुझे एक आँख नहीं भाते!

"हम से ऐसा नहीं समझते थे" मेरी सास जब भी यहाँ आती हैं; अपनी बेटी की दयनीच दशा पर आँसू बहाते हुए यह वाक्य कहती हैं।

"हम इसे ऐसा नहीं समझते थे" मेरे ससुर भी जब यहां आते हैं तो अपनी बेटी की दयनीय दशा पर मूंछें मरोड़ते हुए कहते हैं, "हम इसे ऐसा नहीं समझते थे।" मेरे सास-ससुर के सम्बंधी या मेल-मुलाकाती जब यहां से हो कर उन के यहां जाते हैं तो उनकी बेटी की दयनीय दशा पर शोक प्रकट करते हुए वे भी यही वाक्य कहते हैं। और मैं कहता हूं........मैं कह ही क्या सकता हूं।"

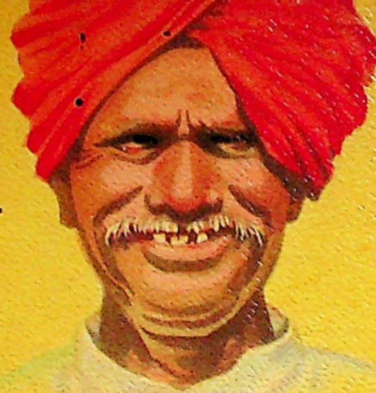




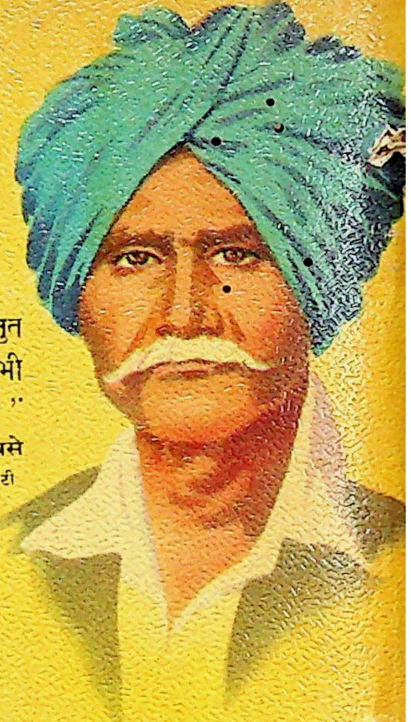
अनुक्रमणिका

"१० वर्ष पहले मैंने अपनी किर्लोस्कर एंजिन खरीदी थी वह अभीतक नया एंजिनकी तरह काम कर रही है...."

–बिन्जराज शिवलाल मारडा
वडगांवरासाई







किर्लोस्कर एंजिन द्वारा प्रस्तुत वर्षों की सेवा में मुझे कभी कोई शिकायत नहीं"

–सदाशिव मुरप्पा सुरवसे
अकोले काटी

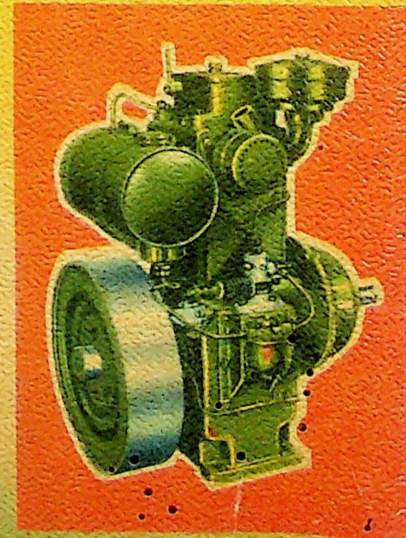
किर्लोस्कर एंजिन से मेरी पैदावार तिगुनी बनी

–शिवराया धारप्पा गुगरे
कचल

"एंजिन के असली परीक्षक किसान ही हैं"

"कारण, इन्हीं की तीखी नजरों के सामने ये एंजिन दिनरात काम करते रहते हैं।

"इसीसे महाराष्ट्र के निष्णात किसानों ने किर्लोस्कर एंजिन के विषय में समाधानकारक उद्गार प्रकट किये हैं—यही इस एंजिन की कार्यक्षमता का सर्वश्रेष्ठ प्रशस्तिपत्र है......."



किर्लोस्कर
डिझेल एंजिन



किर्लोस्कर ऑईल ऍन्जिन्स लिमिटेड, पुना ३